ऐतिहासिक गौरव ग्रंथमाला के
अभिभावक

श्रीमान् १०८ श्री० चौलुक्य चूडामणि हिज हाईनेस महारावल महाराजा
श्री इन्द्रसिंह जी प्रतापसिंह जी बहादुर, बांसदा नरेश।
[जिन्होंने सर्व प्रथम चौलुक्य जाति के ऐतिहासिक गौरव के उद्धार में हाथ बंटाया है

श्री चौलुक्य चन्द्रिका

लाट नवसारिका-नान्दिपुर-वासुदेवपुर खंड

विक्रम ७०० से १४८६ पर्यन्त

मूल शासन पत्रों और शिला प्रशस्तियों का संग्रह-और विवेचन

संग्रहिता

तथा

अनुवादक और विवेचक

श्री० विद्यानन्द, स्वामी श्रीवास्तव्य

भूतपूर्व सदस्य विहार व्यवस्थापिका सभा, अवसर प्राप्त रिसर्च स्कोलर जसदन स्टेट,
एवं श्री भगवान चित्रगुप्त, काश्मीर में कायस्थ जाति वलभी मैत्रकों की
जातीयता, आइकनो ग्रैफीकल एण्ड रेकर्डोलायड---परमार
चन्द्रिका, वेद, रामायण और महाभारत कालीन भारत
तथा अन्यान्य ऐतिहासिक ग्रंथों के लेखक।

शरद पूर्णिमा, विक्रम १९९९

प्रथम बार १०००

Plate No. II. A

चौलुक्यों की राजकीय बाराह मुद्रा।

Plate No. II. B

चौलुक्य चंद्रिका

चौलुक्यों के ताम्र शासन का स्वरुप।

बादामी-गुफा ३ वर्ती चौलुक्यों के कुलदेव भगवान वाराह की मूर्ति।

बादामी—गुफा ३ वर्ती चौलुक्यों के कुलदेव भगवान बाराह की मूर्ति ।

शारदाकुमार श्रीवास्तव्य

द्वारा

हिन्दुस्तानी प्रिंटिंग प्रेस

२६४ गोविन्दवाड़ी

कालबादेवी रोड

बम्बई नं २

में

मुद्रित

प्रकाशक

ऐतिहासिक गौरव ग्रंथमाला

पोद्दार ब्लोक

सान्ताक्रुज

(बी. बी. एन्ड सी. आय रेलवे.)

श्रीमान सवाई देवेन्द्र विजयसिंहजी बहादुर-नातीराजा (अजयगढ़) बुन्देलखण्ड।

सप्रेम !

श्रीमान् सवाई देवेन्द्र विजयसिंहजी बहादुर महाराजा अजयगढ़

बुन्देलखण्ड

के

कर कमलों में:-

सप्रेम-

समर्पण ।

बी. एस. श्रीवास्तव्य ।

श्रीयुत वी. एम. श्रीवास्तव्य ।
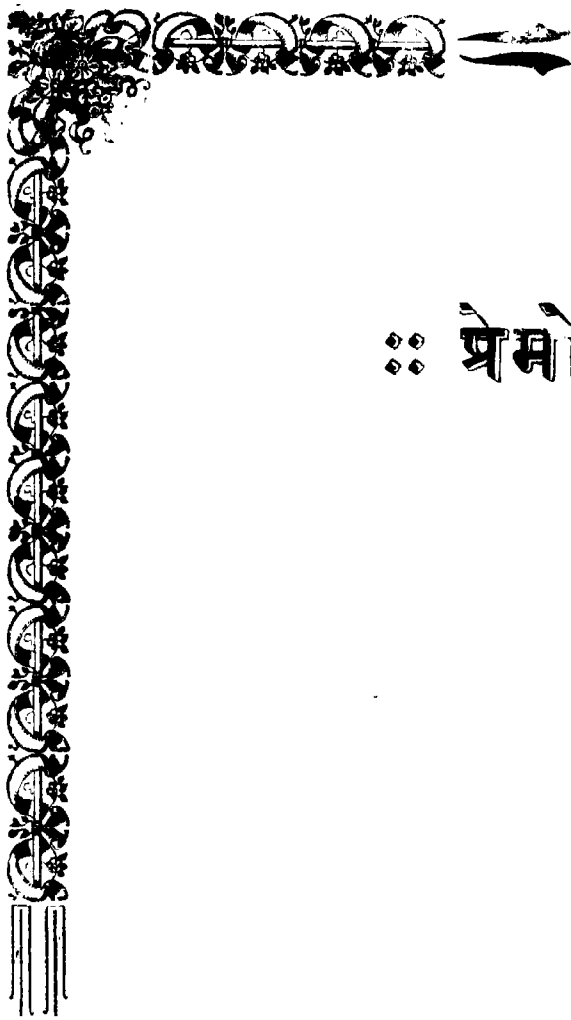
:: प्रेमोपहार ::

प्राक्कथन।

किसी भी जाति और देशके पुरावृत्त का विवेचन करने के पूर्व यह परम आवश्यक है कि उस जाति के वंश—वंशसंस्थापक और अभ्युदय आदि तथा उसके पूर्वजों की जन्मभूमि और वर्तमान देशके साथ संबंध प्रभृति एवं उस देशके नाम करण और उस देशके पुराकालीन राजाओं तथा उसके मानचित्र और सीमा प्रभृतिका सांगोपांग विचार कर लिया जाय। अत एव दक्षिण गुजरात अर्थात लाट प्रदेशके चौलुक्यों के पुरावृत विवेचन में प्रवेश करनेके पूर्व हम दक्षिण गुजरात अर्थात लाट प्रदेश के नाम करण और पूर्ववर्ती राजवंशादि का प्रथम विचार करते हैं।

गुर्जर और लाट।

भारतीय पुराण-रामायण तथा महाभारत आदि किसीभी एतिहासिक ग्रंथमें गुजरात और लाट प्रदेशका नाम नहीं पाया जाता। प्रत्युत जिस भूभागको संप्रति गुजरात (दक्षिण और उत्तर) लाट कहते हैं उसको आनर्त और परान्त नामसे अभिहित पाते हैं। महाभारतकालीन आनर्त और परान्त प्रदेशको भिन्न करनेवाली नर्मदा थी और अपरान्तको विलग करनेवाली कावेरी थी। इससे प्रकट होता है कि सम्प्रति जिस भूभागको दक्षिण गुजरात या लाट कहते हैं वह उस समय परान्त नामसे अभिहित था।

महाभारतके पश्चात मौर्य साम्राज्यकी स्थापना के कुछ पूर्व अर्थात् यूनानी वीर अलि-क्सुन्दर के आक्रमण कालसे भारतीय इतिहासकी ज्ञात अवधिका प्रारंभ होता है। यदि कहा जाय कि ज्ञात एतिहासिक कालके प्रारंभमें मौर्यवंशका साम्राज्यसूर्य वास्तवमें भारत चक्रवर्तीत्व सौभाग्यको प्राप्त था तो अत्युक्ति न होगी। क्योंकि इसके अधिकारमें पौराणिक भरतखंडकी ओर

से छोर पर्यन्त था। और मौर्यवंशका परम प्रख्यात राजा अशोक था। अशोक के आज तक १४ शासन पत्र भारतके प्रायः प्रत्येक प्रान्तोंसे पाये गये हैं। वर्तमान गुजरात प्रदेशकी पश्चिम सीमापर अवस्थित प्राचीन सौराष्ट्रके गिरनार नामक पर्वतकी उपत्यका से भी अशोक का शिला शासन प्राप्त हुआ है। परन्तु उसमेंभी अथवा उसके किसी अन्य लेखमें गुजरात और लाटका नामोल्लेख नहीं पाया जाता। मौर्योंके पश्चात् सौराष्ट्र और अवन्ती आदि प्रदेशोंमें क्षत्रपोंका सौभाग्योदय हुआ था जहां उनके राज्यकालीन अनेक लेख पाये जाते हैं। परन्तु उनमेंभी गुजरात और लाटका दर्शन नहीं होता। क्षत्रपोंमें अनेक प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। इनमें रुद्रदामका एक लेख गिरनार पर्वतकी उपत्यका अवस्थित अशोकके शिलाशासन के निम्न भागमें उत्कीर्ण है। इस लेखके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि इसके आधीन अकरावती—अनुप—आनर्त—सुराष्ट्र—स्वभ्र मरु-कच्छ-सिन्धुसुवीर-कुकुटु-अपरान्त और निषाद देश था। कथित देशोंमें अकरावती पूर्व और पश्चिम मालवा, अनुप आनर्त और अवन्तीका मध्यवर्ती भूभाग, आनर्त उत्तर गुजरात प्रदेश, सुराष्ट्र वर्तमान काठिआवाड, स्वभ्र-साबरमती नदी उपत्यका प्रदेश, कच्छ और मरु वर्तमान कच्छ और मारवाड़ देश,. सिन्धुसुवीर वर्तमान सिन्ध प्रदेश परन्तु कुकुर और निषादका परिचय निश्चित रूपसे नहीं मिलता और अपरान्त वर्तमान प्रसिद्ध कोकण प्रदेश है।

क्षत्रपवंशका अभ्युदय लगभग विक्रम संवत १४७ में हुआ था। इस वंशका परम प्रसिद्ध राजा रुद्रदाम का समय विक्रम संवत २०० और २१५ के मध्य तदनुसार ईस्वी सन १४३ से १५८ पर्यन्त हैं। अतःसिद्ध हुआ कि विक्रम संवत २१५ पर्यन्त वर्तमान गुजरात और लाट देशका प्रचार नहीं हुआ था। हां इस समय महाभारत कालीन देशोंके मध्य अनेक छोटे मोटे देशोंका नामाभिधान अवश्य हुआ प्रतीत होता है। क्योंकि रुद्रदामके लेखमें हम देखते हैं कि आनर्त और मारवाड़ के अन्तर्गत स्वभ्रका-आनर्त और अवन्तिके मध्य अनुप देशका अभ्युदय हो चुका था। एवं आनर्त और अपरान्तके मध्यवर्ती परान्त देशका लोप हो कर उसका भूभाग आनर्त और अपरान्त में मिल गया था। गुप्त वंशका अभ्युदय विक्रम संवत ३७५-७६ और अन्त ५२७ है। तदनुसार इस्वी सन ३१८-१९ से लेकर ४७० पर्यन्त इनका राज्यकाल १५१ वर्ष है। इस अवधिमें इस वंशके सात राजा हुए हैं। इन मे चौथा राजा समुद्रगुप्त परम प्रख्यात और समस्त भारतका अधिपति था। इसका समय विक्रम संवत ४२७ से ४४२ तदनुसार इस्वी सन ३७० से ३८५ पर्यन्त १५ वर्ष है। इसके प्रयाग राज वाले स्तम्भ लेखमें इसके विजित देशों और आधीन राजाओंका

नामोल्लेख है। उसके पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि विक्रम संवत ४२७ से ४४२ पर्यंत भी गुर्जर और लाट नामका प्रचार नहीं हुआ था।

लाट नन्दिपुर के गुर्जर।

गुप्तों के बाद सौराष्ट्र देशमे मैत्रकोंका अभ्युदय होता है। मैत्रक वंशका संस्थापक सेनापति भट्टारक है। इसने अपने वंशका राज्य सौराष्ट्र देशमें विक्रम संवत ५६६ तदनुसार इस्वी सन ५०६ में स्थापित किया था। इस वंशका राज्य काल विक्रम से ५६६ तदनुसार इस्वी ५०९ से ७६६ पर्यन्त २५७ वर्ष है। इस अवधिमें इस वंशके १५ राजा हुए हैं। इनके राज्य कालकी समकालीनतामें ही गुर्जर जातिका अभ्युदय पुराकालीन आनर्त प्रदेशमें हुआ था। क्योंकि दक्षिण गुजरात या लाट देशके नन्दिपुर नामक स्थानमें एक गुर्जर वंशको राज्य करते पाते हैं। नन्दिपुरके गुर्जरोंके साथ वलभिके मैत्रकोंको संधि विग्रह और वैवाहिक संबंध सूत्रमें ओतप्रोत पाते हैं।

नंदिपुरके गुर्जरोंका अभ्युदयकाल विक्रम संवत ६३७ और ६४४ के मध्य तदनुसार इस्वी सन ५८०-५८७ है। और इनका अन्त लगभग विक्रम संवत ७९१ तदनुसार इस्वी सन ७३४ है। इनका राज्य काल इस प्रकार १५० वर्ष प्राप्त होता है। वातापिके चौलुक्यराज पुलकेशी द्वितीय के एहोलग्रामसे प्राप्त शक ५५६ तदनुसार विक्रम संवत ६९१ वाले शिलालेख श्लोक २३ में स्पष्टतया गुर्जर जातिका गुर्जर जाति रूपसे उल्लेख किया गया है। अतः निश्चय हुआ कि विक्रम संवत ६३७ तदनुसार इस्वी सन ५८० के पूर्वही पुराकालीन आनर्त प्रदेशमें गुर्जर जातिका अभ्युदय हो चुकाथा और वह एक प्रतिष्ठित जातिके रूपमें मानी जाती थी। एवं इन गुर्जरोंके संयोगसे आनर्त देशका नाम परिवर्तित होकर गुर्जर देश, गुर्जराष्ट्र तथा गुर्जर मण्डलके नामसे प्रख्यात हो चुका था। अब विचारना है कि क्या नन्दिपुरके गुर्जरोंके संयोगसे आनर्त देशका नाम परिवर्तन हुआ था? इन नंदिपुरवाले गुर्जरोंके शासन पत्रोंपर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि वे आदिसे अन्त पर्यन्त किसी न किसी राजाके आधीन थे। अतः इनके संयोगसे आनर्तका नाम गुर्जर रूपमें नहीं बदल सकता और न गुर्जर जाति एक प्रतिष्ठित जातिही मानी जा सकती थी।

पुनश्च इनके अभ्युदय काल विक्रम ६३७ और चौलुक्यराज पुलकेशी द्वितीय के पूर्व कथित लेख में केवल ५४ वर्षका अन्तर है। इस थोड़े समयकी अवधिमें न तो किसी विजेता जाति के नामानुसार किसी देशका नाम परिवर्तीत होकर सर्व साधारणमें उसका प्रचार हो सकता है और न वह जाति सर्व साधारण जनताकी दृष्टिमें प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकती है। इसके अतिरिक्त पुलकेशी के लेखमें गुर्जर नाम के साथही लाटका प्रयोग किया गया है। भरूचके गुर्जरोंका लाट देशमें होना निभ्रान्त है। लाटके साथ गुर्जर शब्दका प्रयोग प्रकट करता है कि भरूचवाले गुर्जरोंके अतिरिक्त किसी अन्य स्थानपर गुर्जरोंका अधिकार था। और उक्त प्रदेश गुर्जर कहलाता था। क्योंकि लाट प्रदेशमें सामन्त रूप से राज्य करनेवाले नंदिपुरके गुर्जरोंका उल्लेख लाट नामके साथ हो जाता है।

भीनमाल के गुर्जरों का अभ्युदय।

अब देखना है कि नंदिपुर के गुर्जरों के पूर्व अथवा समकालीन किसी अन्य गुर्जर राज्यका अस्तित्व पाया जाता है अथवा नहीं। चिनी यात्री हुआंनसेन के भारत भ्रमण वृतान्त पर दृष्टिपात करने से प्रकट होता है कि वर्तमान मारवाड़ राज्यके भीनमाल नामक स्थानमें एक अन्य गुर्जर राज्य था। उसका अधिकार बहुत बड़े भूभागपर था। उसके राज्यकी परिधि ६३३ वर्ग मील थी। हुआनसेनका भारत भ्रमण विक्रम संवत ६८७ के बाद प्रारंभ हुआ था। अतः अब विचारना है कि भीनमालके गुर्जर राज्यका अभ्युदय काल क्या है।

जिस प्रकार भीनमालके गुर्जरोंका अभ्युदयकाल निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं है उसी प्रकार उनके अन्तका समय भी अज्ञात है। तथापि उनका अन्त समय एक प्रकार से निश्चित रूपसे प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि गुर्जरों के बाद भीनमाल पर चांपोत्कटों (चावडों) का अधिकार पाया जाता है। भीनमाल के चावडोका स्पष्ट रूपसे उल्लेख लाट देशके चौलुक्य राज लकेशी के (त्रयकुटक) संवत्सर ४९० तदनुसार विक्रम संवत ७९६ वाले लेखमें हैं। उधर कम संवत ६८७ के आसपास भीनमालके गुर्जर राज्यको पूर्ण रूपेण विकसित पाते हैं। : हम कह सकते हैं कि भीनमालके गुर्जरोंका अन्त विक्रम संवत ६८७ और ७९६ के विक्रम संवत ७४० और ७५० के मध्य है।

लाट का अभ्युदय तृतीय शतक।

अब विचारना है कि भीनमालके गुर्जरोंका अभ्युदयकाल क्या हो सकता है। क्षत्रपवंशी रुद्रदामके विक्रम संवत २०० और २१५ के मध्यवर्ती लेखमें गुर्जर प्रदेश और गुर्जर जातिका उल्लेख नहीं है। उसी प्रकार समुद्रगुप्त के विक्रम संवत ४२७ और ४४२ के मध्यवर्ती प्रयागवालेस्तम्भ लेखमें विवेचनीय गुर्जर जाति और गुर्जर देशका अभाव है। अतः हम बिना किसी संकोच के कह सकते हैं कि भीनमाल के गुर्जरोंका अभ्युदय, जिनके नामानुसार वर्तमान गुर्जर प्रदेशका नाम करण हुआ है, विक्रम संवत ४४२ के पश्चात हुआ प्रतीत होता है। परन्तु इनके अभ्युदय कालको यदि हम विक्रम ४४२ से और आगे बढ़ाकर गुप्तों के अन्त समय विक्रम ५२७ तदनुसार इस्वी सन ४७० माने तो भी कोई आपत्ती सामने आती नहीं दिखाती। क्योंकि गुप्त साम्राज्य के पतन पश्चात भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तोमें अनेक राज्यवंशोंका प्रादुर्भाव हुआ था। गुप्तों के सेनापति भट्टारकने वल्लभि में (सौराष्ट्र) मैत्रक राज्यवंशकी स्थापना की थी। संभवतः गुर्जरोंने भी गुप्त साम्राज्य के पतन रूपी गंगा की बहती धारामें स्नान कर अनयासही राज्य संप्राप्ति रूप पुण्यका संचय किया था। हमारी समझमें जबतक भीनमालके गुर्जर राज्य संस्थापनका परिचायक स्पष्ट प्रमाण न मिले तब तक गुर्जर जातिका अभ्युदय और गुर्जर प्रदेश के नाम करणका समय निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। तथापि तत्कालीन विविध एतिहासिक सामग्रियोंपर दृष्टिपात करने के पश्चात हम गुर्जर जाति का अभ्युदय काल विक्रम संवत ५२७ जो, गुप्त साम्राज्य का पतनकाल है, मानते हैं।

पुराकालीन आनर्त प्रदेशका गुर्जर जातिके संयोगसे, गुजरात नामाभिधानका समयादि विवेचन करने पश्चात हम आनर्त और अपरान्त के मध्यवर्ती भूभाग के लाट नामाभिधान के विवेचनमें प्रवृत्त होते हैं। जिस प्रकार गुजरात देशका नाम भारतीय पुराण, रामायण और महाभारत आदि एतिहासिक ग्रंथोमें नहीं पाया जाता उसी प्रकार लाट देशका नामभी इन ग्रंथोंमें देखनेमें नहीं आता। हां लाट देशका उल्लेख विक्रम संवत के तृतीय शतक से लेकर १३ वें शतक पर्यन्त के विविध ताम्रपट और शिलालेखों तथा संस्कृत एतिहासिक काव्यादि में पाया जाता है। कामसूत्रके कर्ता वात्सायनने अपनी पुस्तकमें सर्व प्रथम लाट प्रदेशका

प्रयोग किया है। वात्स्यायनका समय विक्रमका तृतीय शतक मान जाता है। एवं टौलमी के ग्रन्थोंमें भी लाटका रूपान्तर लारिक शब्द दृष्टिगोचर होता है।

लाट शब्द की व्युत्पत्ति।

लाट नामकी व्युत्पत्ति संबंधमें कितने पुरातत्वज्ञोंका विचार है कि लाट शब्दका रूपान्तर "र" का "ल" होकर हुआ है। वास्तवमें देखा जाय तो "र" का रूपान्तर "ल" देखनेमें आता है। चाहे जो हो दक्षिण गुजरातका पूर्व नाम लाट था। और गुजरात नाम पड़नेके कई शताब्दी पूर्व से लेकर कई शताब्दीपर पर्यन्त व्यवहृत था। हमारा संबंध केवल लाट और गुजरात नामसे होनेके कारण हम और अधिक पुराकालीन नामादि के विवेचन में प्रवृत्त न होकर अन्य बातोंका विचार करते हैं।

लाट का भूभाग और सीमा।

दक्षिण गुजरात तथा लाटके अन्तर्गत मही नदीसे लेकर तापी नदीके उपत्यका पर्यन्त भूभागका समावेश निर्भ्रान्ति रूपसे पाया जाता है। परन्तु अन्यान्य ऐतिहासिक घटनाओं पर दृष्टिपात करनेसे प्रगट होता है कि दक्षिण गुजरात और लाटकी सीमाका विभाजन करनेवाली कावेरी नामक नदी है। अतएव हम कह सकते है कि कावेरी नदीसे लेकर मही नदीपर्यन्त प्रदेश दक्षिण गुजरात तथा लाट नामसे अभिहित होता था। पूर्व समय दक्षिण और उत्तर गुजरातको विभाजित करनेवाली मही नदी थी। एवं दक्षिण गुजरात और अपरान्त अथवा उत्तर कोकणको विलग करनेवाली कावेरी नदी थी। यदि देखा जाय तो आज भी लगभग दक्षिण गुजरात की सीमा पूर्ववतही है। क्योंकि पूर्व कथित दोनों नदियां अपनी पूर्व अवस्थामें ही दृष्टिगोचर होती है। अतएव वर्तमान दक्षिण गुजरातकी सीमा निम्न प्रकारसे है। उत्तरमें उत्तर गुजरात, खंभात स्टेट, बरोदाका पेटलाद, खेडा जिला आदि—दक्षिणमें थाणा जिला—पूर्वमें सिन्ध और अर्बुद पर्वत श्रेणीके मध्यवर्ती खानदेश, मालवा और कुछ भाग वागड़ प्रदेशका और पश्चिम समुद्र नामसे अभिहित होनेवाले समुद्रकी खम्भात नामक खाड़ी।

लाट की नदियां।

दक्षिण गुजरातमें मही, ढाढर, ओरसंग, हेरण, विश्वामित्री, नर्मदा, शिवा, कीम, सेना, तापती, मिंढोला, पूर्णा, अम्बिका और कावेरी नामक नदिया प्रधान हैं। इनमे मही, ढाढर, नर्मदा, कीम, तापती, पूर्णा, अम्बिका और कावेरी अन्यान्य छोटी मोटी नदी और नालाओका जल लेकर सीधे खंभातकी खाडीमे गीरती है। इनमे नर्मदा और तापती भारतकी प्रसिद्ध नदीयोमे से हैं। इनका गुनगान पुराणादि मे पाया जाता है। इनके तटपर अनेक पुराण प्रसिद्ध देवालय तथा तीर्थक्षेत्र है। इनमे नर्मदा तटका भृगुक्षेत्र और शुक्लतीर्थ गणमान्य है। तापी तट के प्रसिद्ध तीर्थस्थान अश्वनिकुमार–तापी नदीके संगमपर गलतेश्वर–तापी गर्भका (माडवी से उपर) रामकुण्ड–वलाक क्षेत्र और अपरा काशी नामक स्थान है। मिंढोलाका अपरनाम मन्दाकिनी—और मदाव है। इसके उद्गम स्थानपर गोमुख, मध्यवर्त्ती वाधेवली (बारडोली) नामक स्थानमे केदारेश्वर और पलशाणामे कनकेश्वर मन्दिर है। पूर्णा नदीपर मधुकरपूर (महुआ) मे जैनियोका विघ्नेश्वर नामक प्रसिद्ध तीर्थस्थान और लाटके चौलुक्य वंशकी राज्यधानी नवसारिका (नवसारी) है। कावेरी तटपर अनावलमें शुक्लेश्वर महादेव (अनाविल ब्राह्मणोके कुलदेव) और वातापी कल्याणके वंशधर पुरातन वासन्तपुर—वासुदेवपूरके चौलुक्योकी राज्यधानी वासुदेवपुर का ध्वंशावशेष नवा नगर नामक स्थान और वांसदा नगर है।

हमारे विवेचनीय एतिहासीक कालके अन्तर्गत लाट प्रदेशमें शासन करनेवाले गुर्जर, चौलुक्य, राष्ट्रकुट, गोहिल, मुसलमान, मरहठा (पेश्वा–दमाडे–गायकवाड) और अंग्रेज राज्यवंशका समावेश होता है। इनमें गुर्जर जातिका अभ्युदय चौलुक्योंसे पूर्वभावी है। अतएव हम सर्व प्रथम लाट प्रदेशमें गुर्जरोके अभ्युदय और पतन तथा अधिकार आदिका विचार करते हैं।

इन गुर्जरोका परिचायक इनका अपना सात ताम्र लेख है। कथित शासन पत्र इन्डीयन एन्टीक्वेरी वोल्युम ५ पृष्ठ १०६, वोल्युम ७ पृष्ठ ६१, वोल्युम १३ पृष्ठ ८१–६१ और ११५–११६ और वोल्युम १७ तथा एपिग्राफिका इन्डिका वोल्युम २ पृष्ठ १६, जो. रॉयल एसिआटिक सोसायटी वो. १ पृष्ठ २७४, जो. बम्बे रा. ए. वो १० पृष्ठ १६ मे प्रकाशित है। कथित शासन पत्रोका पर्यालोचन प्रकट करता है कि इनका अधिकार नर्मदा और मही नदीके

मध्यवर्ती भूभागपरही परिमीत था। परन्तु तापि नदीके दक्षिण भूभागपरभी इनके क्षणिक *अधिकारका परिचय मिलता है। एवं इनका विवेचन इनकी निम्न वंशावली बताता है।*

द द

ज य भ ट

द द र ण ग्र ह

ज य भ ट

द द

ज य भ ट

इनमें वंश संस्थापक दद प्रथम और उसके उत्तराधिकारी जयभटका न तो विशेष एतिहासिक परिचय और न निश्चित समयही ज्ञात है। हां दद प्रथम के पौत्र और जय भटके पुत्र दद द्वितीय और रणग्रह के तीन लेख प्राप्त हैं। कथित तीन लेखो में खेडा से प्राप्त दो लेख सं. ३८० और ३८५ के हैं और इसके भाई रणग्रहका एक लेख खेडा से प्राप्त सं. ३९१ का है। कथित शासन पत्रोका संवत त्रयकूट संवत्सर है! जिसका प्रारम्भ विक्रम ३०६ तदनुसार शक संवत् १७१ में हुआ था। अंत इनकी तिथिकी समकालीनता त्रयकु. ३८० शक ५५१ और विक्रम ६८६ त्रयकु ३८० श. सं. ५५६ और विक्रम ६९१ और त्रेकु ३९१ श. सं. ५६२ और विक्रम ६९० से है। अब यदि हम दद द्वितीय का प्रारंभिक काल ३८० को मान लेवे तो वैसी दशामें दद प्रथमका प्रारंभिक समय लगभग ३३० मानना होगा परन्तु एैसा मानने के पूर्व हमे विचारना होगा कि त्रयकु. ३८० के आसपासमें गुर्जरोके अभ्युदयका समर्थन हो सकता है अथवा नहीं है? हम पूर्वमें बता चुके है कि गुर्जर जातिका भीनमालमे अभ्युदय काल लगभग विक्रम संवत ५७० है। अब यदि ५७० को त्रयकु बनावेतो ३०६ घटाना पडेगा। इस प्रकार २६८ त्रयकुटमे गुर्जर जातिका राज्य संस्थापन भीनमालमे हो चुका था। गुर्जर जातिके त्रयकुटक २६४ अभ्युदय और दद प्रथमके अनुमानिक समय ३३० के मध्य ६६ वर्षका अन्तर है। वल्लभिके इतिहासका पर्यालोचन प्रकट करता है कि धरसेन द्वितीयके विरुदमे परिवर्तन हुआ है उसके गुप्त वल्लभि संवत २५२ के तीन शासन पत्र में उसके विरुद "परं महेश्वर महाराजा" और

गुप्त वल्लभि संवत् २६९ और २७० वाले दो लेखों में उसका विरुद "महा सामन्त" पाया जाता है। गुप्त वल्लभि संवत और विक्रम संवतका अन्तर ३७५ वर्ष और त्रयकुटक विक्रमका अन्तर ३०६ वर्ष है। अतः सिद्ध हुआ कि २६९–७० गुप्त वल्लभि तदनुसार २६९–७० + ६९=३३८–३९ त्रयकुटक, २६९ + २४० = ५०९ शक, २६९ + ३१८=५८७ ईस्वी और २६९ + ३७५=६४४ विक्रम के पूर्वही वल्लभिके मैत्रकोंको पराजित कर स्वाधीन कर लिया था। उपर हम बता चुके हैं कि लाट प्रदेश भरूच नन्दिपुर के गुर्जरोंका अभ्युदय इस समयसे लगभग आनुमानिक रीत्या ७–८ वर्ष पूर्व हैं। उधर वल्लभिमें मैत्रकोंका और भीनमालमें गुर्जरोंका अभ्युदय समकालीन है। अतः हम कह सकते हैं कि भीनमालके गुर्जरोंने वल्लभिके मैत्रकोंको उक्त समयमें स्वाधीन कर अपना अधिकार नर्मदाकी उपत्यका पर्यंत बढाया था। और साम्राज्यकी अन्तिम दाक्षिणात्य सीमा पर अपने संबन्धी दद प्रथमको सामन्तराजके रूपमें स्थापित किया था। यद्यपि गुर्जरों के अधिकारमें नर्मदाकी उपत्यका प्रदेश चला आया था, तथापि वल्लभिवालोंका अधिकार उत्तर गुजरात के खेटकपुर, स्तम्भ तीर्थ आदि प्रदेशों पर बना रहा। हां इतना अवश्य था कि वे सम्राट रूपमें इन प्रदेशोंके अधिपति नहीं वरन भीनमालके गुर्जरोंके सामन्त थे। इनके इन प्रदेशों पर अधिकारका प्रत्यक्ष प्रमाण है क्योंकि हम धरसेन को अपने गुप्त वल्लभि संवत् २७० वाले लेख द्वारा खेटकपुर मंडल के आहारका ग्राम दान देते पाते हैं।

भीनमालके गुर्जरों का राज्य दक्षिणमें नर्मदा और उत्तरमें मारवाड, पश्चिममें काठियावाड और पूर्वमें संभवतः मालवाकी सीमा पर्यन्त हो गया था, परन्तु इन्होंने अपने इस साम्राज्य सुखका अधिक दिनों पर्यन्त उपभोग नही किया, क्योंकि इस समयसे लगभग ४०–४५ वर्ष पश्चात् उत्तर गुजरात पर मालवावालोंने अधिकार कर लिया था। जब मालवा वालोंका अधिकार गुजरातपर हुआ और भीनमालके गुर्जरोंको पुनः उत्तरमे और वल्लभिवालोको पश्चिममे हटना पडा उस समय भरूचके साथ भीनमाल वालोका संबंध विच्छेद हुआ और भरूच नंदिपुरके गुर्जरवंशको किसी अन्य राज्यवंशके आधीन होना पडा।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या भीनमालके गुर्जरोंको नर्मदाकी उपत्यकाका प्रदेश वल्लभिके मैत्रकोंके हाथ से प्राप्त हुआ था? यद्यपि वल्लभिके मैत्रकोंका अधिकार, उत्तर गुजरातके

खेटकपुर आदि भूभागपर होनेका स्पष्ट परिचय मिलता है, तथापि उनके अधिकारमें नर्मदा उपत्यकाके होनेका परिचय उस समयमें नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त दद प्रथमके पौत्र दद द्वितीयके पूर्व कथित खेडावाले दोनो शासन पत्रोंसे प्रगट होता है कि दद प्रथमने नागजातिका उत्पाटन किया था। एपिग्राफिका इण्डिका वोल्युम २ पृष्ठ २१ में प्रकाशित शासन पत्रसे प्रगट होता है कि नर्मदा उपत्यकाकी जंगली जातियोंपर निर्हुलक नामक राजा शासन करता था। कथित शासन पत्रमे निरहुलक शंकरगणका उल्लेख बडेही आदर और उच्च भावसे करता है। जिससे स्पष्ट रूपेण प्रगट होता है कि वह शंकरगण के आधीन था। अब यदि हम निरहुलकके समय प्राप्त कर सकें तो संभवतः दद प्रथम द्वारा पराभूत नागजातिका परिचय मिल सकता है।

वातापि के इतिहास से प्रगट होता है कि मंगलीशने कलचुरीराज शंकरगण के पुत्र बुद्धवर्माको पराभूत किया था। मंगलीशका समय शक ४८८ से ५३२ पर्यन्त है। मंगलीश के राज वर्ष के ५ वें वर्ष के लेखमें बुद्धवर्म्माको पराभूत करनेका उल्लेख है। अतः शक वर्ष ४८८+५=४९३ में मंगलीशने बुद्धवर्म्माको जीता था। बुद्धवर्मा के पिताका नाम शंकरगण है। अब यदि हम शक ४९३ को बुद्धवर्म्माका अन्तिम समय मान लेंवे तो वैसी दशामें उसके पिताका समय अधिक से अधिक ५० वर्ष पूर्व जा सकता है। अर्थात् कलचुरी शंकरगणका समय शक ४४३ ठहरता है। उधर निरहुलकके स्वामी शंकरगणका समय, यदि हम उसे दद प्रथम द्वारा पराभूत मान लवे तो, किसीभी दशामें शक ४७५ के पूर्व नहीं जा सकता। अतः हम किसी भी दशामें उसे निरहुलक कथित शंकरगण नहीं मान सकते। हां यदि बुद्धवर्म्माका समय शक ४९३ के आसपास प्रारंभीक मान लेंवें और निरहुलकका लेख इस समय से पूर्ववर्ती स्वीकार करें और उक्त समयको निरहुलकका प्रारंभकाल माने तो संभवतः निरहुलक और दद प्रथमकी समकालीनता किसी प्रकार सिद्ध हो सकती है। परन्तु इस संभवना के प्रतिकूल मंगलीश के उक्त लेखका विवरण पडता है। क्योंकि उसमें स्पष्टतया उसके पूर्व दिशा विजय के अन्तर्गत बुद्धवर्मा के साथ संघर्षका वर्णन है। परन्तु निरहुलक कथित शंकरगणका उत्तर दिशामें नर्मदा के आसपास में होना संभव प्रतीत होता है।

हमारे पाठकोंको ज्ञात है कि अपरान्त प्रदेश, वातापि से उत्तर दिशामें अवस्थित है, जहां पर त्रयकुटकोंका अधिकार था। और तापि नदी के वामभाग वर्ती प्रदेशमें तो उनके

अधिकारका होना सूर्यवत् स्पष्ट है। इन त्रयकुटकों के अधिकारका स्पष्ट परिचय उनके शासन पत्रों तथा उनके संचालित त्रयकुटक संवतके अपरान्त प्रदेश में सार्वभौम रूपसे प्रचार होनेसे मिलता है। अतः हम कह सकते हैं कि निरहुलकके शासन पत्रमें कथित शंकरगण त्रयकुटवंशी और संभवतः त्रयकुटराज महाराजा व्याघ्रसेन के उत्तराधिकारीका पौत्र है। जिसका राज्यकाल त्रयकुटक संवत् २४१–४५ के मध्यकाल से प्रारंभ होता है। इस प्रकार मानने से कोई आपत्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि हम निःशंक होकर व्याघ्रसेन के पुत्र और पौत्रको ५० वर्षका समय दे सकते है। और इस प्रकार २४२–४३+५०=२९२–९३ में शंकरगणका राज्यकाल प्रारंभ होता है। कथित समयके साथ नर्मदा उपत्यकामें बसनेवाली नाग जातिके उत्पाटन–जिसका राजा निरहुलक था–कालका तारतम्य मिल जाता है। अतः हम निर्भय हो घोषित करते हैं कि दद्द प्रथमने इन्हीं नागोंका उत्पाटन कर नर्मदा–उपत्यकाको अधिकृत कर भीनमालके गुर्जर साम्राज्यमें मिलाया था। जिसके उपलक्षमें गुर्जर राजने उसे इस प्रदेशका सामन्त बनाया।

दद्दके पश्चात् उसका पुत्र जयभट भरूच नंदिपुर के गुर्जर सामन्त राज्यपर बैठा। परन्तु इसके राज्यकालकी किसीभी घटनाका परिचय हमे नहीं मिलता। जयभटका उत्तराधिकारी उसका पुत्र दद्द द्वितीय हुआ। दद्द द्वितीय के खेडावाले लेखोंका उल्लेख हम कर चुके है। उक्त दोनों लेखोंसे प्रगट होता है कि दद्द द्वितीयको "पंच महाशब्द" का अधिकार प्राप्त था। और उसके राज्यके अन्तर्गत नर्मदाके दक्षिणका भूभागभी था। क्योंकि उक्त शासन पत्र द्वारा उसने अकुरेश्वर (अंकलेश्वर) विषयान्तर्गत श्रीशपद्रक ग्राममें भृगु कच्छ और जम्बूसर निवासी ब्राह्मणोंको भूमिदान दिया था।

दद्द द्वितीयके प्रपौत्र जयभट तृतीयके सं. ४५६ वाले शासन पत्र (इं. ए. १३–७०) के पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि इसने कान्यकुब्ज पति हर्षवर्धनके आक्रमणसे वल्लभि नरेशकी रक्षाकी थी। वातापिके चौलुक्य पुलकेशी द्वितीयके इतिहास—विवेचन में हमबता चुके हैं कि नन्दिपुरके गुर्जर उसके सामन्त थे और नर्मदा तटपर हर्षका मार्गावरोध उन्होंने उसकी आज्ञासे किया था। अंतमें युद्धस्थलमे स्वयं उपस्थित हो हर्षको पराभूत कर पृथ्वी वल्लभ की उपाधि उसने धारण की थी।

दद द्वितीयके समय चीनी यात्री हुयानसांगने भृगुकच्छका अवलोकन किया था । और अपनी आंखों देखी अवस्थाका जो वर्णन किया था वह एक प्रकारसे आगामी भृगुकच्छके सम्बन्धमे लागू होता है । दद द्वितीयके उत्तराधिकारी जयभट द्वितीय का राज्यकाल पुनः घटना शून्य हुआ । तथापि दद द्वितीयके राज्यकालकी दो महत्वपूर्ण घटनाएं हैं । प्रथम घटना यह है कि लाट प्रदेशके नवसारीमें वातापिके चौलुक्य वंशकी एक शाखा स्थापित हुई और इस शाखाका संस्थापक विक्रमादित्य प्रथमका छोटाभाई धराश्रय जयसिंह था । द्वितीय घटना यह है कि इसने गुर्जर नामका परित्याग कर महाभारतीय वीर कर्ण से अपने वंशका सम्बन्ध स्थापित किया । एवं उसको वल्लभि और मालवावालोंसे संभवतः लड़ना पड़ा था ।

जयभट द्वितीय अपने पिता दद तृतीयके पश्चात गद्दीपर बैठा । यह महासामन्ताधिपति कहलाता था । इसकोभी पंच महाशब्दका अधिकार प्राप्त था । संभवतः इसने अपने ४८६ के लेखानुसार वल्लभिके मैत्रकोंको पराभूत किया था । और इसके राज्यकालमें अरबोंने भरूचपर आक्रमण कर संभवतः हस्तगत कर लूटपाट मचाया था । इसके अनन्तर वे आगे बढ़े, परन्तु धाराश्रय जयसिंहके पुत्र पुलकेशी द्वारा पीटकर स्वदेश को लौट गये । यह घटना सं ४९१ की है । जयभट तृतीयके बाद इसवंशका कुछभी परिचय नहीं मिलता । संभवतः अरब युद्धमें राजवंशका नाश हो गया ।

लाट के चौलुक्य ।

लाट प्रदेशके साथ चौलुक्योंका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दो प्रकारसे सम्बन्ध पाया जाता है अप्रत्यक्ष सम्बन्ध उनके केवल आधिपत्य और प्रत्यक्ष सम्बन्ध उनके निवास और आधिपत्य दोनोंका ज्ञापक है । इनका अप्रत्यक्ष सम्बन्ध तीन भागोंमें बटा है । प्रथम भागमें वातापि-द्वितीय भागमें वातापिकल्याण और तृतीय भागमें पाटणवालोंके आधिपत्य का समावेश है । वातापि-वालोंके सम्बन्धका प्रारम्भ चौलुक्य वंशके प्रथम भारत सम्राट और अश्वमेध कर्ता पुलकेशी प्रथमके राज्यकाल शक ४११ के लगभग और अन्त, द्वितीय भारत सम्राट पुलकेशी द्वितीयके तृतीय पुत्र विक्रमादित्य प्रथमके राज्य काल शक ५८७-८८ मे हुआ । वातापि-कल्याणवालोंके आधिपत्यका सूत्रपात-चौलुक्य राज्यलक्ष्मी का उद्धार कर अंकशायिनी बनानेवाले तैलप द्वितीयके राज्यकाल शक ९०० और अन्त लगभग शक १०१२ के लगभग होता है । पाटण-

वालोंके संबधका सूत्रपात संभवतः शक ६७७ से होता है। परन्तु इनका यह आधिपत्य क्षणिक था, क्योंकि गोर्गीराजने शीघ्रही इन्हें मार भगाया था। इस समयके पश्चात इन्होंने अनेकबार लाट वसुन्धराको पददलित कर आधिपत्य स्थापित किया, परन्तु प्रत्येक बार इन्हें हटना पड़ा। परन्तु सिद्धराज जयसिंह के समय शक १०२० के आसपासमें लाटके उत्तराचल अर्थात नर्मदा और महीके मध्यवर्ती भूभागपर इनका स्थायी आधिपत्य हो गया था। और सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालके समयतो इनका अधिकार तापी दक्षिणवर्ती भूभागपरभी था। किन्तु इनका यह आधिपत्यभी क्षणिक था। परन्तु लाटके उत्तरीय विभागपर तो पाटणवालोंका अधिकार अन्त पर्यन्त स्थायी रहा। इतनाही नहीं पाटन राज्यवंशका उत्पाटन करनेवाले धोलकाके वघेलोंके अधिकारमेंभी लाटका उत्तरीय प्रदेश था।

जिस प्रकार चौलुक्योंका अप्रत्यक्ष सम्बन्ध तीन भागोंमें बटा है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष संबंधभी तीन भागोंमें बटा है। प्रथम भागमें नवसारिका-द्वितीय भागमें नंदिपुर और तृतीय भागमें वासुदेवपुरवालोंका समावेश है। नवसारिकावालोंका अभ्युदय शक ५८७-८ और पतन शक ६६१ के पश्चात हुआ। नंदिपुरवालोंका अभ्युदय शक ६०० और पतन शक १०८० के लगभग हुआ। वासुदेवपुरवालोंका अभ्युदय शक १०२० के आसपास हुआ था इनका अस्तित्वज्ञापक प्रमाण शक १३१४ पर्यन्त मिलता है।

इन्हीं तीन राजवंशो के ऐतिहासिक लेखोंका संग्रह और विवेचन प्रस्तुत ग्रंथका विषय है। यद्यपि हम यथा स्थान लेखों का विवेचन करते समय इनके इतिहासका विचार आगे चलकर करेंगे तथापि यहांपर कुछ सारांश देना असंगत न होगा। अतः निम्न भागमें यथाक्रम अति सूक्ष्म रूपमें इनके इतिहासका सारांश देनेका प्रयत्न करते हैं।

लाट नवसारिका के चौलुक्य।

हम ऊपर बता चुके है कि इस वंशका संस्थापक वातापि पति चौलुक्यराज विक्रमादित्य प्रथमका छोटाभाई धराश्रय जयसिंह बर्मा था। परन्तु लाट प्रदेशमें संस्थापित वातापिकी कथित शाखा अथवा उसके संस्थापक जयसिंहका परिचय वातापिके किसीभी लेखमें नहीं मिलता है। यदि लाट प्रदेशके विभिन्न स्थानोंसे जयसिंहके पुत्रोंका शासन पत्र न मिले

होते तो हमें इस वंशका कुछभी परिचय नहीं मिलता। प्रायः देखनेमें आता है कि राजवंशोके अपने शासन पत्रोमें केवल राज्य सिंहासनपर बैठनेवालोंकाही परिचय दिया जाता है। उनके भाई भतीजोंका नामोल्लेखभी नहीं किया जाता। गादीपर बैठनेवालोंके भाई भतीजोंका परिचय उनके किये हुए अपने दान पत्रादिमें मिलता है। जो वे अपनी जागीरके गावोंमें से यदा कदा ब्राह्मणादिको दान देनेके उपलक्षमें प्रचारित करते हैं। अतः जयसिंहका परिचय वातापिके शासनपत्रों में नहीं मिलना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

वातापिके शासन पत्रादि। केवल जयसिंह के संबंधमेंही मौन नहीं है, वरन उसके अन्य दो बडे भाई आदित्यवर्मा और चंद्रादित्यके संबंधमेंभी वे समान रूपेण मौन है। यदि आदित्यवर्माका स्वयं अपना और चंद्रादित्यकी राणी विजयभट्टारिका महादेवी के शासन पत्र न मिले होते तो न तो उन दोनोंका परिचय मिलता और न पुलकेशी द्वितीय तथा विक्रमादित्य प्रथमके मध्यवर्ती अवकाशका संतोषजनक रीत्या समाधान होता।

जयसिंह तथा नवसारिकाके चौलुक्यवंशका परिचायक अद्यावधि हमें जयसिंहके पुत्र और पौत्रोंके ५ लेख मिले हैं। इन लेखोंका संग्रह और अनुवाद तथा पूर्ण विवेचन "चौलुक्य चंद्रिका लाट खण्ड" में अभिगुम्फित है। इन कथित ५ लेखोंमें से जयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र युवराज शिलादित्यके दो, द्वितीय पुत्र तथा उत्तराधिकारी मंगलराजके एक, तृतीय पुत्र बुद्धवर्माके पुत्र विजयराजका एक और चतुर्थ पुत्र पुलकेशीका एक है।

इन लेखोंमेंसे युवराज शिलादित्यके प्रथम लेखमें जयसिंहका अपने बडे भाई विक्रमादित्यकी कृपासे राज्य प्राप्त करनेका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। और द्वितीय लेखमें वातापि पति विक्रमादित्य प्रथमके पुत्र विनयादित्यको अधिराज रूपसे स्वीकार किया गया है। इन दोनों लेखों तथा अन्य तीन लेखोंमें अन्तर केवल इतनाही है कि इसमे वातापिके तत्कालीन राजाको अधिराज रूपसे स्वीकार किया गया है परन्तु उत्तर भावी तीन लेखोंमें वातापिकी वंशावलीके साथ संबंध मात्र स्थापित किया गया है। इन लेखोंके पर्यालोचनसे निम्न प्रकार वंशावली उपलब्ध होती है।
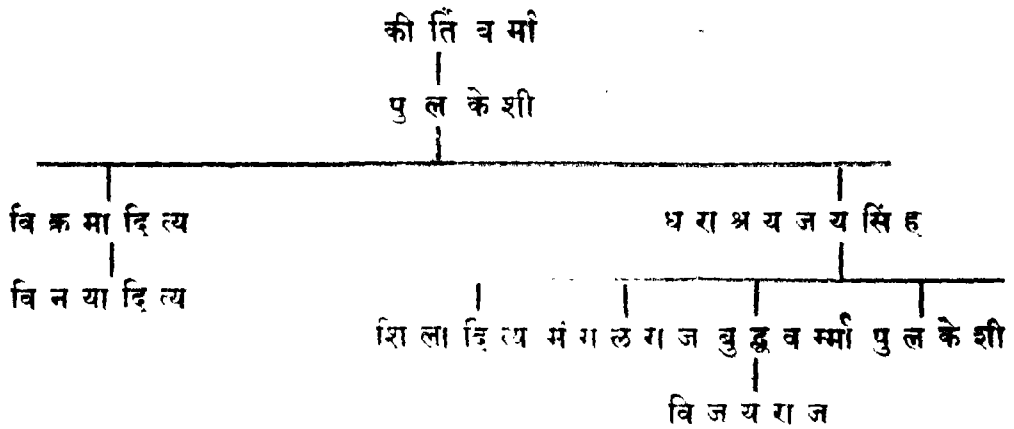
पुनश्च इन शासन पत्रोंसे प्रगट होता है कि इनकी राज्यधानी नवसारीमें थी। और इनके अधिकारमें दमनगंगासे लेकर नर्मदाके बाम भाग अवस्थित भूभाग निर्भ्रान्त रूपेण था। और संभवतः इनके राज्य की पूर्वीय सीमापर खानदेश था। इनकी आग्नेय सीमा नासिकके प्रति घुमती थी। जयसिंहके ज्येष्ठ पुत्र युवराज शिलादित्यकी मृत्यु पिताकी जीवित अवस्थामेंही हुई थी। अतः जयसिंहका उत्तराधिकारी उसका द्वितीय पुत्र मंगलराज हुआ। मंगलराज के पहिलेही बुद्धवर्म्माकी मृत्यु हुई प्रतीत होती है। मंगलराजभी निःसंतान मरा। अतः उसका उत्तराधिकारी पुलकेशी हुआ। मंगलराजके उत्तराधिकारी पुलकेशीके राज्यकालमें अरबोंने भारत पर आक्रमण किया था और लूटपाट मचाते हुए भरूच तक चले आये थे। जब उन्होंने दक्षिणापथ अर्थात वातापिराज पर आक्रमण करनेके विचारसे आगे पांव बढाया तो पुलकेशीने उन्हे कमलेज के पास पराभूत कर पीछे भगाया। पुलकेशीके पश्चात् इस वंशका कुछभी परिचय नहीं मिलता। संभवतः वातापि छीननेवाले राष्ट्रकूटोंने इस वंशका नाश किया।

लाट के राष्ट्रकूट।

जिस प्रकार लाट वसुन्धराके साथ चौलुक्योका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षात्मक दो प्रकारसे सम्बन्ध है उसी प्रकार राष्ट्रकूटोंका सम्बन्ध है। लाट देशके साथ राष्ट्रकूटोंके अप्रत्यक्ष सम्बन्धके परिचय संम्बन्धमें हमें दक्षिणापथके इतिहासका पर्यालोचन करना होगा। दक्षिणापथके इतिहाससे प्रकट होता हैकि मान्यखेटके राष्ट्रकूटोंका प्रताप शीघ्रताके साथ बढ रहा था। मान्यखेटके राष्ट्रकूट दन्तिदुर्ग के इलोरा गुफाके दशावतार मन्दिरमें उत्कीर्ण ६७२ वाले लेखसे प्रकट होता है

कि उसने मालवा और लाटको विजय किया था। एवं उसके शासन पत्र (इ. ए. ११-११२ मे प्रकाशित) से प्रकट होता है कि दन्तिदुर्गके अधिकारमें मही नदी पर्यन्त भूभाग था। और उसकी माताने खेटकपुरके मातर परगणाके प्रत्येक गांवकी कुछ भूमि दान दी थी। इससे स्पष्ट है कि दन्तिदुर्गने सम्भवतः अरब युद्धके पश्चात पुलकेशीके हाथसे लाटका दक्षिण भाग और भरूचके गुर्जरोंसे लाटका उत्तर भाग प्राप्त किया था। दन्तिवर्माकी यह विजय सम्भव हो सकती है। क्यों कि अरब युद्ध और इसके शासन पत्रकी तिथिमें ११ वर्षका अन्तर है। लाटके साथ राष्ट्रकूटोंका प्रत्यक्ष संम्बन्धका परिज्ञापक सूरत जिलाके आन्तरोली चारोली से प्राप्त कर्क द्वितीयका शक ६६६ वाला शासन पत्र है। प्रस्तुत शासन पत्रमें शासन कर्ताकी वंशावली निम्न प्रकारसे दी गइ है।

पुनश्च इस शासन पत्रसे प्रकट होता है कि शासन कर्ताकी माता नागवर्माकी पुत्री थी। और इसका विरुद्ध "समधिगत पंच महा शब्द् प्राप्त परं भट्टारक महाराज" था। अतः अब विचारना है कि सामन्त और स्वतन्त्र नरेशोंके समान विरुद धारण करनेवाला यह राष्ट्रकूट वंशी कर्क कौन है ! और इसको तापि और नर्मदाके मध्यवर्ती भूभाग-जो लाट नवसारिकाके चौलुक्योंके राज्य मे था-और जिसे मान्यखेटका राष्ट्रकूट दन्तिवर्मा अधिकृत करने । दावा करता है-का अधिकार क्यों कर मिला। प्रस्तुत शासन पत्रकी तिथि अश्वयुज शुक्ल सप्तमी शक ६६९ है। शक ६६६ की समकालीनता विक्रम ८०४ से प्राप्त होती है । नवसारिके चौलुक्यराज पुलकेशीका शासन पत्र अज्ञात संवत (त्रयकुटक) ४९० तदनुसार विक्रम ७९६ से स्पष्टतया प्रकट है कि उस समय नवसारिका के चौलुक्यवंशका शौर्यसूर्य पूर्णरूपेण प्रकाशित हो रहा था। प्रस्तुत शासन पत्र और उसके मध्यमें केवल आठ वर्षका अन्तर है। संभवहै कि अरब युद्ध पश्चात् पुलकेशीकी शक्ति नष्ट हो गई हो, और कर्कने उसकी निर्बलतासे लाभ उठा

अनायासही शासन पत्र कथित भूभागपर अधिकार कर लिया हो। दन्तिवर्मा और कर्क द्वितीयके लेखोंमें तीन वर्षका अंतर है। दंतिवर्माका लेख उत्तरभावी और कर्कका पूर्व भावी है। अतः हम कह सकते हैं कि इसका सामंजस्य सम्मेलन असंभव नहीं है। इस सामंजस्य संम्मेलनार्थ हम कह सकते है कि वह विजय प्राप्त करनेके पश्चात् अपने अधिकृत राज्यका उपयोग नहीं कर सका। दंतिवर्माने आकर अनायासही उसके अधिकृत राज्यको हस्तगत कर लिया। चाहे हम कर्कको प्रथम विजयी मान लेवें और दंतिवर्माको उसे पराभूत करनेवाला मान लेवें परंतु हम यह कदापि नहीं मान सकते कि कर्कके पूर्वज शासन पत्र कथित भूभाग पर चिरकालसे अधिष्ठित और शासन करते थे क्योंकि शासन पत्रकी तिथि शक ६६९ से पूर्व कर्क प्रथमके लिये कमसे कम हमें ७५ वर्ष देने पड़ेंगे। इस प्रकार कर्क प्रथमका समय ६६९–७५–५६४ के आसपास पहुंचता है। इस समय वातापि और नवसारीके चौलुक्योंका प्रताप सूर्य मध्य गगनमें प्रखर रूपसे प्रकाशित होरहा था। पुनश्च शासन पत्र कथित स्थानोंके आसपास नवसारीके चौलुक्योंके अधिकारका स्पष्ट परिचय विक्रम ७९६ पर्यन्त मिलता है। अतः यह निश्चित है की कर्कने कहीं अन्यत्रसे आकर अधिकार किया था और अपनी विजयका उपलक्षमें उक्त दान दिया था।

परन्तु इस संभावनाके प्रतिकूल कर्कका विरुद "समधिगत पंच महा शब्द" पड़ता है जिससे स्पष्ट है कि वह किसीका सामन्त था और उसे पंच महा शब्दका अधिकार अपने स्वामीसे प्राप्त हुआ था। अब विचारना है कि कर्कका स्वामी कौन हो सकता है। पूर्वमें हम दक्षिणापथ मान्यखेटके राष्ट्रकूटोंकेइतिहासके पर्यालोचन से प्रगट कर चुके हैं कि दंतिवर्माने लाट प्रदेशको विजय किया था। केवल इतनाही नहीं इसकी माताने खेटकपुरके मातर विषयके प्रत्येक ग्रामकी कुछ भूमि दान दिया था। अब यदि हम दंतिवर्मा और कर्कके जातीय संबंधको दृष्टिकोणमें लावें और साथही नवीन अधिकृत भूभागपर स्वजातीय बंधुओंको शासक नियुक्त करनेके लाभालाभ पर राजनैतिक दृष्टि से विचार करें तो कह सकते है कि दंतिदुर्गने कर्कको नवीन अधिकृत भूभाग पर अपने अधिकारको स्थायी बनानेके विचारसे सामन्त बनाया था।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या कर्क द्वितीय दंतिदुर्गका केवल स्वजातीय बंधु अथवा सम्बंधी था। दंतिदुर्गके इलोरावाले लेखमें उसकी वंशावली निम्न प्रकारसे दी गई है।
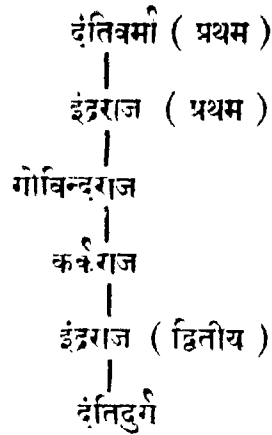
अब यदि हम कर्कके शासन पत्र कथित कर्क प्रथमको दंतिदुर्गके लेख कथित कर्क मान लेवें तो कहना पड़ेगा कि कर्क दंतिदुर्गका सगा चचेरा भतीजा था। इस प्रकार मान लेनेसे मान्यखेटके राष्ट्रकूटों की वंशावली निम्न प्रकारसे होती है।
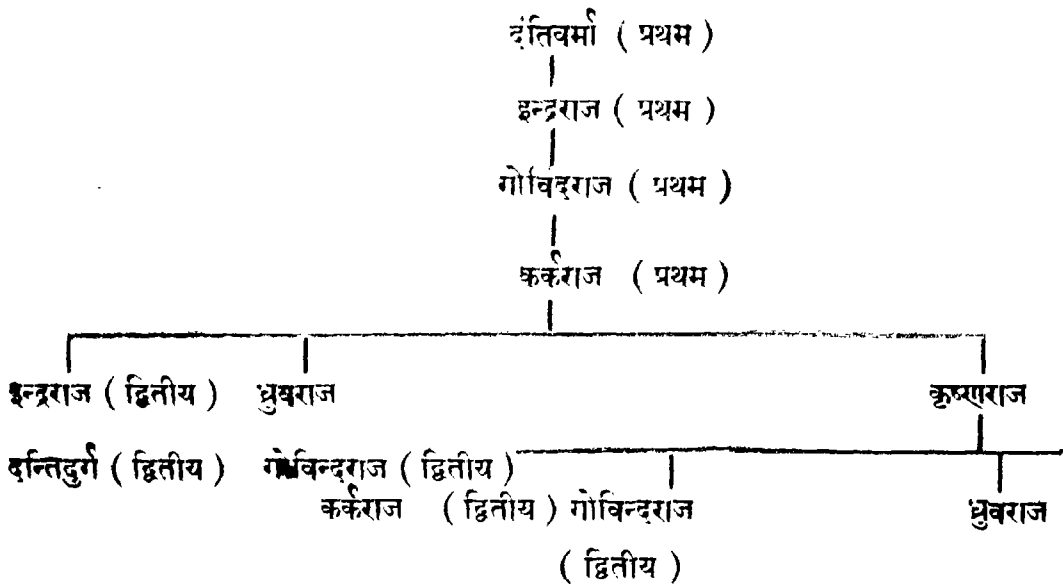
उद्‌धृत वंशावली तथा अन्यान्य बातों पर लक्ष कर हम कह सकते हैं कि आन्तरोली चारोली वाले शासन पत्र कथित कर्कराज द्वितीय दन्तिवर्माका सगा चचेरा भतीजा था। हमारी यह धारणा केवल अनुमानकीही भित्ति पर अवलम्बित नहीं है वरन इसका प्रबल प्रमाणात्मक आधार है। इसी प्रकार उद्‌धृत वंशावलीका कृष्णराज दन्तिदुर्गका दूसरा चचा था। जो दन्तिदुर्गके

पश्चात् मान्यखेटके राष्ट्रकूट राज्य सिंहासन पर बैठा था दन्तिदुर्गके अपुत्र मरने के पश्चात् कर्कने उत्तराधिकारके लिए विवाद उपस्थित किया, और अपने चचेरा दादा कृष्णराजसे लड़ पड़ा। हमारी समझ में कर्कके इस विवादका आधार यह था कि उसका दादा ध्रुवराज दन्तिदुर्गके पिताका मझला भाई था। परन्तु इस विवादमें कर्कको अपने अधिकार और प्राण दोनोंही गंवाने पड़े। हमारी इस धारणाका समर्थन कृष्णके प्रपौत्र, और गुजरातमें राष्ट्रकूटवंशकी स्थापना करनेवाले इन्द्रके पुत्र, कर्कके बरौदासे प्राप्त और इन्डियन एन्टीक्वेरी वोल्युम १२ पृष्ठ १५६ में प्रकाशित लेखके वाक्य कृष्णराजने दन्तिदुर्गके पश्चात स्ववंशके कल्याणार्थ स्ववंशके नाशमें प्रवृत्त आत्मीयका मूलोच्छेदन करके राज्यधुरी संचालनका भार स्वीकार किया। इस शासन पत्रके कथन,—"स्ववंशके नाशमें प्रवृत आत्मीयका मूलोच्छेद करके" तथा हमारी धारणा "कर्कको अधिकार और प्राण गंवाने पड़े" का समर्थन अन्तरोली चारोली वाले कर्कराजके वंशजोंका कुछभी परिचय नहीं मिलनेसे होता है।

इन बातों पर लक्ष कर हम कह सकते हैं कि लाट वसुन्धराके साथ राष्ट्रकूट वंशका सम्बन्ध स्थापित करनेवाला दंतिदुर्ग द्वितीय है। उसने स्वाधीन लाट देशको, शक ६६६ के पूर्व नवसारीके चौलुक्योंको पराभूत करके राष्ट्रकूट वंशके स्वाधीन किया था। लाटदेश अधिकृत करने पश्चात उसने अपने चचेरे भतीजा कर्कको लाटका सामन्त बनाया। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात उसके द्वितीय चचा और कर्कके मध्य उत्तरधिकारके लिये विग्रह मचा है। कर्क युद्धमें मारा गया और कृष्ण विजयी होकर राष्ट्रकूट राज्य सिंहासन पर बैठा।

कृष्णराज के बाद उसका बड़ा लड़का पुत्र गोविंदराज गद्दी पर बैठा परन्तु उसे उसके छोटेभाई ध्रुवराजने उसे गद्दीसे उतार खुद राजा बना। ध्रुवराजने अपने वंशके अधिकारको खूब बढ़ाया। और अपने बड़े पुत्र गोविंदको लाटदेशका शासक नियुक्त किया। गोविंदने लाटदेशका शासक होनेके पश्चात् अपनी राजधानी नासिकके अन्तर्गत मयूर खण्ड नामक स्थानको बनाया। एवं स्तम्भपति और मालवराजको पराभूत किया। मालवा विजयके पश्चात गोविंद विन्ध्य देशके प्रति अग्रसर हुआ और पूर्व मालवाके राजा मार सर्वको स्वाधीन कर लाट देशको लौट

मार्गमें भरूच् जिलाके सरभौन नामक स्थानमें वर्षा ऋतु की (इ. ए. ६. ६४) इसके अनन्तर गोविंद दक्षिण चला गया और जाते समय अपने छोटे भाई इन्द्रको लाट और गुजरातका सामन्तराज बनाता गया।

अतः लाट और गुजरातका राष्ट्रकूट वंशी सर्व प्रथम राजा इन्द्र हुआ। इंद्रके वंशजोंने लाट और गुजरात देश पर पांच वंशश्रेणी पर्यंत राज्य किया। इनके लाट गुजरात राज्यकालकी अवधि शक ७३० से शक ८१० पर्यंत ८० वर्ष है। इस अवधिमें इस वंशके राजाओंकी संख्या ८ है। इनके विविध शासन पत्र और ऐतिहासिक लेखके पर्यालोचनसे गुजरातके राष्ट्रकूटोंकी वंशावली निम्न प्रकारसे होती है।

—: वंशावली :—
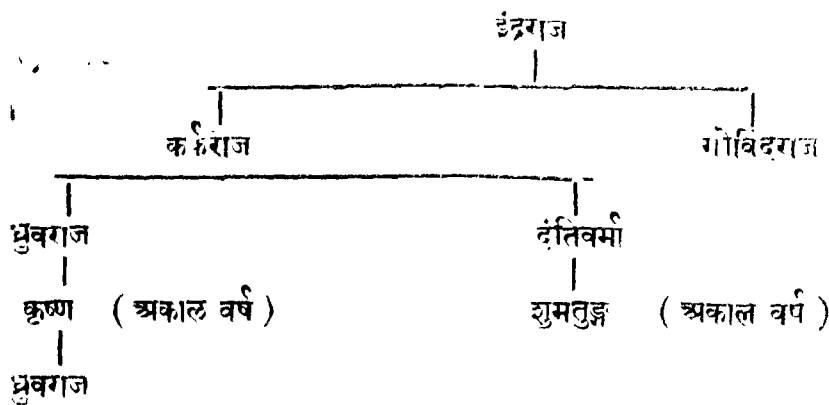
गुजरातके राष्ट्रकूटोंके अद्यावधि ८ शासन पत्र प्राप्त हुए हैं। जिनमें कर्कके तीन लेख हैं। प्रथम बरोदासे प्राप्त शक ७३४ का, द्वितीय नवसारीसे प्राप्त शक ७३८ का और सूरत से प्राप्त शक ७४३ का है। कर्कके भाई और उत्तराधिकारी गोविंदका कावीसे प्राप्त शक ७४९ का एक लेख, ध्रुवका बरोदासे प्राप्त शक ७५३ का एक लेख और ध्रुव राजके पुत्र और उत्तराधिकारी अकाल वर्ष शुमतुङ्गके पुत्र ध्रुव द्वितीयका प्रथम लेख बगुमरासे प्राप्त शक ७८६ का और द्वितीय लेख बरोदासे प्राप्त शक ७८३, और इस वंशका अंतिम लेख कर्कके द्वितीय पुत्र दंतिवर्माके पुत्र अकालवर्ष कृष्ण का बगुमरासे प्राप्त शक ८१० का है।

इन शासन पत्रोंके पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि इनका अधिकार वलसाड़ दक्षिणोत्तरसे लेकर खेड़ा पर्यन्त था। परन्तु इनकी पूर्वीय सीमा ज्ञात नहीं है कर्कके बरौदा से प्राप्त शक ७३४ वाला शासन वटपाद्रक के दानका—नवसारीसे शक ७३८ वाला शासन जो खेटपुरमें प्रचारित किया गया था, शर्मा पद्रक ग्रामके दानका और सूरतसे प्राप्त शक ७४३ वाला शासन पत्र जो वन्किका में प्रचारित किया गया था, नागसारिकाके जैन मंदिर को अम्बापाटक ग्राममें कुछ भूमि देनेका उल्लेख करता है। गोविंदका कावीसे प्राप्त शक ७४९ वाला शासन पत्र जो भृगुकच्छसे प्रचलित किया गया था, कोटिपुरके सूर्य मंदिरको ग्राम दानका वर्णन करता है। ध्रुव प्रथमका बरोदासे प्राप्त शक ७५७ वाला शासन पत्र जो खेटपुरके समीप वाले सर्व मंगला नामक स्थानसे प्रचारित किया गया था, और वदरसिद निवासी योग नामक ब्राह्मणको ग्राम दानका उल्लेख करता है। ध्रुव द्वितीयका बगुमरासे प्राप्त शक ७८६ वाला लेख जो भृगुकच्छसे शासित था, परहनाकके ब्राह्मणको दान देनेका वर्णन करता है। इसका बरोदावाला लेख जो भृगुकच्छसेही शासित है, मही नदीके समीपवर्ती कोनवाली नागभान ग्रामके कपालेश्वर महादेव मन्दिरके दानका वर्णन करता है। अन्त तो गत्वा अकालवर्ष कृष्णका बगुमरासे प्राप्त शक ८१० वाला शासन पत्र जो अकुरेश्वरमें शासित है। ११६ ग्रामवाले वारिद्राव्रि (वरीआव) विषयके काविस्थल (कोसाड) ग्राम निवासी ब्राह्मणोंको भूमिदान देने का वर्णन करता है।

पुनश्च इन शासन पत्रों पर दृष्टिपात करनेसे प्रगट होता है कि गुजरातके इन राष्ट्रकूटोंका इतिहास निम्न प्रकारसे है। गुजरातके राष्ट्रकूट वंशके संस्थापकइन्द्रराजको अपने बड़ेभाई गोविंद राजकी कृपासे लाट प्रदेशका राज्य शक ७३० में मिला। परन्तु इसने प्राप्त राज्यलक्ष्मीका उपभोग केवल चार वर्ष किया इसी थोड़ी अवधिमेंभी इसे सुख और शान्ति प्राप्त नहीं हुई। संभवतः इसपर गुर्जर नरेशने आक्रमण किया था। परन्तु इसने उसे मार भगाया। अपनी इस विजयसे उन्मत्त हो स्वतंत्र बननेके प्रयोगमें लगा। इसे अपने इस कार्य में प्रवृत्त होनेका अवसरभी मिल गया। क्योंकि राष्ट्रकूटवंशी अन्यान्य सामन्तोंने प्रधान शाखाका विरोध किया। यह झट पट उनके साथ मिल गया। परन्तु राजकुमार श्री वल्लभ ('सर्व अमोघ-वर्ष) ने स्वजातीयोंकी सम्मिलित सेनाका दमन कर इस विद्रोह अग्निको जनमतेही शान्तकर

दिया। अतः इन्द्रको स्वातंत्र्य सुखभोगका अवसर न मिला। स्वातंत्र्यकी आशाके साथही उस अपने नश्वर शरीरका संबंधभी छोड़ना पड़ा।

इन्द्रके पश्चात् गुजरातके राष्ट्रकूट सिंहासन पर उसका बड़ा पुत्र कर्कराज बैठा। इसने शक ७३४ के पूर्व गद्दी पर बैठतेही अपने पिताकी "प्रधान शाखाके साथ विरोध" नीतिका परित्याग कर सहयोग मार्गका अवलम्बन किया। और अपने चचा गोविंद तृतीयकी सहायतामें अपनी सेनाके साथ उपस्थित हुआ। जब गुर्जर नरेशने मान्यखेटके आधीन मालव नरेशके पर आक्रमण किया तो कर्क अपनी सेनाके साथ रणमें उपस्थित हो उसकी रक्षाकी थी। पुनश्च जब शक ७३६ मे गोविंद तृतीयकी मृत्यु पश्चात् राजकुमार श्रीवल्लभ सर्व अमोघवर्षके उत्तराधिकारका विरोध उसके संबंधिओं के संकेतसे सामन्तोंने किया तो कर्क अपनी सेनाके साथ आगे बढ़ उनका दमन कर उसे सिंहासन पर बैठाया। जिसकी कृतज्ञतामें उसने कर्कको संभवतः उत्तर कोकणका समुद्र तटवर्ती भूभाग प्रदान किया। संभवतः शक ७४८ के आसपास कर्ककी मृत्यु हुई और उसके दोनों पुत्रों ध्रुवराज और दन्तिवर्माके अल्प वयस्क होनेके कारण इसका छोटाभाई गोविंद गद्दी पर बैठा।

गोविंदने लाट वसुन्धराका उपभोग शक ७४८ से ७५६ पर्यन्त किया। पश्चात् कर्कका ज्येष्ठ पुत्र ध्रुवराज वयस्क होने पर गद्दी पर बैठा यह ज्ञात नहीं कि गोविंदने अपनी इच्छासे युवराजको वयस्क होने पर राज्यभार दे दिया था अथवा उसने बल पूर्वक अपने पैतृक अधिकार को प्राप्त किया था। ध्रुव प्रथमको गद्दी पर आने पश्चात् प्रधान शाखाके साथका सौहार्द टूट गया। गुजरात और दक्षिणके दोनों (प्रधान और शाखा) राष्ट्रकूट वंशपुनः विग्रह जालमें फंस गये मान्यखेटके राष्ट्रकूटराज श्री वल्लभ अमोघ वर्षके लेखोंसे प्रगट होता है कि उसने अठिका पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर दिया था। पुनश्च इस विग्रहका स्पष्ट परिचय ध्रुव प्रथमके पुत्र ध्रुव द्वितीय के बगुमरा वाले शक ७८९ के लेखमें मिलता है। उक्त लेखसे ज्ञात होता है कि ध्रुव प्रथमने श्री वल्लभ की सेनाके साथ लडता हुआ घोर रूपसे आहत हो रणक्षेत्रमें अपने नश्वर शरीरका परित्याग किया था।

ध्रुव प्रथमकी मृत्युके पश्चात् इसका पुत्र अकालवर्ष गद्दी पर बैठा और आक्रमणकारी श्रीवल्लभकी सेना को पराभूत कर अपने पैतृक अधिकारको स्वाधीन न किया। अकालवर्षके

पश्चात् उसका पुत्र ध्रुव द्वितीय गद्दी पर बैठा। इसके राज्यारोहण के समय उसके सम्बन्धियोंने उपद्रव मचाया किन्तु उनके विद्रोहको इसने दमन किया। इस घटनाका उल्लेख ध्रुवके बगुमरा और बरोदावाले दोनों लेखोंमें है। पुनश्च ध्रुवके बगुमरावाले लेखसे प्रगट होता है कि उसके राज्य पर मेहरराजने आक्रमण किया था। परन्तु इसने अपने गोविंदराज नामक बन्धुभ्राताकी सहायतासे उक्त मेहरराजको पराभूत किया। ध्रुवके राज्यकालमेंही संभवतः गुजरातके राष्ट्रकूटों के हाथ से वातापिके दक्षिणका प्रदेश निकल गया प्रतीत होता है। क्योंकि बगुमरा वाले लेखमें चार वर्ष उत्तरकालीन बरोदावाले लेखमें स्पष्टतया ध्रुवके राज्यको नर्मदा (भृगुकच्छ) और मही नदीके मध्य परिमित होनेका उल्लेख पाते हैं। संभवतः श्रीवल्लभ अमोघ वर्ष उक्त प्रदेशको प्रधान शाखाके अधिकारमें मिला लिया था जिसको ध्रुवके चचा और उत्तराधिकारी अकाल वर्षने पुनः प्राप्त किया। जिसका उल्लेख उसके बगुमरा वाले शक ८१० के लेखमें पाया जाता है।

ध्रुव द्वितीयकी मृत्यु कब हुई और इसके भाई गोविंदका क्या हुआ इसका कुछभी परिचय नहीं मिलता। संभवतः गोविंदकी मृत्यु ध्रुवके पूर्व हुई थी। वरना अकालवर्ष उसका चचा उसका उत्तराधिकारी नहोता। अकालवर्षके बगुमरा वाले शक ८१० के लेखोंमें उसे स्पष्टतया कर्कका पौत्र और दन्तिवर्माका पुत्र लिखा है। अकाल वर्षके पिता दन्तिवर्माको कर्कके शक ७३४ वाले शासन पत्र कथित दूतक राजपुत्र दन्तिवर्मा मान कर पाश्चात्य विद्वानोंने उसे कर्कका ज्येष्ठ पुत्र माना है और शंका की है कि कदाचित बगुमराके उक्त लेखकी वंशावली में कुछ भूल है। क्योंकि दन्तिवर्मा कथित शक ७३४ लेखका दूतक होने के कारण वह अवश्य उस समय वयस्क था। अतः उसके पुत्र अकाल वर्षका लगभग ७६ पर्यन्त जीवित रहना असंभव है। इन विद्वानोंकी इस उद्भाविता शंकाके समाधान हमारा विनम्र निवेदन है कि वे आद्योपान्त भूल कर रहे हैं। इनकी भूल करनेवाला कहनेका कारण निम्न है।

१—किसी शासन पत्रमें "राजपुत्र" शब्दका प्रयोग दूतकके नामके साथ—दूतकको शासन कर्ता राजाका पुत्र नहीं सिद्ध कर सकता चाहे शासन कर्ताको दूतकके नामक राजी पुत्रभी क्यों न हो।

२—अनेक राजाओंके शासन पत्रोंमें दूतकके नामके साथ "राजपुत्र" विशेषण देखनेमें आता है अतः हम कह सकते हैं कि "राजपुत्र" शद्बका प्रयोग "राज वंशोद्भव" भाव ज्ञापन करनेके लिये किया जाता है। कथित "राजपुत्र" शद्बका विशेष प्रयोगही उत्तरभावी "राजपुत्र" शद्बका जनक है।

३—यदि उनकी संभावनाके अनुसार दन्तिवर्माकी मृत्यु पिताकी जीवित अवस्थामेंही हो गई थी; और उसका द्वितीय पुत्र (कर्कराज) उसकी वृद्धावस्थामें हुआ था जिसके अल्प वयस्क होने के कारण गोविंद गद्दीपर बैठा। तो ऐसी दशामें हमें अकाल वर्षका जन्म अपने चचा ध्रुवके जन्मसे पूर्व मानना पड़ेगा। और ऐसा माननेपर वह अल्प वयस्क क्योंकर होसकता है। पुनश्च कर्कराजके ज्येष्ठ पुत्र होनेके कारण वह न्यायोचित उत्तराधिकारी था। ऐसी दशामें गोविंद और ध्रुवको राज्य क्योंकर मिल सकता है।

इन्हीं कारणोंको लक्षकर हमने यह निश्चय किया हैकि दन्तिवर्मा न तो कर्क राजका ज्येष्ठ पुत्र और न उसके शासन पत्रका दूतक था। वरन वह उसका छोटा पुत्र और ध्रुवराजका अनुज था। अब यदि हम दन्तिदुर्गका जन्म पिताकी मृत्युके कुछ पूर्व मान लेवें तो वैसी दशामें उसका जन्म हमें ७४७–४७ में मानना पड़ेगा। अतः शक ८१० में अपना शासन पत्र जारी करते समय उसकी आयु ६२ वर्षकी ठहरती है। जबके पाश्चात्य विद्वान, श्री वल्लभ अकाल वर्षका राज्य काल ७२६–७९९ वर्ष ६३ बिना मीन मेष मानते हैं। तो ऐसी दशामें उपरोक्त अकाल वर्षकी आयु ६३ वर्ष माननेसे आनाकानी करना सरासर मनमानी घरजानी के बराबर है।

अकाल वर्षके साथही लाट गुजरातके राष्ट्रकूटोंके प्रत्यक्ष संबंधकी समाप्ति होती है। परन्तु यह समाप्ति ठीक किस समय हुई इसका परिचय नहीं मिलता। किन्तु यह निश्चित है कि शक ८१० और ८३६ के मध्य किसी समय प्रधान शाखावालोंने लाट गुजरातकी शाखाका अन्त कर लाट–गुजरातको स्वाधीन कर लिया था।

राष्ट्रकूटों का अप्रत्यक्ष सम्बन्ध

दक्षिणा पथ मान्यखेटके राष्ट्रकूटोंका द्वितीयवार अप्रत्यक्ष संबंध शक ८१० के पश्चात कृष्ण अकाल वर्षसे स्थापित किया और यह अप्रत्यक्ष संबंध शक ८६३ पर्यंत स्थित प्रतीत होता

है। इस अवधिमें मान्यखेटके राष्ट्रकूट सिंहासनपर आठ राजा बैठे। इन राजाओंका समावेश चार वंश श्रेणीमें है। और इनकी वंशावली निम्न प्रकारसे होती है।
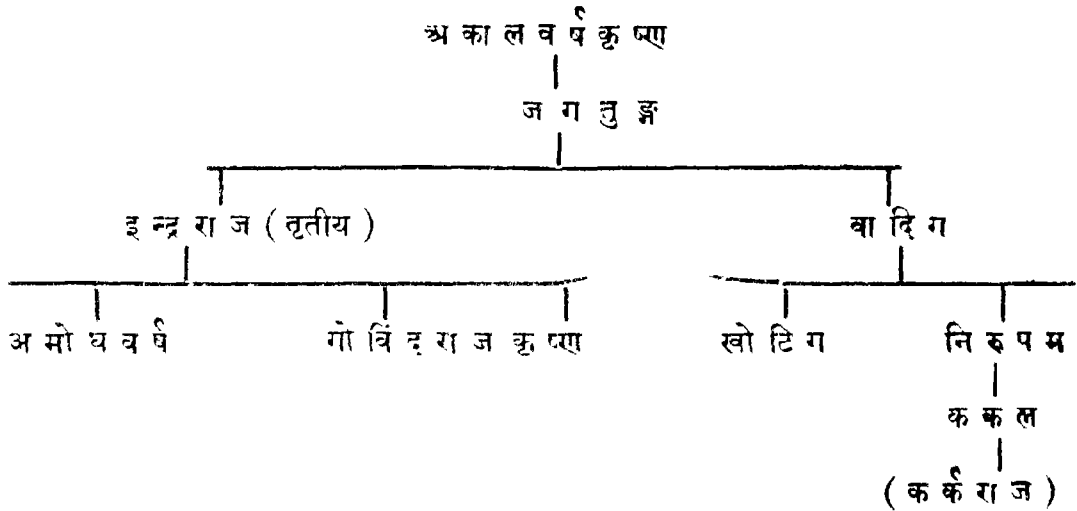
इनके इतिहासके परिचायक इनके अनेक शासन पत्र हैं। कृष्ण अकालवर्षके पौत्र इन्द्रराजके नवसारीसे प्राप्त शक ८३६ के दो लेख और उस (कृष्ण) के सामन्त प्रचण्डका कपडवंजसे प्राप्त शक ८३२ का तीसरा लेख है। इन शासन पत्रोंके पर्यालोचनसे ज्ञात होता हैकि अकाल वर्ष कृष्णने संभवतः शक ८३२ में गुजरातके राष्ट्रकूट (शाखा) वंशका नाश संपादन किया था। उक्त युद्ध में उसके शिल्हारवंशी सामंत तथा प्रचण्ड नामक सेनापतिने पूर्व शौर्य दिखाया था। कृष्ण अकाल वर्षके बाद उसका पुत्र इंद्र तृतीय गद्दी पर बैठा। इसके समय लाट और गुजरातका संबंध अक्षुण्ण रूपसे पाया जाता है, इंद्रराजके पश्चात् लाट गुजरातके साथ इनका सम्बंध पाया नहीं जाता, इसका कुछभी परिचय नहीं मिलता। परंतु शिल्हारोंके खारेपाटनवाले लेखसे प्रगट होता है कि ये राष्ट्रकूटोंको अपना अधिराज कहते थे अनंतर हम एक वयक शक ६०० के आसपासमें चौलुक्यराज तैलपदेवके सेनापति बारणको पाते हैं।

शिल्हार राजवंश

हमारे विवेचनीय ऐतिहासिक काल तथा देशके साथ स्थानकके शिल्हारोंका संबंध है। अतः हमारी समझमें इनके अधिकार और इतिहास पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। इस हेतु निम्न भागमें सूक्ष्म रूपसे कुछ प्रकाश डालनेका प्रयत्न करते हैं। अद्यावधि

उत्तर कोकणके शिल्हराओं के वर्तमान कोलाबा और थाना जिलाके विविध स्थानोंसे शक ७५० से ११८२ के मध्यवर्ती निम्न ताम्र शासन और शिलालेख प्राप्त हुए हैं।

१—श्री स्थानक (वर्तमान थाना) " प्रसिद्ध षटषष्ठि (शालिशेट) द्वीपके कृष्णगिरी (कन्हेरी) की गुफा संख्या ७८ का पुलशक्तिके राज्यकालीन विना संवत्‌का शिलालेख।

२—उक्त कृष्णगिरीका गुफा संख्या १० और ७८ में उत्कीर्ण शक ७७५ और ७९९ वाला कापर्दि द्वितीयका शिलालेख।

३—अपराजितका शक ९१९ वाला शासन पत्र, जो थाना जिलाके भीवंडी तालुकाके भदान नामक स्थान से प्राप्त हुआ था।

४—थानासे प्राप्त अरिकेसरीका शासन पत्र संवत ९३९ का।

५—छित्तिराजका शक ९४८ वाला शासन पत्र।

६—मुमुनिका शक ९८२ " " "।

७—अनंतपालका शक १००३ और १०१८ वाले दो शासन पत्र।

८—अपरादित्यका शक १०६० वाला शिला लेख।

९—हरिपालदेवका शक १०७०—१०७१ और १०७५ वाले तीन लेख।

१०—मल्लिकार्जुनका चिपलूनवाला शक १०७८ और वेसीनवाला शक १०८२ का दो लेख।

११—अपरादित्य द्वितीयका शक ११०६ और ११०९ वाले दो लेख।

१२—सोमेश्वरका शक ११७१ और ११८२ वाले दो लेख।

इसके अतिरिक्त इनका राष्ट्रकूटोंके लेखोंमें प्रसंगानुसार उल्लेख पाया जाता है, पुनश्च वातापि कल्याण और पाटनके इतिहासमें इनका संबंध दृष्टिगोचर होता है। इन शासन पत्रों और शिलालेखोंके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि शिल्हरा शब्दका पर्याय शिलहार–शैलहार–शिलार और श्रीलार आदि है। एवं इनका जातीय विरुद "तगर पुराधीश्वर" था। जिससे प्रकट होता है कि इनके पूर्वजोंकी राजधानी तगरपुरमें थी। क्योंकि हम कदम्बोंको "वनवासी पुराधीश्वर" यादवोंको "द्वारावती पुराधीश्वर" और उत्तरकालीन चौलुक्योंके "कल्याण पुराधीश्वर" विरुदको धारण करते पाते हैं। जो स्पष्टरूपेण उनके पूर्वजोंकी राजधानीका ज्ञापक है। पुनश्च प्रकट होता है कि इनका अधिकार वर्तमान कोलावा और थाना जिलाओंके भूभाग

पर परिमित था। और इनकी राजधानी प्रथम पूरी में और पश्चात् श्रीस्थानक (थाना) में थी। इनका राजकीय बिरुद महा सामन्त था और प्रारंभसे ही राष्ट्रकूटोंके आधीन थे। राष्ट्रकूटोंके उत्पाटन पश्चात इन्होंने क्षणिक स्वातंत्र्यका उपभोग किया परन्तु चौलुक्योंने इन्हें शीघ्रही पराभूत कर अपने स्वाधीन किया था। अन्ततोगत्वा इनकी वंशावली निम्न प्रकारसे प्राप्त होती है। और इनका राज्यकाल शक ७३५ से लेकर ११८२ पर्यंत ४४७ वर्ष है।
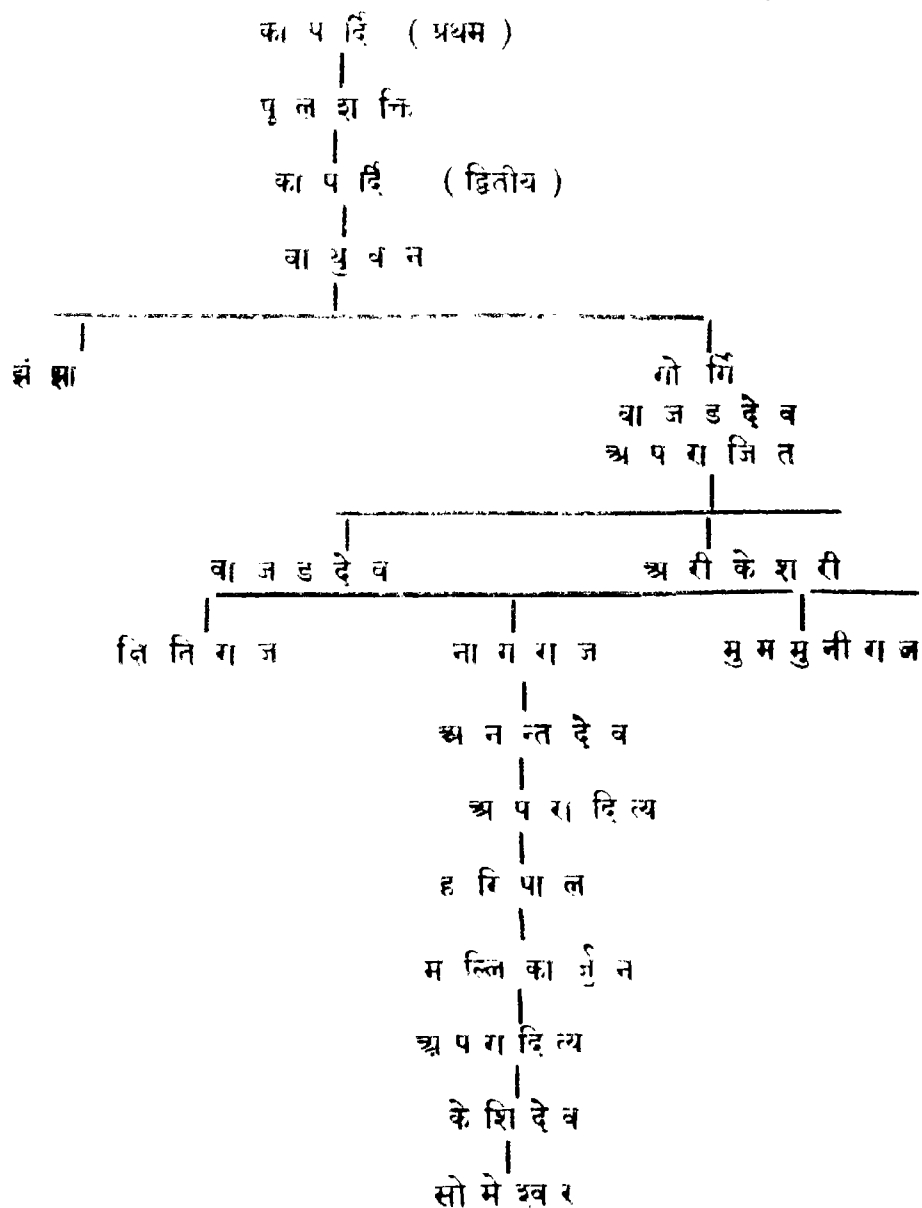
उधृत वंशावली पर दृष्टिपात करनेसे प्रगट होता है कि पुलशक्ती जिसका विना संवतका लेख कृष्णागिरीकी गुफा संख्या ७८ में उत्कीर्ण है, अपने वंशका द्वितीय राजा था। पुलशक्ती अपने कथित लेखमें स्पष्टतया अपने आपको राष्ट्रकूट अमोघवर्षका सेवक तथा कोकणके मंगलपूरीका शासक घोषित करता है। अब विचारना है कि कथित राष्ट्रकूट अमोघवर्ष कौन है। प्रस्तुत शिलालेखकी तिथि न होने से कुछ झंझट सामने आती है क्यों कि राष्ट्रकूट वंशमें अमोघवर्ष नामक अनेक राजा हुए हैं। तथापि पुलशक्तीके पुत्र और उत्तराधिकारी कापर्दि द्वितीयके कृष्णागिरीकी गुफा संख्या १० वाले शिलालेख, जिसकी तिथि शक ७७५ है, हमारा त्राण करता है। क्योंकि कथित लेखको दृष्टि कोणमें रख कर हम निर्भय होकर कह सकते हैं कि पुलशक्तीका समय अधिकसे अधिक ७५० पर्यंत पीछे जा सकता है। पुलशक्तीका अनुमानिक समय, ७५० प्राप्त करनेके पश्चात उसके स्वामी अमोघवर्षका समय प्राप्त करना कोई कठिन काम नहीं रह जाता है। राष्ट्रकूटोंके इतिहास विवेचन करते समय पूर्वमें हम दिखा चुके हैं कि शक ६६६ के कुछ पूर्व मान्यखेटके राष्ट्रकूट दन्तिवर्माने लाट और मालवा आदिको स्वाधीन किया था। और दन्तिदुर्गके उत्तराधिकारी और चचा कृष्णके द्वितीय पुत्र ध्रुवने अपने बड़ेभाई गोविंदको हटाकर स्वयं गद्दी पर बैठा था। एवं राष्ट्रकूटोंके अधिकारको खूब बढ़ाया था। ध्रुवने अपने बड़े पुत्र गोविंदको राज्यके उत्तरांचल प्रदेशका शासक नियुक्त किया था। जिसने मयुरखण्डको अपनी राजधानी बनाया था। और इसके अधिकारमें प्राय: नासीक, थाना सुरत और भरुच आदि जिलाओं तथा बरोदाका नवसारी प्रांत–वांसदा और धर्मपूर आदिके भूभाग थे। गोविंद शक ७३० में अपने छोटेभाई इन्द्रराजको लाटका शासक बना स्वयं दक्षिण जाकर प्रधान शाखाकी गद्दी पर अपने पिताके पश्चात् बैठा गोविंदकी मृत्यु शक ७३६ के पूर्व हुई और उसका पुत्र अमोघवर्ष गद्दी पर बैठा। और शक ७३६ से शक ७९९ के पश्चात् पर्यंत राज्य किया। पुलशक्ती और उसके पुत्र कापर्दि द्वितीयके लेख इसी अमोघवर्षके राज्यकालमें पड़ते हैं। अत: हम पुलशक्तीके स्वामी अमोघवर्षको मान्यखेटपति राष्ट्रकूट गोविंद तृतीयका पुत्र और उत्तराधिकारी अमोघवर्ष घोषित करते हैं।

कापर्दि द्वितीयके पूर्व कथित कृष्णागिरीकी गुफा संख्या १० और ७८ के शिलालेख ७७५ और ७९५ के पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि वह अपने पिता के समान राष्ट्रकूटोंका

सामन्त था। और इसके अधिकारमें पिताके समानही भूभाग था। कापर्दिके पुत्र और उत्तराधिकारी वायुवर्णके सम्बन्धमें कुछ ऐतिहासिक बातोंका ज्ञान हमें प्राप्त नहीं है। परन्तु उसके और उसके उत्तराधिकारी झंझ के सम्बन्ध में अवान्तर प्रमाणसे कुछ परिचय प्राप्त होता है। अरब ऐतिहासिक मासुदीके लेखोंसे प्रकट होता है कि उसके समय, अर्थात शक ८२८ में उत्तर कोकणमें झंझ राज्य करता था। मासूदीने झंझको सैमरका राजा लिखा है। मासूदीका सैमर वर्तमान थाना जिलाका चेउल है। पुनश्च शक ८१६ के शासन पत्रसे प्रगट होता है कि झंझ परम शैव था और उसने १२ शिव मन्दिरका निर्माण किया था। एवं उसकी कन्या लछ्मिगवाका विवाह चांदोद (चंद्रावती) के यादव राज भिल्लम के साथ हुआ था। अन्ततोगत्वा मान्यखेटके इतिहासके पर्यालोचनसे यह बात निर्भ्रांत है कि कृष्ण अकाल वर्षके गुजरात विजय के समय शिल्हार राजा जो उसका सामन्त था, साथ था। अन्यान्य ऐतिहासिक घटनाओं पर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि कृष्ण अकाल वर्षका सामन्त और सहायक शिलाहार राजा झंझ था।

झंझ अपुत्र मरा अतः उसका छोटाभाई गोर्गि उसका उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु गोर्गिका केवल नाम मात्र परिचयके अतिरिक्त हमें ऐतिहासिक विवरण कुछ ज्ञात नहीं है। जिस प्रकार गोर्गिके राज्यकालका हमें कुछभी ज्ञान नहीं है उसी प्रकार उसके पुत्र वाजडके राज्यकालका इतिहास अन्धकारके गारमें पड़ा है। परन्तु वाजडके पुत्र और उत्तराधिकारी अपराजितका शक ९१९ का शासन पत्र भिवंडीसे १० मीलकी दूरीपर अवस्थित भीड़ नामक स्थानसे प्राप्त हुआ है। उक्त शासन पत्र हमें बताता है कि अपराजितके राज्यकालमें राष्ट्रकूट कक्कलको चौलुक्यराज तैलपने पराजित कर राष्ट्रकूट राज्य लक्ष्मीको अंकशायिनी बनाया था। और अपराजित स्वतंत्र हो गया था। प्रस्तुत शासन पत्र हमें दो घटनाओंका परिचय देता है। प्रथम घटना राष्ट्रकूट वंशका पराभव और अन्तिम राजा कक्कलका रणक्षेत्रमें मारा जाना। दुसरी घटना अपराजितका स्वतंत्र होना है। प्रथम घटनाके पूर्णतः सत्य होनेमें हमें महती शंका है। हमारी इस शंकाका कारण यह है कि चौलुक्यराज तैलपदेवका अधिकार राष्ट्रकूटोंके समस्त राज्यपर हो गया था। हमारी इस धारणाका समर्थन इस बातसे होता है कि जब पाटन पति मूलराजने राष्ट्रकूटवंशके पराभवसे लाभ उठानेके विचारसे

दक्षिणके प्रति दृष्टिपात किया तो तैलपने अपने सेनापति बारपको लाटका सामन्तराज बनाकर भेज दिया। जिसने मूलराजको अन्त तक लाट वसुन्धरा पर पैर नहीं रखने दिया। इतनाही नहीं, वरण बारपके सहायकोंमें द्वीप नरेशका नाम पाते हैं। हमारे पाठकोंको ज्ञात है कि शिल्हाराओंके अधिकारका (उत्तर कोंकण) नामांतर कापर्दि द्वीप है। अतः हमारी समझमें द्वीप नरेशसे शिल्हाराओंका संकेत है। चौलुक्यराज तैलपदेवकी राष्ट्रकूट विजयकी तिथि ८९४ और प्रस्तुत शासनकी तिथिमें २३ वर्षका अन्तर है। पुनश्च बारपराजके लाटका सामन्त बनाये जानेकी तिथि शक ९०० और प्रस्तुत शासन पत्रकी तिथिमें १६ वर्षका अन्तर है। एवं प्रस्तुत शासन पत्र तैलपदेवकी मृत्युवाले वर्षका है। अतः हम कह सकते हैं कि संभवतः तैलपकी मृत्यु पश्चात और सत्याश्रयके वारण (वर्तमान मैसूर) वाले चौलुक्योंके साथ उलझे होनेके कारण अपराजितने अपनी स्वतंत्रताकी घोषणा की हो। यदि हम इस संभावनाको थोड़ी देरके लिये मानभी लेवें, तोभी यह कहना पड़ेगा की अपराजितकी यह स्वतंत्रता क्षणिक थी। क्योंकि बारपकी मृत्यु शक ९२२ के आसपास हुई थी। और उक्त समय कापर्दि द्वीपवाले उसके सहायकोंमेंसे थे। पुनश्च हमारी इस संभावनाका समर्थन इस बातसेभी होता है कि अपराजितके वंशजोंको महामण्डलेश्वर और सामन्ताधिपतिका विरुद धारण करते पाते हैं।

अपराजितके कथित शासन पत्रसे उसके अधिकारका परिचय नहीं मिलता परन्तु कथित शासन पत्रको उसने श्रीस्थानकमें निवास करते समय शासित किया था। अतः निश्चित है कि इसके पैतृक अधिकारमें राज्य परिवर्तन होनेपरभी किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं हुआ। अपराजितके पश्चात उसका बड़ा पुत्र वाजडदेव गद्दीपर बैठा परन्तु वह नाममात्रका राजा हुआ। बाद उसका अनुज अरीकेशरी गद्दीपर आया। अरीकेशरीका शासन पत्र थानासे प्राप्त हुआ है। उक्त शासन पत्रकी तिथि शक ९३६ है। इसके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि अरीकेशरीका विरुद "महा मण्डलेश्वर" था और वह संपूर्ण कोंकणका शासक था। साथही शासन पत्र यहभी प्रकट करता है कि वह १४०० ग्रामोंका स्वामी था। उसकी राजधानी पूरीमें थी। शासन पत्रके शासित करने का ज्ञापन स्थानक और हमयमन निवासिओंको किया है। अब यदि शासन पत्रके कथन "अरीकेशरी संपूर्ण कोंकणका शासक था" माने तो मानना पड़ेगा कि उसके अधिकारमें गोवासे लेकर वर्तमान सुरत जिलाके वलसाड और चिखली पर्यंत भूभाग था। परन्तु यह हम

कदापि नहीं मान सकते। क्योंकि दक्षिण कोंकणमें इस समय दो भिन्न भिन्न शिल्हार राज्यवंश करहाट और कोल्हापूरमें शासन करता था। यदि संपूर्ण कोकणका भाग केवल उत्तर कोकण माना जाय तो वैसी दशामें हमें कोईभी आपत्ति नहीं है। पुनश्च शासन पत्र कथित १४०० ग्रामोंके शासन का कुछभी भाव हमारी समझमें नहीं आता। परन्तु देखते हैं कि अरीकेशरीके पश्चात वाले अनेक राजाओं के लिये भी १४०० ग्रामोंका शासक कहा गया है। अतः हम कह सकते हैं कि किसी कारणवशात यह इनका वंश गत विरुद हो गया था। अरिकेशरीको क्षितिराज, नागार्जुन और मुममुनि नामक तीन पुत्र थे। जिनमेंसे क्षितिराज उसका उत्तराधिकारी हुआ।

क्षितिराजका शासन पत्र थाना जिलाके भाण्डप नामक स्थान से मिला है। इसकी तिथि शक ६४८ है। इसमें क्षितिराजका विरुद महासामन्त और महामण्डलेश्वर प्रगट होता है। जिस प्रकार क्षितिराजके पिता अरिकेशरीका शासनपत्र उसे १४०० ग्रामोंका स्वामी और कोकण पति कहता है उसी प्रकार इसका शासन इसको वर्णन करता है। यहां तक समता पायी जाती है कि अरिकेशरीके शासन समानही इसके शासनको हमयमन ग्राम वासिओंको संबोधन किया गया है। क्षितिराजका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई नागार्जुन हुआ। परन्तु यह ज्ञात नहीं कि क्षितिराजकी मृत्यु कब हुई और नागराज गद्दी पर कब बैठा। किन्तु मुममुनि का शिलालेख शक ६८२ का हमें प्राप्त है अतः हम निश्चयके साथ कह सकते हैं कि नागराजके शासनकालका समावेश ९४८ और ९८२ के मध्य है। नागराजके बाद उसका छोटा भाई मुममुनिराज हुआ। इसका एक शिला लेख कल्याणके समीप अम्भेडनाथ नामक शिव मन्दिरमें लगा है। उसके मननसे ज्ञात होता है कि उसने अपने ज्येष्ठ भ्राता क्षितिराज कृत एक राज्य-भवन का जीर्णोद्धार किया था। इसके अतिरिक्त शिल्हाराओंके लेखोंसे इसके सम्बन्धमें कुछ पता नहीं मिलता। हां, वातापि कल्याणके चौलुक्योंके इतिहाससे प्रकट होता है कि विक्रमादित्य छठेके सेनापतिने उसके छोटेभाई युवराज जयसिंहके लाट और डाहल विजयके समय कापर्दि द्वीपके राजाको रणमें मारा था। और संभवतः जयसिंहने राजयवंशकी किसी अन्य व्यक्तिको अपने प्रतिनिधि रूपसे गद्दी पर बैठाया था। इस विषयका विशेष विवेचन जयसिंहके शक १००३ वाले लेखके विवेचनमें—चौलुक्य चंद्रिका लाट वासुदेवपुर खण्डमें दृष्टिगोचर होगा। इस घटनाका उल्लेख यद्यपि शिल्हाराओंके अपने लेखमें नहीं मिलता तथापि उसका संकेत

मुममुनिके बाद गद्दीपर बैठनेवाले अनन्तपालके द्वितीय लेख शक १०१६ वालेमें पाया जाता है। मुममुनीके उत्तराधिकारी अनन्तपालके प्रथम लेख शक १००३ वाले में बन्धुओंके उपद्रवका उल्लेख नहीं है। और इसी वर्षके जयसिंहके शिला शासनमें उसके लाट विजयका उल्लेख हैं। इसलिये हम कह सकते हैं कि मुममुनि शक १००३ के पूर्व मारा गया था और उसका पुत्र अनन्त गद्दीपर बैठा। किन्तु जयसिंहने उसे हटाकर दुसरेको अपना प्रतिनिधि बनाया।

अनन्त जैसाकि हम ऊपर बता चुके हैं शक १००३ में अपने पिता मुममुनिके मारे जाने बाद गद्दीपर बैठा। परन्तु उसे गद्दीसे उतार युवराज जयसिंहने दूसरेको बैठाया। जिसे अनंतपाल जयसिंहके पराभव पश्चात् १००९ और १०१६ के मध्य हटाकर पुनः गद्दीपर बैठा। और इसके इसी घटनाका इसके शक १०१६ वाले लेखमें अलंकारिक भाषामें वर्णन किया गया है। कथित लेखके अलंकारको छोड़तेही स्पष्टतया हमारी धारणाका समर्थन होता है। अनंतपालने कबतक राज्य किया इसका कुछभी परिचय नही मिलता। और न उसके बाद वंशावलीका क्रम मिलता है। हां, अनंतपालके बाद ६ शिल्हाराओंको थाना जिलामें राज्य करते पाते है। परन्तु यह ज्ञात नहीं होता कि उनका परस्पर क्या संबंध था। उसी प्रकार अनंतपालके बादवाले अपरादित्यका उसके साथ क्या संबंध था अद्यावधि अज्ञेय है।

अपरादित्यका शक १०६० वाला लेख प्राप्त है, इससे केवल इतनाही ज्ञात होता है कि वह शिल्हार वंशका था और सामन्त रूपसे अपने अधिकार पर शासन करता था। हमारे पाठकोंको ज्ञात है कि अनंतपाल शक १००३ के आसपास गद्दीपर बैठा था, और इसका प्रथम लेख शक १००३ और दुसरा १०१६ का है। अतः अनंतपाल और अपरादित्यके मध्य ४४ वर्षका अन्तर पड़ता है। केवल ४४ वर्षके अन्तरमेंही कोई अपने पूर्वजोंका परिचय नहीं भूल सकता। अतः हम कह सकते हैं कि अपरादित्य अनंतपालका जाति बन्धु होते हुए भी निकटतर संबंधी नहीं था। संभवतः जयसिंहके पुत्र विजयसिंहने जब शक १०१२-१३ के मध्य सह्याद्रि उपत्यका पर अधिकार किया तो अपने पांव जम जाने बाद उसने शक १०१६ के पश्चात किसी समय अनन्तपालको ठोकपीट कर गद्दी से हटा अपने किसी शिल्हार वंशी सेनापतिको गद्दी पर बैठाया होगा। और उसके अधिकारमें नाम मात्रका अधिकार रह गया होगा। यही कारण है कि अपरादित्यके उक्त लेखमें अनंतपालके साथ उसके सम्बन्धका परिचय

नहीं मिलता। किन्तु इतना तो निश्चय है कि अपरादित्यका प्रस्तुत १०६० वाला लेख अन्तिम काल का है। अपरादित्यके पश्चात हरिपाल देव गद्दी पर बैठा। उसका समय शक १०६० और १०७५ के मध्य है। हरिपालके तीन लेख शक १०७०–७१ और १०७४ के प्राप्त हैं। इन लेखोंसे कुछभी विशेष परिचय नहीं मिलता। हरिपालके पश्चात मल्लिकार्जुन गद्दी पर बैठा। यह वास्तवमें शिल्हार वंशका राजा था इसके अधिकारमें शिल्हारोंके पूर्व अधिकार के होनेका परिचय पाया जाता है। क्योंकि इसके दो शासन पत्र शक १०५८ और १०८२ के प्राप्त हैं। उनमें एक चिपलुनसे और दूसरा बेसीनसे प्राप्त हुआ है। पाटनके इतिहाससे प्रकट होता है कि मल्लिकार्जुनके साथ पाटनके कुमारपालका युद्ध हुआ था। और उस युद्धमें प्रथम मल्लिकार्जुनने पाटनके सेनापतिको पराभूत किया था। परन्तु दूसरे युद्धमें मल्लिकार्जुनको हारना पड़ा।

मल्लिकार्जुनके बाद उसका पुत्र अपरादित्य गद्दी पर बैठा। अपरादित्यके दो शिलालेख शक ११०६ और ११०९ के प्राप्त हैं। अतः हम कह सकते हैं कि मल्लिकार्जुनका समय १०५८ से ११०६ पर्यन्त है अपरादित्यके बाद सोमेश्वर नामक शिल्हार राजाके राज्य करनेका परिचय मिलता है। क्योंकि उसके ११७१ और ११८२ के दो लेख हमें प्राप्त हैं। परन्तु इन लेखोंसे प्रकट नहीं होता कि उसका अपरादित्यके साथ क्या संबंध था। एवं सोमेश्वरके पश्चात शिल्हाराओंका कुछभी परिचय नहीं मिलता। सोमेश्वरके पश्चात शिल्हार वंशके परिचय संबंधमें सेउण देश (देवगिरी) के यादवोंके इतिहासके अध्ययनसे कुछ प्रकाश पड़ता है। हिमाद्रि पंडित कृत "यादव राज्यवंश प्रशस्ति" तथा विविध शासन पत्रोंके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि महादेव नामक राजा, शक ११८२ में यादव सिंहासन पर आया। उक्त प्रशस्तिके श्लोक ४८ से प्रकट होता है कि "यह तैलंगपति रूप रूईके समूहके लिये अग्नि–वहुत गर्जनेवाले और पर्वत समान गर्ववान गुर्जरपतिके लिए वज्र और कोकण तथा लाटपतिका अनायासही पराभूत कर विडम्बनाका पात्र बनानेवाला था"। पुनश्च श्लोक ५० के उत्तर चरणवाले वाक्य "सोमः समुद्र प्लव पेपलोपि ममज्जसैनैः सः कुकुणेश" समुद्रको तैरनेमें प्रवीण सोम अपनी सेनाके साथ डूब गया। एवं अगला श्लोक प्रकट करता है कि "समुद्रने महादेवके क्रोधको वडवानलके समान मान कोंकणपति सोमेश्वरकी रक्षा करनेके

स्थानमें उसे अपने उदरमें स्थान प्रदान किया। उधृत विवरणमें कोकणपतिका दोबार उल्लेख आया है। प्रथमवारके उल्लेखमें राजाका नाम नहीं दिया गया है परन्तु द्वितीय वारके उल्लेखमें राजाका नाम स्पष्टरूपेण सोम दिया गया है। अतः इस पुनरुक्तिसे उलझन उपस्थित होती है। परन्तु हमारी समझमें इन दोनों उल्लेखोंको विभिन्न घटनाओंका वर्णन करनेवाला मान लेवें तो किसी प्रकारकी उलझन सामने आती नहीं दिखाती। पुनश्च कोकणका दो भागोंमें विभाग होकर उत्तर और दक्षिण कोकणके नामसे उल्लेख पाया जाता है। एवं देखनेमें आता है कि कोकणेश या कोकणपति नामसे केवल दक्षिण कोकणका ग्रहण होता है। और उत्तर कोकणका संबोधन करते समय यातो उसके पूर्वमें विशेषण रूपसे उत्तर कोकण वा कापर्दि कोकणका व्यवहार किया जाता था। इन कारणोंसे हम कह सकते हैं कि प्रथम वारके उल्लेखमें दक्षिण कोकण अर्थात् कोल्हापुरके शिल्हारोंका उल्लेख किया गया है। और द्वितीय वारके उल्लेखमें उत्तर कोकणके विशेषणोंके स्थानमें राजाका नाम दिया गया।

अब यदि उत्तर कोकणसे संबंध रखनेवाले उत्तर भावी दोनों कथानकको "समुद्र तैरनेमें प्रवीण होता हुआभी डूब गया, और "महादेवके कोपके डरसे समुद्रने रक्षाके स्थानमें उदरस्थ किया" के अलंकारको निकाल बाहर करें तो सीधा सादा भाव यह निकलता है कि यादवराज महादेवसे हारकर शिल्हार सोमेश्वर नौका द्वारा समुद्र मार्गसे भागा अथवा सोमेश्वर और महादेवके मध्य जल युद्ध हुआ था। संभवतः महादेवने सोमेश्वरकी नव सेनाको पराभूत किया और वह नौकाओंके डूबनेके कारण अपनी सेनाके साथ डूब मरा अथवा सोमेश्वर जल युद्धमें हारकर जब नौकाओंके द्वारा भागा तो किसी दैवी घटनामें पड़कर नौकाओंके डूबनेके कारण डूब मरा। सोमेश्वरके पश्चात् उत्तर कोकणके शिल्हारोंका हमें कुछभी परिचय नहीं मिलता। परन्तु इनके स्थानमें यादवोंके अस्तित्वका स्पष्ट परिचय मिलता है।

लाट और गुजरातमें यादव।

शिल्हारोंके इतिहासका सारांश निगुण्ठन करते समय यादवोंका उल्लेख प्रसंगवश करना पड़ा था। यादवोंका उक्त उल्लेख दो बातें स्पष्ट रूपसे प्रकट करता है। प्रथमतः हमारे विवेचनीय इतिहास कालवाले राजाओंके साथ वैवाहिक संबंध, और द्वितीयतः उत्तर कोकण

और लाट तथा गुर्जर देशके राजाओंपर यादवोंका आक्रमण। विशेषतः यादवों द्वारा शिल्हाराओंके मूलोच्छेदका उक्त उल्लेख परिचायक है। साथही यहभी प्रकट होता है कि यादवोंने उत्तर कोकणके शिल्हाराओंका मूलोच्छेद कर उनके राज्यको अपने राज्यमें मिला लिया था। और उसका शासन वे अपने प्रतिनिधि द्वारा करते थे। अब यदि यहांपर यादवोंके संबंधमें कुछ विचार प्रकट करें तो असंगत न होगा। वरण आगे चलकर लाट नंदीपुर और लाट वासुदेवपुरके चौलुक्योंका इतिहास विवेचन करते समय इस विचारसे अभूतपूर्व सहाय प्राप्त होनेकी संभावना है।

यादव वंशका प्रथम परिचय उनके शिला लेखोंसे चंद्रादित्यपुर या चंद्रपुरके नामसे सर्व प्रथम मिलता है। चंद्रादित्यपुर अथवा चंद्रपुरको कितने एक विद्वान चांदोद और दूसरे चन्दोद मानते हैं। यादवोंका प्रथम परिचय हमें चान्दोदके नामसे मिलता है। द्वितीय परिचयसे उन देशके यादव नामसे मिलता है। और तृतीय परिचय देवगिरीके यादव नामसे प्राप्त होता है। चौलुक्य चंद्रिका लाट खण्डके अन्तर्गत लाट नंदीपुर शीर्षकमें उधृत त्रिलोचन पालके शक संवत ९७२ वाले लेखके विवेचनमें चंद्रादित्यपुर (चन्दोद या चांदोद) के यादवोंका उल्लेख किया गया है। और यहभी बताया गया है कि इन्हीं यादवोंके साथ लाट नंदीपुरके चौलुक्यों तथा उत्तर कोकणके शिल्हाराओंका वैवाहिक संबंध था। शिल्हाराओंका इतिहास विवेचन करते समय देवगिरीके यादवोंके हाथसे उनको पराभव तथा मूलोच्छेदका वर्णन कर चुके हैं। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि चांदोदका अवस्थान कहांपर था। और चांदोद, सेउन देश और देवगिरीका यादव वंश अभिन्न या विभिन्न था।

हमारी समझमें जब तक चांदोद, सेउन देश और देवगिरीके अवस्थानका परिचय प्राप्त न कर लें, तब तक इस प्रश्नका उत्तर नहीं दिया जा सकता। दक्षिणापथ (वातापि) के चौलुक्योंके इतिहासिके लेख "चौलुक्य चंद्रिका"—वातापि खंडके प्राक्कथनमें सेउन देशके अवस्थान प्रभृतिका पूर्णरूपेण विवेचन कर चुके हैं। और यहभी बता चुके हैं कि सेउन देश पूर्व कालमें दण्डकारण्य नामसे प्रख्यात भूभाग, अन्तर्गत संप्रति नासिक, डांग, धरमपुर और वांसदाके कुछ भूभागका समावेश है: पूर्वोत्तरमें अवस्थित था। उक्त सेउन देशके अन्तर्गत वर्तमान खानदेश और निजाम राज्यके औरंगाबाद जिलाके भूभागका

समावेश था। सेउन नामक राजाके नामसे यादवोंके राजका नाम सेउन देश पड़ा। और इसी सेउन वंशके यादव वंशी एक राजाने देवगिरि नामक नगर स्थापित कर उसे अपनी राजधानी बनाया। तबसे सेउन देशके यादव देवगिरीके यादव नामसे विख्यात हैं। देवगिरीको संप्रति दौलताबाद कहते हैं। अतः देवगिरि और सेउन देशके यादवोंमें अभिन्नता है। इस हेतु अब विवेचनीय विषय केवल मात्र इतनाही है कि चंद्रादित्यपुर और देवगिरीके यादवोंके मध्य कुछ संबंध था अथवा नहीं।

स्वर्गीय डॉ. भगवानलालने चान्दोदके यादवोंको सेउन—देवगिरीके यादवोंसे भिन्न माना है और चांदोदके यादवोंको नर्मदा तटवर्ती चांदोदका अधिपति मान वर्तमान नासिक और खानदेशके भूभागपर राज्य करनेवाले यादवोंको पूर्णरूपेण भूल गये हैं।

यदि वे ऐसा न करते और चांदोदके यादवोंकी वंशावली तथा वैवाहिक संबंधकी तुलना हेमाद्रि पंडितकी यादवराज प्रशस्ति कथित विवरणसे किये होते तो न वे चांदोदके यादवोंको नर्मदा तटवर्ती चांदोदका अधिपति और न सेउन देवगिरीके यादवोंसे विभिन्न मानते। हमारी समझमें चंद्रादित्यपुर या चंद्रपुर रूपान्तर चन्दोद माना जाता है, वह नर्मदा तटका चांदोद न होकर नासिक जिलाका चन्दोद ग्राम है। हमारी इस धारणाका समर्थन इस बातसेभी होता है कि नर्मदा तटवर्ती चांदोदके आसपास यादवोंके अस्तित्वका परिचय नहीं मिलता. परन्तु जैसा कि हम उपर बता चुके हैं नासिक खानदेशादि भूभागपर उनके अस्तित्वका परिचय स्पष्ट रूपसे मिलता है। पुनश्च हेमाद्रि पंडितने नासिक खानदेशवाले यादवोंको स्पष्ट रूपेण सेउन देवगिरीको यादवोंकी वंशावलीमें स्थान प्रदान किया है। इतनाही नहीं झंझकी कन्या लच्छियवाके विवाहका वर्णन विस्तारके साथ किया है। यादवोंके अन्यान्य ऐतिहासिक लेखोंके पर्यालोचनसे हेमाद्रिके कथनका पूर्णतया समर्थन होता है। चांदोदके यादवोंको नासिक खानदेशवाले यादवोंसे अभिन्न सिद्ध करनेके पश्चात एवं उन्हें सेउन–देवगिरीका यादव माननेके अनंतर उनकी वंशावली निम्न प्रकारसे होती है।

भिल्लम—१
श्रीराज
वाडीग—१
भिल्लम
तेसुक
अर्जुन
भिल्लम
वाडीग
तेसुक
भिल्लम
सेउनचंद्र
परम
सींघ
मलुगी
अपर गांगेय
अपर मलुगी
भिल्लम
गोविंदराज
बल्लाल
जैत्रपाल—१
सींघन
जैत्रपाल
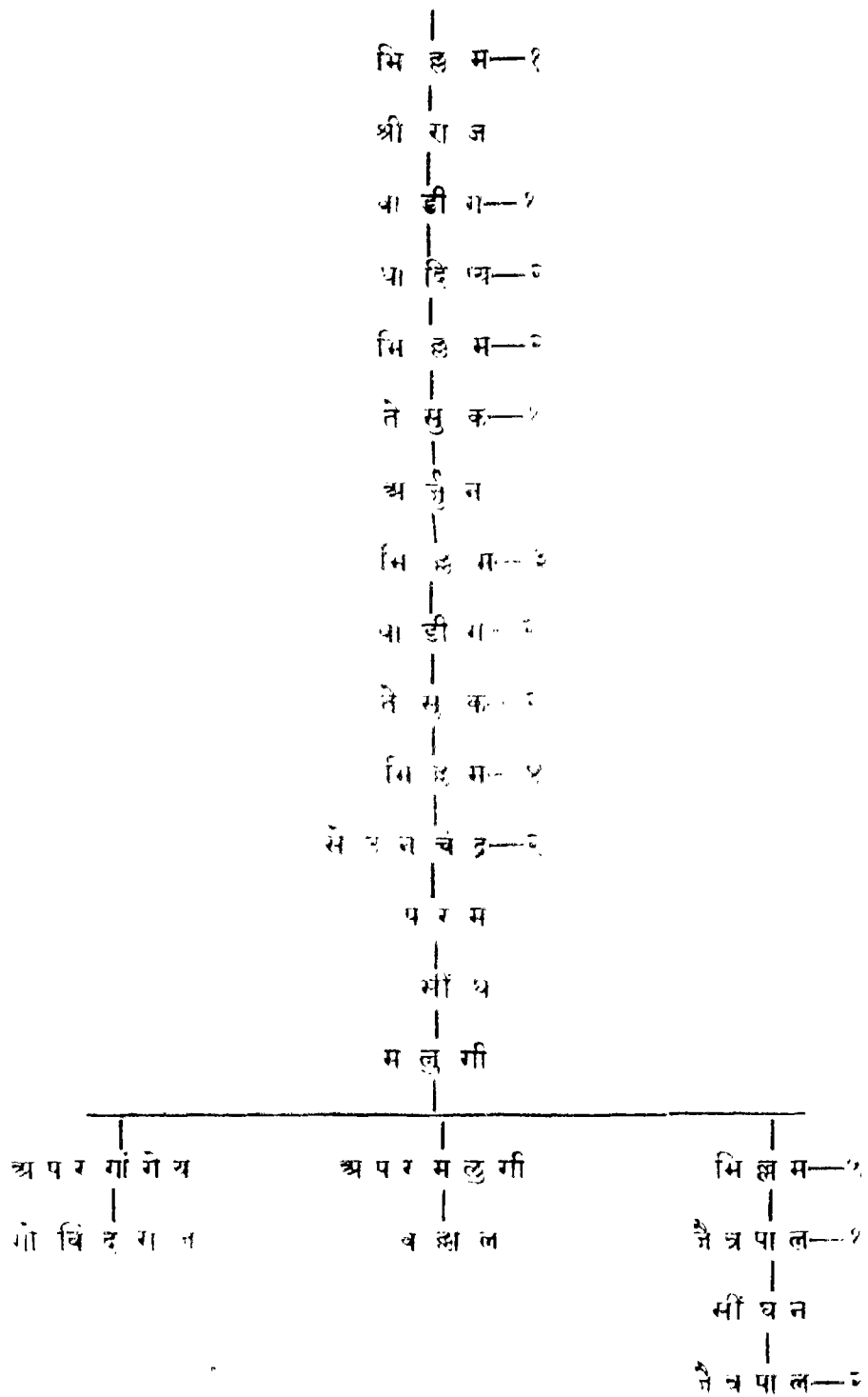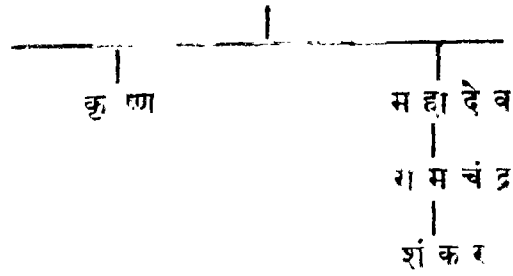
दक्षिणापथके चौलुक्योंके ऐतिहासिक लेख "चौलुक्य चंद्रिका" वातापि खंड प्राक्कथनमें यादवोंके सार्वभौम साम्राज्यके विस्तारका विचार कर चुके हैं। और यहभी बता चुके हैं कि उन्होंने कुछ दिनोंके लिये उत्तर कोंकणसे लेकर मैसूर पर्यंत अपना आधिपत्य स्थापित किया था। अतः यहांपर उनके लाट गुर्जर और अन्यान्य राज्योंपर आक्रमणादिका पुनः उल्लेख करना पिष्ट पेषण मात्र केवल इतनाही कहते हैं कि इन यादवोंके राज्य कवि और शासन लेखक गण तिलका ताड़ बनाने और बिना शिर पैरकी प्रशंसाका पुल बांधनेमें दूसरे किसीसे कणिका मात्रभी कम न थे। यदि उनके अलंकार आडम्बरको निकाल बाहर करें और अन्यान्य राज्यवंशोंके इतिहासके साथ तारतम्य संमेलन करें तो अनायासही सत्य ऐतिहासिक घटनाओंको प्राप्त कर सकते हैं।

महादेवके पूर्व उसके दादा सिंघनने अपने वंशके अधिकारका विस्तार किया। यहां तक कि उसने एक बहुत बड़ी सेना लेकर कोंकण और लाटपतिको पराभूत कर पाटनके चौलुक्योंपर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुआ था।

इसके गुजरात आक्रमणका उल्लेख कीर्ति कौमुदीमें निम्न प्रकारसे किया गया है। "कर्नाटपतिके आक्रमणका संवाद पा गुजरातकी प्रजा (गुजरात नामसे पाटनवाले चौलुक्योंका संबोध किया गया है) अत्यंत भयभीत हुई। लवणप्रसाद सेना लेकर आक्रमणकारी सेनाका अवरोध करनेके लिये आगे बढ़ा। लवणकी सेना बहुत थोड़ी थी। गुजरातकी सेना यद्यपि लड़ाकू और पीछे हटनेवाली न थी, तथापि शत्रुकी विशाल सेनाके सामने उसके (लवण) विजयी होनेमें गुजरातकी प्रजाको सन्देह था। भावी भयंकर और दुःखद परिणामके डरसे कोईभी नवीन मकान नहीं बनाता था। सबने घरमें अन्न संग्रह करना छोड़ दिया था। सेनाके उत्पातके डरसे प्रजा ग्राम छोड़कर भाग रही थी। इसी अवसरमें उत्तरसे मारवाड़वालोंने

गुजरातपर आक्रमण किया। अतः लवणप्रसादको सिंघनके सामनेसे हटकर मारवाड़वालोंसे लड़नेके लिये जाना पड़ा। लवणप्रसादके लौटनेका संवाद पा यादवराज सिंघन अपनी सेनाके साथ देशको लौट गया। क्यों कि वह भागनेवाले शत्रु, बालक और वृद्धपर आक्रमण नहीं करता था"।

कीर्ति कौमुदीकारने गुजरातके उस पराभवको कितनी उत्तमताके साथ वर्णन किया है। चाहे वह इस प्रकार लिख कर अपने स्वामी पाटनके वाघेलोंको संतुष्ट कर सका हो—पश्चात भावी गुजरातियोंकी आंखमें धूल झोंक सके परन्तु आजकी न तो गुजराती प्रजा और न अन्य भारतीय उसकी इस चातुरताकी चपेटमें आ सकती है। चाहे कोई सत्यको कितनाही छिपाना चाहे, वह नहीं छिपता है। इसी प्रकार कीर्ति कौमुदीके कथनको तत्कालीन अन्यान्य ऐतिहासिक लेखोंके साथ तुलना करनेही कथित युद्धका परिणाम अपने आप आंखोंके सामने आ जाता है अर्थात उक्त युद्धमें पाटनकी सेनाको पराभूत होना पड़ा था और लवणप्रसादको बाध्य होकर पराजित संधि करनी पड़ी थी। इस प्रकार संधि द्वारा सिंघनसे प्राण छुड़ा वह मारवाड़वालोंसे लड़नेके लिये अग्रसर हुआ था। गुजरात मारवाड़ युद्धमें आबू चंद्रावतीके परमार राज धारावर्षने पाटनवालोंको सहाय प्रदान किया था। इस विषयका विवेचन हम सांगोपांग पाटन और वातापिके ऐतिहासिक लेखों (चौलुक्य चंद्रिका) में कर चुके हैं। अतः यहांपर केवल उत्तर कोकण और लाटके संबंधमें विचार करते हैं।

उत्तर कोकणमें स्थानकके शिल्हाराओंका समावेश होता है। परन्तु लाट नामसे किसका उल्लेख किया गया है यह समझमें नहीं आता। क्योंकि लाट नामसे नंदीपुरके चौलुक्योंका ग्रहण होता था जो तत्कालीन इतिहासमें स्पष्टरूपेण पाया जाता है। हमें यह निश्चित रूपसे ज्ञात है कि लाट नंदीपुरके चौलुक्योंका मूलोच्छेद इस समयसे लगभग ८०-८५ वर्ष पूर्व तथा पाटनपति सिद्धराजके राज्यारोहनसे लगभग ७-८ वर्ष पश्चात हो चुका था। और लाटका उत्तर प्रदेश (नर्मदा और महीके मध्यवर्ती भूभाग) पाटन राज्यमें मिला लिया गया था। इसके पश्चात लाट नामसे किसीभी राज्यवंशकी संस्थापनाका परिचय नहीं मिलता। और न हम पाटनवालोंकोही अवन्तिनाथ उपाधिके समान लाटपति अथवा लाटेश्वर उपाधि धारण करते पाते हैं। पुनश्च जबकि उनका उल्लेख "गर्जत गुर्जर" नामसे किया गया

है, और साथही लाट विजयके पश्चात गुजरातपर आक्रमणका वर्णन दृष्टिगोचर होता है तो वैसी दशामें लाट नामसे अवश्य किसी अन्य वंशका संकेत किया गया है। हमारी इस धारणाका समर्थन इससेभी होता है कि इस घटनाके लगभग ५० वर्ष पश्चात यादवराज महादेवके समयमेंभी कोकण लाट और गुजरातका भिन्न भिन्न राज्यवंशोंके नामसे उल्लेख किया गया है। अतः अब विचारना है कि लाट नामसे किस वंशका संकेत है।

हमारे पाठकोंको ज्ञात है कि उत्तर कोकण और दक्षिण लाट मध्य वातापि कल्याणके चौलुक्य राज्यवंशोद्भव वनवासी युवराज वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंहके पुत्र विजयसिंहने एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था। जिसकी प्रथम राजधानी मंगलपुरी दूसरी वासन्तपुर और तीसरी वासुदेवपुरमें थी। उसके तथा उसके वंशजोंके अधिकारमें लाटका दक्षिणांश एवं तापी और गोदावरीके मध्यवर्ती भूभागका होना निभ्रांत रूपेण पाया जाता है। अतः हम निश्चयके साथ कह सकते हैं कि कथित विवरणमें लाट नामसे विजयसिंहके वंशजोंका संकेत किया गया है। पुनश्च हमें यह भी निश्चित रूपसे ज्ञात है कि विजयसिंहके वंशजोंको पाटनवालों ने पराभूत कर स्वाधीन किया था। परन्तु वीरसिंह नामक राजाने पाटन-वालोंसे अपनी राज्य लक्ष्मीका उद्धार कर अपनी स्वाधीनता की पुनः घोषणाकी थी। वीरसिंहकी कथित स्वतंत्रता की तिथि प्रस्तुत युद्धके आसपासमें है। सम्भव है कि उसकी यह स्वतंत्रता सिंघनकी कृपाका फल हो अथवा सिंघन और पाटनवालोंके युद्ध पश्चात इनकी अशक्तताका उपयुक्त लाभ उठा वह स्वतंत्र बन गया हो।

सिंघनके बाद उसका पुत्र जयतुंग द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र कृष्ण गद्दी पर आया। कृष्णका उत्तराधिकारी उसका छोटाभाई महादेव हुआ। महादेवने शिल्हार वंशका उत्पाटन कर उत्तर कोकणको अपने राज्यमें मिला लिया। महादेवके राज्यकालमें ही दिल्ली सुलतान जलालुद्दीन खिलजीके भतीजोंने देवगिरी पर आक्रमण कर बहुतसा धन रत्न प्राप्त किया था। महादेवका उत्तराधिकारी रामचन्द्र हुआ। रामचन्द्र दिल्लीके गृह कलहसे लाभ उठा स्वतंत्र बन बैठा परन्तु अलाउद्दीनके सेनापति मालिक काफूरने रामचन्द्रका मद चूर्ण किया। रामचन्द्रका उत्तराधिकारी शंकर हुआ। शंकर के समय देवगिरीके यादव वंशका सदाके लिये संसारसे अस्तित्व उठ गया।

नंदीपुरके चौलुक्य।

नंदीपुरके राज्यवंशका संस्थापक वातापि कल्याणके चौलुक्य राज तैलपदेव द्वितीयका सेनापति वारप राज है। वारपराजको तैलपदेवने पाटनपति चौलुक्यराज मूलराजको रोकनेके लिये सेनापति और सामन्तराज बनाकर लाट देशमें भेजा था। वारपने नंदीपुरको अपना केन्द्रस्थान बनाया था। बादको वारपके वंशजोंकी राज्यधानी नंदीपुरमें थी। अतः यह वंश इतिहासमें नंदीपुरके चौलुक्यवंशके नामसे अभिहित है। अभीतक नंदीपुरके चौलुक्योंके केवल ताम्र लेख मिले हैं। प्रथम लेख वारपके पौत्र कीर्तिराजका शक संवत ९४० तदनुसार १०७५ का और दूसरा लेख कीर्तिराजके पौत्र त्रिलोचनपालका शक संवत ९७२ तदनुसार विक्रम संवत ११०७ का और तीसरा लेख त्रिलोचनपालके पुत्र त्रिविक्रमपालका शक ६६६ का तदनुसार विक्रम संवत ११३४ का है। इन लेखों पर दृष्टिपात करनेसे नंदीपुरके चौलुक्योंकी वंशावली निम्न प्रकारसे प्रकट होती है।
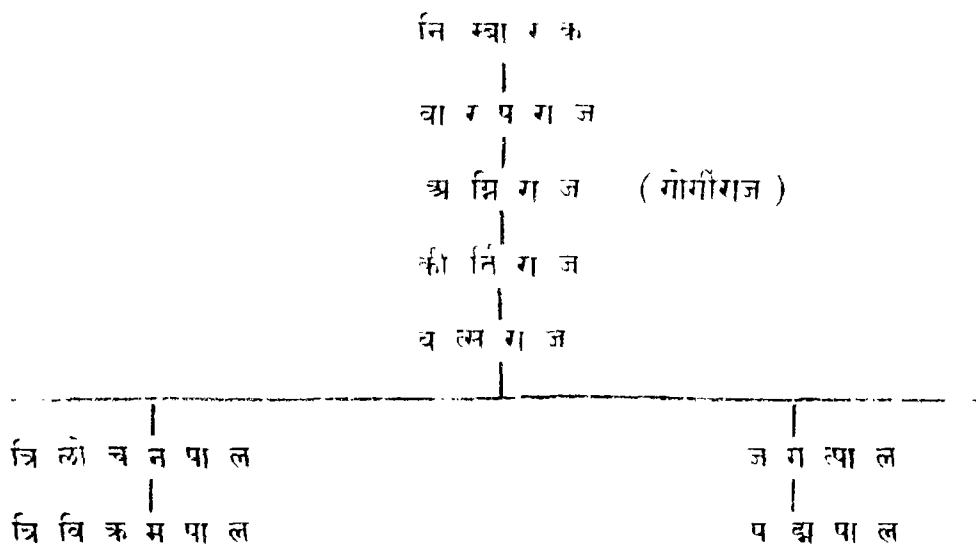
नंदीपुरके चौलुक्योंका पाटनके चौलुक्योंके साथ वंशपरंपरागत वैर दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि नंदीपुरके चौलुक्य वंश संस्थापक वारपको पाटनके चौलुक्य वंश संस्थापक मूलराजके साथ लड़ते पाते हैं। अन्तमें वारप मूलराजके पुत्र चामुण्डराजके हाथसे मारा जाता

है। और लाटके कुछ भूभागपर पाटनवालोंका अधिकार हो जाता है। जिसे बारपका पुत्र अग्निराज पाटनवालों को भगा कर स्वाधीन करता है।

इतनाही नहीं अग्निराजने अपने राजके सीमावर्ती अन्यराजोंसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपने अधिकारको स्थायी बनानेका सूत्रपात किया था। इसने अपनी कन्याका विवाह चांदोदके यादव वंशी तेसुकके साथ किया था। जिसका मातृक संबंध स्थानकके शिल्हारोंके साथ था। कीर्तिराज इस वंशका सर्व प्रथम स्वतंत्र राजा है। क्योंकि इसने वातापिके चौलुक्योंकी आधीनता यूपकोभी अपने कन्धेसे उठा फेंका था।

कीर्तिराजको स्वतंत्र बननेमें अपने फुफेरेभाई चांदोदके यादव राजा भिल्लभ और उसके निकटतम संबंधी स्थानकके शिल्हारोंसे सहाय मिला था। कीर्तिराजके पुत्र वत्सराजके संबंधमें हमें विशेष ज्ञान नहीं है। तथापि हम इतना अवश्य जानते हैं कि उसने नर्मदा–समुद्र संगमके समीपवर्ती सोमनाथके मन्दिरमें रत्नजड़ित सुवर्ण छत्र चढ़ाया था और अनाथोंके लिये एक सत्र स्थापित किया था। वत्सराजके पुत्र कीर्तिराजने अगस्त तीर्थमें स्नान कर परथान नामक ग्रामदान दिया था। कीर्तिराजके अन्त समय पाटनके करणने लाटके उत्तरीय भाग वाटपद्रक और विश्वामित्री नदीके समीपवर्ती भूभागपर और नागसारिका विषयपर अधिकार किया था। किन्तु कीर्तिराजके भाई जगत्पाल और पुत्र तथा उत्तराधिकारी त्रिविक्रमपाल तथा भतीजा पद्मपालने पाटनवालोंको भगा, अपने खोये हुए भूभागको पुनः स्वाधीन किया।

त्रिविक्रमपालको पाटनवालोंपर विजय पानेके पश्चात्भी सुखकी नींद लेनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ, क्योंकि हम देखते हैं कि उसको अपने विजयकाल शक ९९९ के केवल तीन वर्ष पश्चात् शक १००२–३ में वातापि युवराज चौलुक्य चूडामणि जयसिंहकी रणक्रीड़ाका कंदुक बनना पड़ा था। इतनाही नहीं वह जयसिंहके शौर्यसे इतना संतप्त होगया था कि उसे सदा सशंक रहना पडता था।

त्रिविक्रमपालके पश्चात् इस वंशका विशेष परिचय नहीं मिलता। परन्तु सिद्धराज जयसिंहके समय नंदीपुरके चौलुक्योंके अस्तित्वका आवान्तर रूपसे परिचय मिलता है। क्योंकि पाटनपति सिद्धराजके राज्यारोहणके पश्चात् उसके चचा और प्रधान सेनापति

नवानगर वासुदेवपुर (वासदा) का पुरातन चौलुक्य मन्दिर ।

त्रिभुवनपालको नंदीपुरके चौलुक्योंके साथ युद्ध करते पाते हैं। त्रिभुवनपाल पाटनवालोंका लाट देशीय सर्व प्रथम दण्डनायक था। कथित युद्ध और पराभवके समय नंदीपुरके सिंहासन पर पद्मपालको पाते हैं। अतः हम नंदीपुरके चौलुक्योंके अस्तित्वको विक्रम संवत् ११५५ के आगे नहीं मान सकते। क्योंकि इस समय भृगुकच्छादि लाटके भूभागपर पाटनवालोंके अधिकारका स्पष्ट परिचय मिलता है। एवं तापीके दक्षिणवर्ती लाटके भूभागपर एक नवीन चौलुक्य वंशको अधिष्ठित पाते हैं। उक्त राज्यवंशका अधिकार कथित प्रदेशमें संभवतः विक्रम ११४९ के पूर्व हुआ था। अतः हम कह सकते हैं कि नंदीपुरके चौलुक्य उत्तरसे पाटनवालों और दक्षिणमें नवीन चौलुक्य वंशकी राजलिप्सा चक्रमें पड़कर पिस गये और उनका अस्तित्व संसारके मान चित्रसे सदाके लिये उठ गया।

वासुदेवपुरके चौलुक्य।

जिस समय लाट नंदीपुरके चौलुक्य अपनी राज्य लक्ष्मीको पाटनके चौलुक्योंके कराल गालसे बचानेके लिये प्राण पणसे चेष्टा कर रहे थे। उसी समय लाटके राजनैतिक रंगमंचपर विजयसिंह केशरी विक्रम नामक नवयुवक खेलाड़ी उपस्थित हुआ। और अपनी तलवारके चमत्कार दिखा, तापी नदीके दक्षिणवर्ती और उत्तर कोकणके उत्तरीय सीमा प्रदेश तथा सह्याद्रिके पश्चिमोत्तरवर्ती भूभागको अधिकृत कर मंगलपुरी नामक नगरीमें चौलुक्य वंशका नवीन राज्य स्थापित किया। इस नवीन राज्यवंशका वातापि कल्याणके प्रधान चौलुक्य वंशके साथ प्रत्यक्ष संबंध था। कल्याण नगरबसानेवाले वातापिनाथ अहवमल सोमेश्वरको सोमेश्वर भुवनमल, विक्रमादित्य त्रिभुवनमल और जयसिंह त्रयलोक्यमल नामक तीन पुत्र थे। उनमेंसे सोमेश्वर और विक्रमादित्य क्रमशः वातापि कल्याणके सिंहासनपर बैठे। विक्रम जब अपने बड़ेभाई सोमेश्वरको गद्दीसे उतार अपने आप राजा बन बैठा तो उसने अपने छोटेभाई जयसिंहको वातापि कल्याणका भावी उत्तराधिकारी स्वीकार किया। एवं उसे पिता और सोमेश्वरके समयसे प्राप्त जागीरसे अतिरिक्त वनवासी प्रदेशकी नवीन जागीर प्रदान की। एक प्रकारसे जयसिंह और विक्रमके मध्य वातापि कल्याणका राज्य बट गया। जयसिंहने अपनी राज्यधानी वनवासीको बनाया, और वनवासी युवराजके नामसे शासन करने लगा। परन्तु विक्रमकी कूट नीतिसे असंतुष्ट हो तलवारकी धारसे विवादका फैसला

करनेके लिये युद्ध क्षेत्रमें प्रवृत्त हुआ। दोनोंकी सेनायें भिड़ गईं। प्रथम जयसिंह विजयी हुआ, परन्तु अन्तमें उसे हारकर जंगलोंमें भागना पड़ा। कुछ दिनोंके बाद उसके पुत्र विजयसिंहने अपने बाहुबलसे लाट और उत्तर कोकणके मध्यवर्ती भूभागको अधिकृत कर मंगलपुरीमें विक्रम ११४९ के आसपास नवीन राज्यकी स्थापना की थी। विजयसिंहके वंशधरोंने कुछ दिनों तक सुख और शान्तिके साथ मंगलपुरीमें राज्य किया। परन्तु उन्हें पाटनवालोंके द्वारा पराभूत होकर मंगलपुरी छोड़ वसन्तपुरमें आना पड़ा। वसन्तपुर आनेके पश्चात उन्होंने पाटनवालोंसे अपनी राज्य लक्ष्मीका उद्धार किया। अनन्तर इस वंशकी एक शाखा पुनः मंगलपुरी नामक स्थानमें स्थापित हुई। इस वंशके पांच शिलालेख तीन शासन पत्र और एक राज प्रशस्ति हमें प्राप्त है। इस वंशके आश्रित महात्मा शंकरानंद भारतीके शिष्य कृष्णानंद भारती स्वामीके तापी तटपर बनाये हुए शिव मन्दिरकी प्रशस्ति है। अतः इस वंशके इतिहासको ज्ञापन करनेवाले ६ शिलालेख और तीन शासन पत्र हैं। इन लेखोंकी तिथि विक्रम संवत ११४९ से १४४४ पर्यन्त है। इन लेखोंको इस ग्रंथके वासुदेव शीर्षकके अन्तर्गत उद्धृत किया गया है। इनके पर्यालोचनसे इस वंशका वातापि कल्याणके चौलुक्य वंशके साथ वंशगत संबंध प्रकट होनेके साथही इनकी वंशावली निम्न प्रकारसे उपलब्ध होती है।
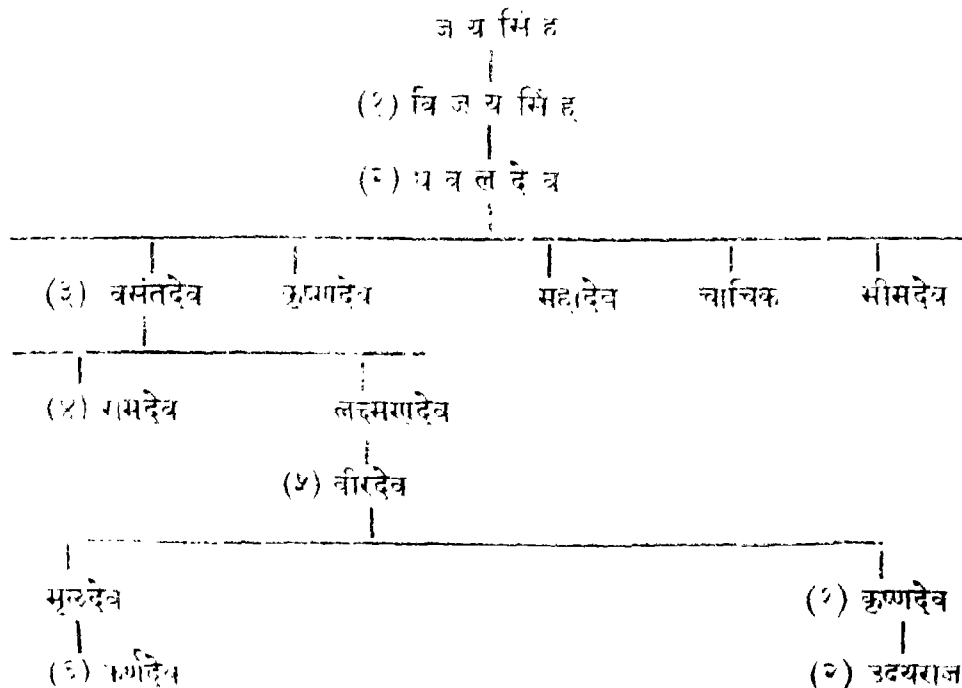
नवानगर वासुदेवपुर (वासदा) का पुरातन चौलुक्य मन्दिर।
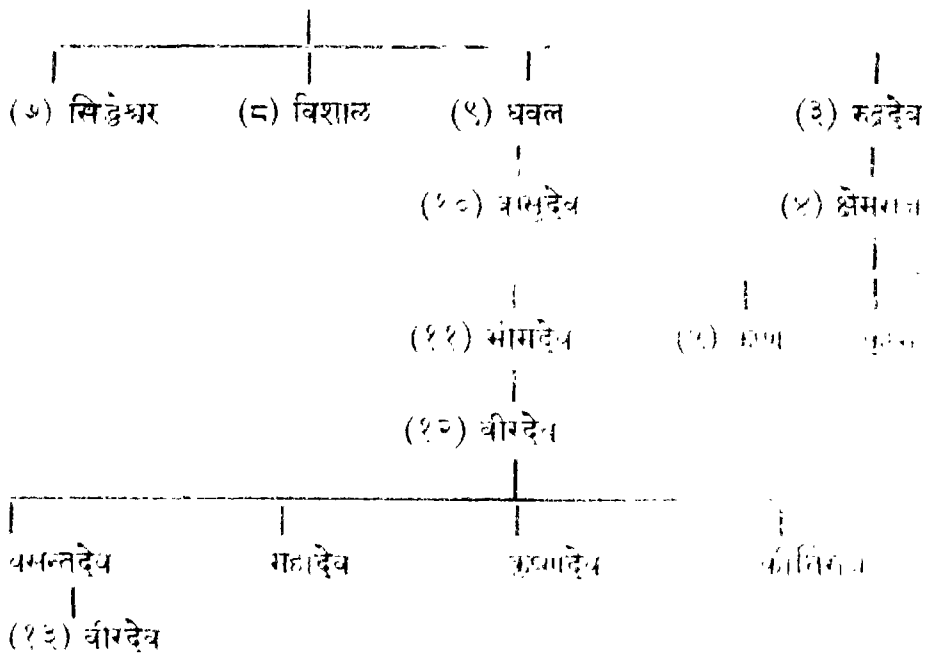
इन लेखोंपर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि पाटनवालोंके साथ इनका घनघोर संघर्ष हुआ था। केवल संघर्षही नहीं वरन उन्होंने इनकी स्वतंत्रताका अपहरण किया था। जिसका उद्धार वीरदेवने किया. और मंगलपुरीके स्थानमें वसन्तपुरको अपनी राजधानी बनाया। वीरदेवके मूलदेव और कृष्णदेव नामक दो लड़के थे। कृष्णने मूलदेवको मार डाला। बादको वह मंगलपुरीमें जाकर रह गया. जहांपर उसके वंशजोंने पांच वंश श्रेणीपर्यंत राज्य किया था। वसन्तपुरमें मूलदेवके वंशज रहे। जहां सात पीढीपर्यंत उन्होंने अप्रतिबाधित रूपसे राज्य किया। अनन्तर किसी शत्रुने आक्रमण कर वसन्तपुरका नाश किया। वसन्तपुरका अन्तिम राजा भीमदेव अपने परिवारको लेकर वासुदेवपुरमें चला आया। वासुदेवपुर आनेके बाद उसने अपने बड़े लड़के वसन्तदेवके पुत्र वीरदेवको राज्यभार देकर अपनी इहलीलाको समाप्त किया। वसन्तपुरके नाश पश्चात वासुदेवपुरका प्रथम राजा वीरदेव हुआ।

वीरदेव तथा उसके वंशजोंने कब तक वासुदेवपुरमें राज्य किया इसका अभी तक कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। बहुत संभव है कि भावी अनुसंधान वासुदेवपुर–वंशके वंशधरोंका परिचय हमें दे।

विजयपुर (बांसदा) के चौलुक्य ।

सम्प्रति वासुदेवपुरका ९० प्रतिशत भूभाग गायकवाड़ और ब्रिटिश सरकारके अधिकारमें है। संभवतः उसका ५ प्रतिशत धर्मपुर और सरगनाके और शेषभूत ५ प्रतिशत अंशपर आजभी चौलुक्य वंशका अधिकार है। वर्तमान राज्यवंशकी परंपरा राजवंशका इस भूभागपर अस्तित्व अलाउद्दीन खिलजीके समयसे बताती है। और उसका वंशगत संबंध पाटनके चौलुक्य वंशके साथ मिलाती है। उक्त दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं, पुनश्च यह अकाट्यरूपेण सिद्ध हो चुका है कि पाटनका चौलुक्य वंश जहां उत्पन्न हुआ वहांही लीन हुआ। जबकि पाटन राज्यका मूलोच्छेद और उसकी वंशतंतु भस्मीभूत हो गई, तो ऐसी दशामें वर्तमान राज्यवंशको पाटनका वंशधर बतलाना परंपराकी धृष्टता है। इतना होते हुए भी परंपरामें ऐसी बात हैं कि जिनके बलपर राज्यवंशका अस्तित्व इस भूभागपर ६०० सौ वर्ष पूर्वभावी माननेमें आपत्तिकी अधिक संभावना नहीं है। राज्यकी परंपरा तथा अन्यान्य ऐतिहासिक लेखों इत्यादिको दृष्टि कोणमें रखते हुए हमारी दृढ धारणा है कि वर्तमान राज्यवंशका संबंध पाटनसे न होकर पुरातन वासुदेवपुरके साथ हो सकता है। परन्तु यह विषय अनुसंधान साध्य है। इस हेतु सम्प्रति इसका विवेचन छोड़ वर्तमान राज्यवंशके इतिहासकी झलक दिखाते हैं।

परंपरा कथित वंशावलीका मराठी और ब्रिटिश रेकार्डके साथ तारतम्य सम्मेलनके अनन्तर पूर्वकी कुछ श्रेणियां छोड़ राजवंशकी वंशावली निम्न प्रकारसे उपलब्ध होती है।

नवानगर—वासुदेवपुर (वामदा) मन्दिरका अन्तर चित्र ।
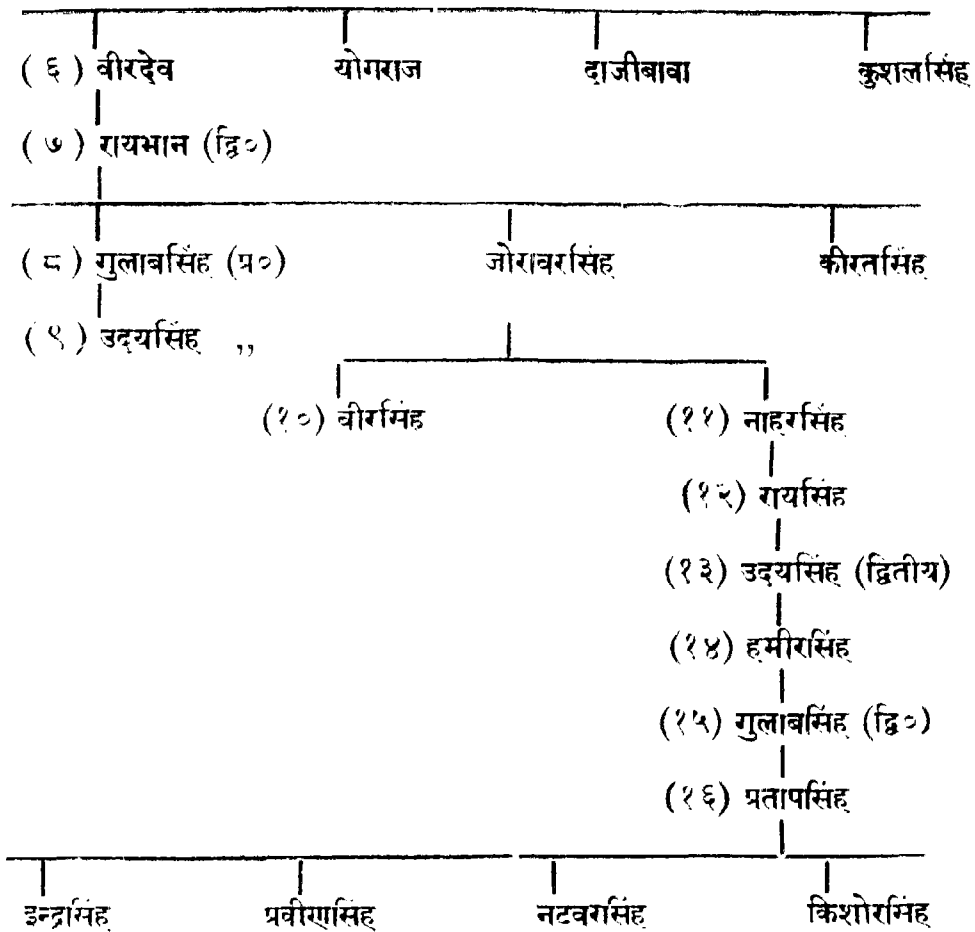
वर्तमान राज्यवंशको वांसदीया सोलंकी कहते हैं। परंपराके अनुसार इसका प्राचीन विरुद वासदपुर नरेश पाया जाता है। राजकीय प्राचीन कागजोंसे प्रकट होता हैं कि इस राज्यका नाम विजयपुर था और कागजोंमें इसका उल्लेख संस्थान विजयपुर–प्रांत बांसदा मिलता है। इस राज्यवंशके अस्तित्वका ज्ञापक हमारे पास विक्रम संवत् १६५१ का एक प्रमाणपत्र है। इसके अतिरिक्त पारसियोंके इतिहाससे राज्यवंशका अस्तित्व १००–१५० वर्ष और पीछे चला जाता है। और लगभग प्राचीन वासुदेवपुरकी समकक्षतामें पहुंचा जाता है।

वर्तमान राज्यका अधिकार मुगलोंके समयमें आजसे कई गुने भूभागपर था। और वह समुद्रपर्यंत फैला हुआ था। परन्तु संसार चक्रकी नैसर्गिक गतिके अनुसार इस राजवंशका अधिकार क्रमशः ह्रास होता हुआ आज नाम मात्रका रह गया है। मुगल साम्राज्यके अन्त सम-

यमेंभी इस वंशके अधिकारमें दक्षिण लाट और उत्तर कोकणका एक बहुत बड़ा भाग था। परन्तु मरहटोंके उत्कर्ष पश्चात इनके राज्य लोलुप अधिकारिओंने राज्यवंशकी अशक्ततासे लाभ उठा अपना अधिकार जमाना प्रारंभ किया। सर्व प्रथम पेशवाओंने राज्यवंशका विरोध किया। पेशवाओंका अनुकरण दूसरे सैनिकोंने किया। पेशवा और दभाड़े और गायकवाड़ आदिकी स्पर्धा और राज्य लिप्साने ताण्डव नृत्य करना प्रारंभ किया। वे प्रातः स्मरणीय छत्रपति शिवाजी महाराजके साधु उपदेशको भूल गये और यहां तककि गये दिन आपसमें लड़ने भिड़ने लगे। राजनैतिक दृष्टिकोणमें अपने लाभको लक्ष रखकर विदेशिओं (अंग्रेजों) से संधि आदि कर एक दूसरेपर आक्रमण कर महाराष्ट्र शक्तिके मूलमें तुषारपातारंभ किया। उनकी दृष्टिमें स्वामी भक्ति और स्वामी द्रोहमें कुछभी अन्तर न रहा। उसी प्रकार स्वजाति और स्वदेश प्रेम तथा जातिद्रोह किसीभी गणनाकी वस्तु न रही। यदि कोईभी वस्तु उनकी दृष्टिमें महत्वकी थी तो वह व्यक्तिगत लाभ नामक वस्तु थी।

इनकी इस महत्वाकांक्षाने भारतमें कालरात्रि उपस्थित की। ये राहु और केतुके समान सूर्य और चंद्रवंशी राजपूत राजवंशोंको पीड़ा देने लगे। एकके बाद दूसरा राजपूत राज्य इनके शिकार होने लगे। यदि पेशवाओंने विद्रोह न किया होता—पेशवाकी बढ़ती शक्तिका विरोध गायकवाड़ और दभाड़े आदि मरहठे न किये होते—पेशवाओंसे विरुद्ध वे निज़ामुलमुल्क आदि मुसलमानोंसे न मिले होते—पेशवाकी शक्तिका नर्मदा तट पर क्षय न किये होते और अन्ततोगत्वा गायकवाड़ पेशवाके विरुद्ध अंग्रेजोंसे न मिला होता तो न मालूम आज भारतका इतिहास किस प्रकार लिखा जाता। यह हम अस्वीकार नहीं करते कि पुराकालमें भारतके किसी सैनिकने पुराने राजवंशकी घटती शक्तिका उपयुक्त लाभ उठा नवीन राज्यवंश स्थापित न किया था। ऐसा दृष्टांत केवल भारतकेही नहीं वरन सारे जगतके इतिहासमें पाया जाता है। परन्तु पेशवा, गायकवाड़, दभाड़े, सिंधिया, होल्कर और पवारके परस्पर संघर्ष और मरहठा तथा राजपूत विग्रहने जो नग्न ताण्डव नृत्य किया था, उसका दृष्टांत भारतको कौन बतावे, सारे संसारके इतिहासके पन्ने उलटने परभी नहीं पाया जा सकता। इनका संघर्ष यदि राज्यसत्तात्मक महत्वाकांक्षाकी परधिमेंही परिमित होता तो देशको उतनी हानि न उठानी पड़ती। किंतु इनके संघर्षने आगे चलकर ब्राह्मण और अब्राह्मणका रूप धारण किया, और उसका शिकार सर्व प्रथम कायस्थ (प्रभु) जातिको होना पड़ा। कायस्थ जाति महाराज छत्रपति

शिवाजीकी साम्राज्य धुरीका संचालन करनेवाली थी। बाजी प्रभुकी स्वामी भक्ति और पनाला युद्ध, संसारके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंमें लिखे जानेके योग्य हैं। परन्तु इस स्वामी भक्त जातिको शिवाजीके वंशजोंके साथ अपनी अनन्य भक्तिके फल स्वरूप पेशवाओंके हाथसे नाना प्रकारकी यन्त्रणायें भोगनी पड़ीं। यहां तक कि मरहठा साम्राज्यके न्यायोचित उत्तराधिकारीका साथ न छोड़नेकी धृष्टतामें कितने वीरोंको असह्य यंत्रणायें भोगनी पड़ीं। अनन्तर ब्राह्मण शक्तिके उत्कर्ष और उनके, वज्र हृदयको दहलानेवाले, पैशाचिक कार्यको देख उनकी एक छत्रताके भावी परिणामकी चिन्ताने अब्राह्मण मरहठोंको चिन्तित किया। और वे विना किसी पूर्व निश्चयके स्वभावतः उसके नाशमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने उसके नाशमें प्रवृत्त होतेही उचित अनुचितका कुछभी ध्यान न किया। चाहे जिस साधन, मुसलमानों अथवा अंग्रेजों आदि किसीभी विदेशी शक्तिके सहायसे क्यों न हो उसके नाशमें प्रवृत्त हुए। यद्यपि इन्होंने ब्राह्मण शक्तिका नाश संपादन किया; परन्तु इन्हें अपने देशद्रोह और विदेशियोंकी सहायता प्राप्त करनेका परिणाम शीघ्रही भोगना पड़ा। इनके अधिकृत भूभागको क्रमशः विदेशी अपहरण करने लगे अन्ततोगत्वा इनकोही नहीं वरन समग्र भारतको पराधीनताकी शृंखलामें आबद्ध होना पड़ा।

मरहठोंके परस्पर संघर्षके पश्चात राजपूत और मरहठा संघर्षका नग्न दृश्य हमारी आंखोंके सामने आता है। इस संघर्षकी जड़मेंभी ऊंच और नीचका भाव भरा हुआ प्रतीत होता है। यदि ऐसा भाव न होता तो गायकवाड़को, मुसलमानोंके समान गुजरात और काठियावाड़के चौसदा आदि कतिपय राजवंशोंको छोड़ प्रायः सभी राजपूत राजवंशोंको अपनी कन्यायें देनेके लिये आप बाध्य करते न पाते। पुनश्च ऐसा भाव न होता तो अनेक राजपूतोंकी कन्यायें प्राप्त करनेके पश्चातभी बड़ोदाके गायकवाड़ राज्यवंशको राजपूत समाजसे बहिष्कृत न पाते। मरहठोंके परस्पर संघर्षने यदि भारतके भाग्यको रसातल गमनोद्यत किया था; तो राजपूत मरहठा संघर्षने उसे औरभी शीघ्र गामी बनाया।

हम ऊपर बता चुके हैं, कि मरहठों की महत्वाकांक्षा ने भारत में कालरात्रि उपस्थित की। वे राहु और केतु के समान राजपूत राजवंशों को पीड़ा देने लगे। एक के बाद दूसरा इनका शिकार होने लगा। अतः यहां पर राजपूत राजवंशोंकी दयनीय अवस्था का चित्रण करना आवश्यक प्रतीत होता है। राजपूतोंने शिवाजी की सद्भावना से प्रेरित हो उनका हाथ

मुसलमान साम्राज्य के विनाश में बताया था। क्योंकि उनके सामने हिन्दू धर्म और साम्राज्य संस्थापना का सुखद चित्र अंकित हुआ था। वे समझते थे कि मरहठों का हाथ बंटानेसे, मुसलमानों की पारतन्त्र्य शृंखला से निकल, स्वातन्त्र्य सुख का उपभोग करेंगे, परन्तु उन्हें कड़ाही से कूद अग्निकुण्ड में गिरने का अनुभव होने लगा। वे पद पद पर लांछित और विताड़ित होने लगे। प्रतिदिन अपने राज्य और स्वातन्त्र्यका अपहरण देख हाथ मलने लगे। परन्तु अब पछताने से क्या होने वाला था। क्योंकि समय निकल चुका था। मरहठे प्रबल और अद्वितीय बन चुके थे। उनका सामना करना साक्षात यमराजको आमन्त्रण करना था। कितनोंने विवश हो गायकवाड़ आदिको अपनी कन्यायें दे, अपने राज्यकी ही रक्षा नहीं वरन उसकी वृद्धि की, पर जिन्हें राजपूत शान की आन थी, वे कोपभाजन बन विपत्ति के सागर में पड़े और डूब मरे जो बचे वे "नकटा जीवे बुरी हवाल" के समान मृक जीवन हो गये। उनकी नींद हराम हो गई, और उनके राज्य का अपहरण नाना प्रकार से होने लगा।

लाटके बांसदा राज्यकोभी इनके चक्रमें पड़ना पड़ा। प्रबल प्राक्रान्त पेशवा और गायकवाड़, राहुके समान इसका ग्रास करनेके लिये अग्रसर हुए। राजवंशके गृह कलहको उद्दीप्त कर अपनी महत्वाकांक्षाको चरितार्थ करने लगे। कभी एकको तो कभी दूसरेको सहाय देने लगे। सहायताके उपलक्षमें शिबंदी खर्चके नामसे हजारोंकी थैली ऐंठने लगे। इसके अतिरिक्त नज़रानेकी थैलीभी लेने लगे। आज उसको गद्दीपर बैठाया, और नज़रानेकी भारी रकम करार करवायी, तो कल उसे गद्दीसे उतार, दूसरेको बैठाया, और उससे भी नज़राना कबूल कराया। राज्यलोलुप स्वार्थान्ध जोरावरसिंह, पेशवा और गायकवाड़के हाथकी कठपुतली बना। उसने ईस्वी सन १७३५ से लेकर १७७६ पर्यन्त नाना प्रकारसे राज्यको हानि पहुंचायी। होते हवाते राज्यवंशके पूर्णविनाशकी समस्या उपस्थित हुई। परन्तु गुजरात ही नहीं वरन भारतके राजनैतिक मंचपर ब्रिटिश जातिकी उपस्थिति और पेशवा गायकवाड़-संघर्षने राजपूत राजवंशोंके लिये त्राणका रूपधारण किया।

तत्कालीन बांसदा नरेशने सन १७८०–८२ वाले ब्रिटिश मरहठा युद्धमें अंग्रेजोंका साथ दिया और उनके साथ मैत्री स्थापित की। इतनाही नहीं वीरसिंहके वंशजोंने सन १८२० पर्यंत अनेक बार ब्रिटिश जातिकी सहायता गाढ़े समयमें की है।

परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो, अंग्रेजोंने अपने वचनका पालन नहीं किया है, केवल इतनाही नहीं वचनपालन करनेका अवसर उपस्थित होनेपर अपने स्वीकृत उत्तरदायित्वकी उपेक्षा करते हुए लिखा है।

"They would not have taken so far interest themselves in an insignificant state" और अपने पवित्र वचनोंको "Vague promise" बतलाया है। ठीक है, ऐसा क्यों न हो? राजनैतिक प्रतिज्ञायें समयाधीन होती हैं। उनका भाव समय टलतेही बदल जाता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि "दैवोदुर्बल घातकः" एवं इस संसारमें सबसे बढ़कर अगर कोई पाप है तो निर्बल और अशक्त होना है।

ईश्वरकी महती अनुकम्पा है कि इस राजवंशका अस्तित्व है, और इसका अस्थिपंजर बच गया है। इस राज्यके अधिकारमें सम्प्रति ७४० वर्गमील भूभाग है। राज्य ब्रिटिश सरकारको ७५०० वार्षिक कर देता है। नियमित इसे ९ तोपोंकी सलामीका अधिकार प्राप्त है; एवं राजाको वाइसरायसे स्वागत तथा बम्बई प्रान्तीय गवर्नरसे स्वागत और प्रतिस्वागतका अधिकार मिला है।

लाट और गुजरातमें मुसलमान।

हमारे विवेचनीय इतिहास और कालके साथ मुसलमान जातिका संपर्क पाया जाता है। इनका यह संबंध कई हिस्सोंमें बँटा है। और यदि हम इनके इस विभिन्न भागोंको पुराकालीन दिल्लीके सुलतान, अहमदाबाद और मालवाके सुलतान तथा खानदेशके मुसलमान, नाम देवें तो असंगत न होगा। अब हम पुराकालीन मुसलमानोंके संबंधका दिग्दर्शन कराते हैं सर्व प्रथम खलीफा हस्सामके समय जुनैदकी अध्यक्षतामें मुसलमानी सेनाको भरूचके गुर्जरोंपर आक्रमण करते पाते हैं। वहांसे जब वे आगे बढ़े तो उन्हें नवसारीके चौलुक्यराज पुलकेशीसे हार कर लौटना पड़ा।

लाट और गुजरात के मुसलमान।

हमारे विवेचनीय इतिहासके साथ मुसलमान जातिके संबन्धका कई बार उल्लेख हमें कर चुके हैं। प्रथमवार मुसलमानोंका उल्लेख नवसारिकाके चौलुक्यराज पुलकेशीके राज्य पर

आक्रमणके संबन्धम और द्वितीय बार बांमदाके राजके अस्तित्व संबंधमें दिल्लीके सुलतान अलाउद्दीनका उल्लेख कर चुके हैं। एवं संजाण पर आक्रमण करनेवाले मुसलमान सेनापति अल्लफखांको और मालवाके सुलतानोंका उल्लेख विस्तारके साथ किया गया है। पुनश्च वासुदेवपुरकी पुरातन राज्यधानी वसन्तपुरको लूटनेवाले अज्ञात शत्रुका विचार करते समय गुजरातके सुलतानोंका उल्लेख किया है। एवं अतः यहां पर भारत वर्षमें मुसलमान जातिके उत्कर्ष और पतन सम्बन्धमें कुछ विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

मुसलमान धर्मके संस्थापक हजरत मुहम्मद साहेबका जन्म अरबकी कुरेशी जातिमें विक्रम संवत् ६२८ में हुआ था। उन्होंने अपनी ४० वर्षकी अवस्थामें विक्रम संवत् ६६८ में अपनेको ईश्वरीय दूत घोषित कर उपदेश देना प्रारंभ किया था। उन्होंने लगभग १२ वर्ष पर्यन्त अपने मतका प्रचार किया। परन्तु विक्रम ६७९ में विरोधिओंकी प्रबलताके कारण उनको मक्का छोड़ मदीना जाना पड़ा। और उनके मक्कासे मदीना प्रवास (हिजरत) के उपलक्षमें हिजरी नामक संवत उनके अनुयायियोंने चलाया. हिजरत करनेके ११ वर्ष बाद अर्थात् हिजरी सन ११ तदनुसार विक्रम ६८९ में हजरत मुहम्मद साहबका स्वर्गवास हुआ। हजरत मुहम्मद साहबकी गद्दीपर बैठनेवाले खलीफा कहलाये।

हजरत मुहम्मद साहबके चलाये धर्मको माननेवाले मुसलमान कहलाये। मुसलमानों की संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी होने लगी। थोड़े समयके भीतर मुसलमान जाति एक बहुत बड़ा साम्राज्यकी भोगनेवाली हो गई। द्वितीय खलीफा उमरके समय (जिसका राज्य काल हिजरी १३-२०, तदनुसार विक्रम संवत ६९१-७०१) लाट देशकी राजधानी भृगुकच्छ पर आक्रमण करनेको एक सेना जल मार्गसे और दूसरी स्थल मार्गसे भेजी गई। जल मार्गसे आनेवाली सेना थाना तक आई, परन्तु उसे वापस जाना पड़ा। एवं स्थल मार्गसे आनेवाली सेना सिन्धुमेंही उलझ गई।

इस समयके पश्चात् मुसलमानोंके अनेक आक्रमण भारतपर हुए। परन्तु हमारे इतिहासके साथ उनका कुछभी संबंध नहीं है। अतः उसे पटतर कर आगे बढ़ते हैं। खलीफा हश्शामके समय (जिसका राज्यकाल हिजरी १०५ से १२० तदनुसार विक्रम ७८१—८०० पर्यन्त है) सिन्धके हाकिम जुनेदकी अध्यक्षतामें मुसलमानी सेनाने सिन्धसे

आगे पैर बढ़ाया। उसकी एक टुकड़ी चित्तौर होकर उज्जैन पर्यन्त गई और दूसरी टुकड़ी भीनमाल होकर भृगुकच्छसे और आगे कमलेज पर्यन्त चली आई थी। परन्तु उसे विक्रम ७९६ में हार कर लौटना पड़ा था।

इस घटनाके अनन्तर यद्यपि मुसलमानोंके भारतीय अधिकारकी वृद्धि क्रमशः होती गई। यहांतक कि भारतमें तुर्क वंशकी स्थापना हो गई। भारतकी राजधानी दिल्ही उनके अधिकारमें आ गई। परन्तु हमारे इतिहासके साथ उनका कोई संपर्क न हुआ। परन्तु मुसलमानोंके तीसरे राजवंश (खिलजीवंश) के तीसरे सुलतान अलाउद्दीन खिलजीके साथ हमारा संबंध स्थापित होता है। अलाउद्दीन खिलजी अपने चचा जलालुद्दीनके समय कड़ाका हाकिम था। उसी समय उसने देवगिरीके यादवोंपर आक्रमण कर बहुतसा धन रत्न प्राप्त किया था। एवं हिजरी सन ७०६ तदनुसार विक्रम १३५७ में वह दिल्हीका सुलतान हुआ और गद्दीपर बैठतेही उसने राजपूताने पर आक्रमण किया, एवं रणथंभोर पर विक्रम १३५८ में—चित्तौरपर १३६० में। अनन्तर सिवाना—जालोर—पाटन—मालवा आदिको अपने आधीन किया। यहां तककी अलाउद्दीनके सेनापति मलिककाफूरने देवगिरीके यादवराव रामदेव—वरंगलके राजा प्रतापचन्द्र, होयसल राज आदिको पराभूत किया। और एक प्रकारसे समस्त भारत अलाउद्दीनके अधिकारमें आ गया। अलाउद्दीनका राज्यकाल विक्रम १३५३ से १३७२ तदनुसार हिजरी ७०६ से ७९५ पर्यंत है।

गुजरात के मुसलमान।

अलाउद्दीन खिलजीने विक्रम १३६५ के आसपास पाटनके वघेल वंशका उत्पाटन कर गुजरातको अपने राज्यमें मिला लिया। और गुजरातमें अपना सूबा नियुक्त किया। इस समयसे लेकर विक्रम संवत् १४५३ पर्यंत (खिलजी वंशके अन्त समय और उसके बाद तुगलकोंके आरंभसे मध्यकाल पर्यंत) गुजरातका शासन दिल्ही सुलतानोंके सूबाओंने किया। परन्तु उसी वर्ष मुजफ्फरशाहने गुजरातमें स्वतंत्र मुसलमान राज्यकी स्थापना की। इस वंशका राज्यकाल विक्रम १४५३ से १६१८ पर्यंत १६५ वर्ष है। इस अवधिमें इस वंशके १४ राजा हुए। गुजरातके मुसलमानोंकी वंशावली निम्न प्रकारसे है।
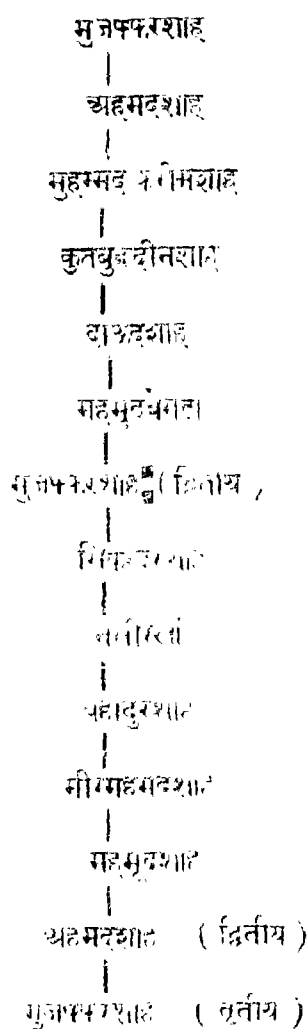
मुजफ्फरशाह यद्यपि स्वतंत्र हुआ परन्तु इसके अधिकारमें गुजरातका बहुतही थोड़ा भाग आया। परन्तु मुजफ्फरशाहके उत्तराधिकारी अहमदशाहने जूनागढ़, ईडर, धार आदिके साथ लड़ झगड़ अपना अधिकार चारों तरफ बढ़ाया। एवं अपने नामसे अहमदाबाद बसा, उसे अपनी राजधानी बनाया। अहमदशाहका पौत्र महमद बेगडा अपने वंशका परम प्रतापी सुलतान हुआ। इसने कच्छ, काठियावाड, चांपानेर, मालवा और सूरत आदिको विजय कर, अपना अधिकार खूब बढ़ाया। एवं अपने नामसे महमदाबाद बसाया। महमद बेगडाके बाद बहादुरशाह अपने वंशका परम विख्यात राजा हुआ। इसने मालवा, मेवाड और मुगलोंसे घोर युद्ध किया। इसके साथही मुसलमान राजका सौभाग्य सूर्य अस्ताचलोन्मुख

हो चला था। परन्तु किसी प्रकार स्वतंत्रता बनी रही थी। किन्तु मुजफ्फरशाह तृतीयके समय विक्रम १६१८ में मुगल सम्राट अकबरने गुजरातको अपने राज्यमें मिला लिया।

लाट और गुजरातमें मालवा के सुलतान।

जिस प्रकार गुजरातके बघेलोंका नाशकर अलाउद्दीनने गुजरातमें सूबा नियुक्त किया था उसी प्रकार मालवा धारके परमारोंका उत्पाटन कर उसने सूबा नियुक्त किया था। अलाउद्दीनके समय १३६५ से लेकर विक्रम १४३० पर्यन्त मालवाका शासन दिल्हीके सूबादार करते थे। परन्तु उक्त वर्ष दिलावरखां उर्फ अमीशाहने मालवामें स्वतंत्र मुसलमान राजकी स्थापना की थी। और परमारोंकी राजधानी धारको अपनी राजधानी बनाया। दिलावरखांका उत्तराधिकारी उसका पुत्र होशंगशाह उर्फ अल्फखां मालवाका सुलतान हुआ। इसने धारसे राजधानी उठा माँडूमें लाकर अनेक सुन्दर भवन आदि बनाये। और दो बार गुजरातपर आक्रमण किया। प्रथम बार इसको सफलता नहीं प्राप्त हुई परन्तु दूसरी बार विजयी हुआ और गुजरातको पूर्ण रूपसे लूटा।

गुजरात में मुगलवंश

तैमूरने यद्यपि भारतमें लूटपाट मचाअपना आतंक बैठा दिया था, तथापि भारतमें मुगलवंशका राज्य स्थापित करनेवाला बाबर है। बाबरनेभी यद्यपि काबुलको विजय कर बादशाहकी उपाधि धारण की थी और अनेक बार हिन्दुस्तानमें आकर लूटपाट मचाया था। परन्तु विक्रम संवत् १५८२ में पानीपतकी लड़ाईके बाद इब्राहिमखांको मार दिल्हीका बादशाह बना। दूसरे वर्ष विक्रम १५८३ में कनवा युद्धमें राजा संग्रामसिंहको हराया। चंदेरीमें मेदनीरायको पराभूत किया। अफगानोंको पराभूत कर बिहारको आधीन किया। और उसकी मृत्यु विक्रम १५८६ में हुई। मुगल वंशावली निम्न प्रकारसे है।

बाबरका उत्तराधिकारी हुमायूँ हुआ। हुमायूँका संघर्ष गुजरातके बहादुरशाहके साथ हुआ था। परन्तु गुजरातका कोई भाग उसके अधिकारमें नहीं आया। हुमायूँके पुत्र अकबरके अधिकारमें गुजरात प्रान्त मुजफ्फरशाह तीसरेके हाथसे विक्रम १६१८ में आया। तबसे गुजरातका शासन मुगलोंके सूबादार करते रहे। अकबरके समय गुजरातका प्रथम सूबादार टोडरमल था। और मुगल साम्राज्यके अन्तपर्यन्त अनेक सूबाओंने गुजरात देशकी सूबेदारी की। अकबरका प्रपौत्र बन्धुघाती और पितृद्रोही औरंगजेबके समय मरहठाओंका सौभाग्य सूर्य चमका। और शिवाजीने विक्रम संवत् १७२० में सर्व प्रथम मरहठाओंके शौर्यका

गुजरात वसुन्धराको परिचय कराया और सूरतको ६ दिनोंपर्यन्त खूबही लूटा। इसक पश्चात् विक्रम संवत् १७२६ में द्वितीय बार सूरतको लूटा। औरंगजेबके बाद मुगल साम्राज्यका सौभाग्य सूर्य अस्त होने लगा था। परन्तु उसके उत्तराधिकारी बहादुर शाहके समय तक किसी प्रकार मुगल साम्राज्यकी प्रतिष्ठा बनी रही। इस समय शिवाजीके पौत्र शाहुने पुनः महाराष्ट्र शक्तिका संगठन कर स्वातन्त्र्य ध्वजको ऊंचा किया। बहादुरके बाद उसका बड़ा पुत्र जहांदार बादशाह बना। जहांदारके बाद उसका भतीजा फर्रुखसियार बादशाह बना। फर्रुखसियार मरहठा तथा अन्य सरदारोंके षडयन्त्रका भोग बन मारा गया। और उन लोगोंने रफीउद्दज्जात को बादशाह बनाया। जो ६ महीना बाद मरा और रफीउद्दौला बादशाह बना। रफीउद्दौलाके बाद मुहम्मदशाह बादशाह बना। इसके समयमें मुगल साम्राज्यका अंग भंग होने लगा। निज़ाम स्वतंत्र बन गया और मरहठोंने गुजरातमें अपना पांव जमाया। मरहठा सरदार खण्डेराव दभाड़ और दामाजीराव गायकवाड़ने सूरतको लूटा और १७७६ विक्रममें सोनगढ़को अपना केन्द्र बनाया। अनन्तर मरहठोंका जोर बढ़ने लगा। और उनका आतंक छा गया। पीलाजीराव गायकवाड़के पुत्र दामजीरावने प्रायः समस्त गुजरात और काठियावाड़को हस्तगत किया। और मुगल साम्राज्यका गुजरातमें अन्त हुआ। यद्यपि इस समयसेभी और आगे पर्यंत मुगल राज्यका दीप टिमटिमाता रहा परन्तु हमारे इतिहासके साथ उसका सम्बन्ध न होनेसे हम इतनेहीसे अलम करते हैं।

लाटमें मरहठे।

हम ऊपर बता चुके हैं कि लाट वसुन्धराको छत्रपति महाराजा शिवाजी ने सर्व प्रथम मुगल सम्राट औरंगजेबके राज्यकाल विक्रम संवत् १७२० में पदाक्रान्त कर प्रसिद्ध सूरत नगरको ६ दिवस पर्यन्त लूट, बहुतसा धन रत्न प्राप्त किया था। एवं इस घटनाके ६ वर्ष पश्चात् विक्रम १७२७ में पुनः सूरतकी विसूरत की थी। उक्त दोनों लूट पाट लाटसे मुगल साम्राज्यका पतन और मरहठा जातिके अभ्युदयका श्री गणेश था। अतः अब विचारना है कि मरहठा शौर्यका अभ्युदय किस प्रकार हुआ, और लाट देश उनके अधिकारमें क्यों कर आया। राजपूताना और मरहठा देशोंकी परंपरा शिवाजीका संबंध मेवाड़के शिशोदिया वंशके साथ मिलाती है। और

महाराष्ट्रकी परंपरा बताती है कि मेवाड़पति महाराणा अजयसिंह ने—जिसका समय विक्रम संवत् १३६५ के आसपास है—किसी मुन्ज नामक शत्रुको यद्यपि युद्धमें पराभूत किया, परन्तु उसके भाग जानेसे उसे संतोष नहीं हुआ। अतः उसने अपने दोनों पुत्रोंको मुन्जका वध कर उसका शिर लाने के लिया कहा। और प्रगट किया, कि यदि वे उसका शिर नहीं ला सकेंगे तो वह उन्हें अपना सच्चा औरस पुत्र नहीं मानेगा। परन्तु वे दोनों भाई भीरु थे और मुन्जका शिर लानेमें असमर्थ रहे। परन्तु उसके भतीजे हमीरने मुन्जका शिर अर्पण किया। इस पर राणा अजयसिंहने उन्हें बहुतही बुरा भला कहा। जिसकी ग्लानिसे एकने आत्मघात किया, और दूसरा देश परित्याग कर डुंगरपुर चला गया। डुंगरपुर जानेवाले राजकुमारकी तेरहवीं पेढीमें सज्जनसिंह हुआ। सज्जनसिंह नामक व्यक्तिने मेवाड़ छोड़ दक्षिणमें आ कर बीजापुरके मुसलमानोंकी सेवामें प्रवेश कर मघोल परगना, जिसके अन्तर्गत ८४ ग्राम थे–की जागीर प्राप्त की। हमारा संबंध शिवाजीके वंशगत इतिहाससे न होनेके कारण हम परंपराकी सत्यता अथवा असत्यता विवेचनमें प्रवृत्त न होकर ऐतिहासिक घटनाओंका दिग्दर्शन कराते हैं।

परंपराके अनुसार सज्जनसिंहको चार पुत्र थे। जिनमें सयाजी सबमें छोटा था। उसका पुत्र भोन्साजी जिसके नामानुसार उसके वंशज भोंसले कहलाये। भोन्साजीको १० लड़के थे। जिनमेंसे बड़े पुत्रका नाम मालोजीराव था। उसका शाहाजी हुआ। शाहाजीने अहमदनगर और बीजापुरके मुसलमानोंका दहिना हाथ बन मुगलोंसे घोर युद्ध किया था। इसी शाहाजीके पुत्र महाराजा छत्रपति शिवाजी हुए। शिवाजीका जन्म विक्रम १६८३ में हुआ था। शिवाजी अपनी माता और गुरूकी देखरेखमें शस्त्र विद्याका अध्ययन कर १८ वर्षकी अति युवावस्थामेंही मरहठा नवयुवकोंको एकत्रित कर हिन्दु साम्राज्यके पुनरुद्धारार्थ प्रयत्नशील हुए थे। और मावलको अधिकृत कर विक्रम संवत् १७०२ में महाराजाकी उपाधि धारण कर महाराष्ट्र राज्यकी स्थापना किया। एवं २८ वर्ष पश्चात् विक्रम १७३० में बड़ी धूमसे रायगढ़में राज्याभिषेक किया, और उसी वर्ष लाट देशमें आकर सूरतको लूटा था शिवाजीको सूरत लूटके समय वांसदावालोंसे अभूतपूर्व सहायता मिली थी। शिवाजीको संभाजी और राजाराम नामक

दो पुत्र थे। संभाजी जब वयस्क हुआ तो अत्यन्त दुराचारी निकला। उसके आचरणसे असंतुष्ट हो, जब शिवाजीने शासन किया तो वह विक्रम १७३४ में भाग कर एक मुगल सरदारके पास चला गया। परन्तु मुगलोंके व्यवहारसे संत्रस्त हो स्वदेश आ गया। किन्तु शिवाजीने उसे क्षमा न कर पन्हाला दुर्गमें कैद किया। इस घटनासे शिवाजीका हृदय अत्यन्त दुःखी रहने लगा, और विक्रम १७३६ में ५३ वर्षकी अवस्थामें उनकी मृत्यु हुई। और भारत उद्धार तथा हिन्दु साम्राज्यकी आशा उनके साथही चिताकी गोदमें चली गई।

शिवाजीकी मृत्यु पश्चात् संभाजीके बंदी होनेका लाभ उठा उसकी विमाता सोयराबाईने अपने पुत्र राजारामको रायगढ़में गद्दीपर बैठाया और महाराष्ट्र सिंहासनकी जड़में गृह कलहका बीज वपन किया। परन्तु संभाजीको जब यह संवाद मिला तो किसी प्रकार पन्हालासे निकल अपने अनुचरोंको एकत्रित कर रायगढ़को हस्तगत किया। सोयराबाईको बंदी बना शिवाजीको विष देनेके अपराधमें मरवा डाला। और विक्रम १७३७ में गद्दीपर बैठा। एवं राजारामके साथिओंको बड़ीही निर्दयताके साथ यमराजके दरबारमें पहुंचाया।

संभाजीको राजा बननेके लगभग एक वर्ष बाद बादशाह औरंगजेबका पुत्र अकबर जब अपने पिताकी कुटिल नीतिके कारण पराभूत हुआ तो राठौड़वीर दुर्गादासकी प्रेरणासे संभाजीके शरणमें आया। मरहठोंने यद्यपि उसे शरण दिया, परन्तु अकबरको संतोषजनक लाभकी आशा नहीं दीखी। अकबरका संभाजीके पास जाने और मरहठोंका बुरहानपुर विजयका संवाद पाकर औरंगजेब स्वयं बुरहानपुर आकर संभाजीपर आक्रमणका संचालन करने लगा। मरहठोंके दुर्भाग्यसे संभाजीकी एक स्त्री और पुत्रको मुगलोंने बंदी बनाया। पुनश्च औरंगजेबने बीजापुर और गोलकुन्डाको विक्रम १७४३ में विजयकर अपनी समस्त सेना संभाजीके प्रतिकूल अग्रगामी की। विक्रम १७४३ में संभाजी अपने पुत्र शाहुके साथ बंदी हुआ और औरंगजेबने मुसलमान धर्म न स्वीकार करनेपर उसे मरवा डाला। एवं रायगढ़ विजयकर अनेक सरदार सामन्तों और राज्य परिवारके मनुष्योंका वध किया। परन्तु राजाराम सन्यासीके वेषमें भाग निकला। औरंगजेबने रायगढ़को स्वाधीन किया।

संभाजीकी मृत्यु और उसके पुत्र शाहु (शिवाजी) के बंदी होनेके कारण संभाजीका छोटा वैमात्रिक भाई राजाराम नाम मात्रका राजा बना; क्योंकि उस समय:याप्र

महाराष्ट्र देश औरंगजेबके अधिकारमें चला गया था। और तीन वर्ष तक राज्य करने पश्चात् शिवाजी और संभाजी नामक दो पुत्र और चार स्त्रियोंको छोड़ स्वर्गवासी हुआ। जिस प्रकार राजारामके पिता छत्रपति महाराजा शिवाजीके मरने पश्चात् उसकी माताने उसे गद्दीपर बैठानेके लिये खटपट की थी। उसी प्रकार उसके पुत्रोंकी माताओंने अपने अपने पुत्रको गद्दीपर बैठानेके लिये खटपट शुरू की। परन्तु अन्तमें शिवाजी गद्दीपर बैठा। किन्तु वास्तवमें उसकी माता राज्य करती थी। १७५६ से १७६३ पर्यन्त शिवाजी राजा रहा। इसी वर्ष औरंगजेबकी मृत्यु हुई और शाहु बंदीसे छूटकर स्वदेश आया। अपने हितैषी सरदारोंको एकत्रित कर राज्य मांगा, परन्तु ताराबाईने राज्य सौंपनेसे इन्कार किया। तब शाहुने साम दाम आदि द्वारा ताराबाईका पक्ष निर्बल बना सताराको अधिकृत कर अपने राजा होनेकी घोषणा विक्रम १७६४ में की। इस घटनाके चार वर्ष बाद विक्रम १७६८ में राजारामके पुत्र शिवाजीकी मृत्यु हुई। और ताराबाई कोल्हापुर चली गई। यहां संभाजी उसके हाथसे राज्य छीन कोल्हापुरका महाराजा बना। और मरहठा राज्य सतारा और कोल्हापुर नामक दो भागोंमें बट गया। आगेकी घटनाओंका दिग्दर्शन करानेके पूर्व महाराष्ट्र वंशकी वंशावली उधृत करते हैं।
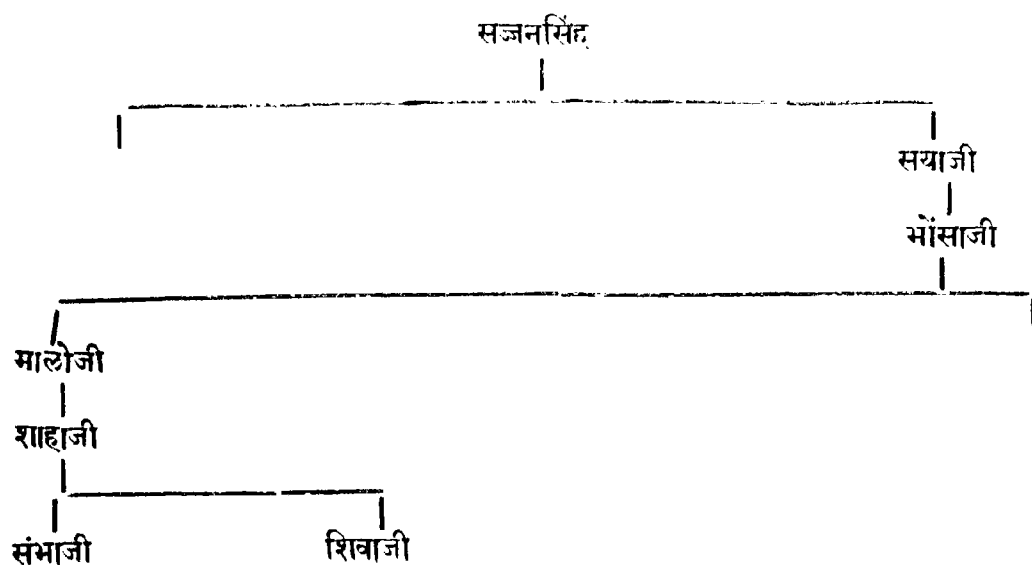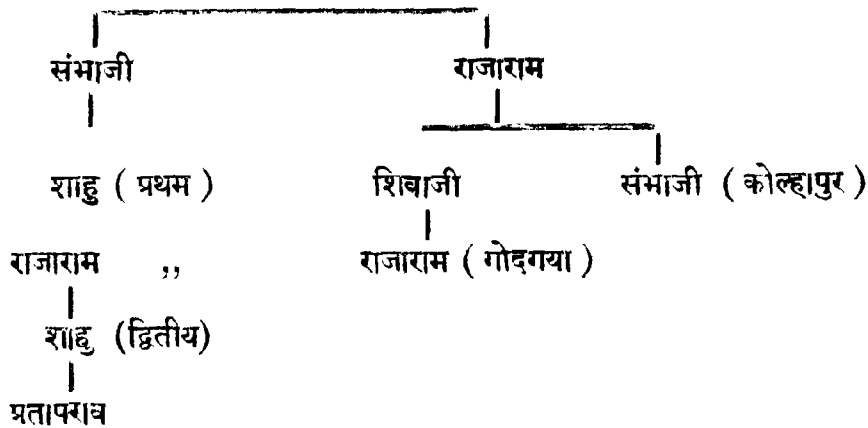
शाहूको बंदीपनसे मुक्त होनेके पश्चात् बालाजी विश्वनाथ नामक ब्राह्मणसे प्रचुर सहायता मिली थी। अतः उसने अपने राज्यका सबसे बड़ा पेशवा पद उसे प्रदान किया। बालाजी विश्वनाथ भट्टकी पेशवा पद मिलते समय विक्रम १७६६ में, ५३ वर्षकी अवस्था थी। परन्तु उसने शाहुकी राज्य सत्ताको बढ़ाने और शत्रुओंको नाश करनेमें कोईभी बात उठा न रखी। सर्व प्रथम उसने ताराबाईका बल नाश किया। अनन्तर अन्यान्य सरदारोंको पराभूत कर शाहुकी सत्ता वृद्धिकर वास्तवमें उसे महाराष्ट्रका राजा बनाया। यहां तककि विक्रम १७७४ में एक भारी सेना लेकर अबदुल्लाखांके साथ दिल्ही गया, और बादशाह फर्रुखसियारको पदभ्रष्ट करनेमें हाथबटा रफीउद्दज्जातको बादशाह बना तीन सनद प्राप्त कीं। उनमेंसे प्रथमके अनुसार शिवाजीकी मृत्युके समय जितने भूभागपर अधिकार था, वह शाहूका स्वराज्य रूपसे माना गया। दूसरेके अनुसार मरहठोंने जो खानदेश, बेड़ार, हैद्राबाद और कोकण आदिका भूभाग विजय किया था, वह न्यायोचित शाहुका प्रदेश माना गया। तीसरेके अनुसार शाहुको खानदेश, बेड़ार, हैद्राबाद, कर्नाटक और कोकण आदि प्रदेशमें अपने कर्मचारिओंको रख कर चौथ वसूल करनेका अधिकार दिया। एवं इसकी दूसरी शर्त यहथी कि कोल्हापुरके महाराज संभाजी (अपने चचेरे भाई) के साथ शाहु छेड़छाड़ न करे अर्थात् कोल्हापुर स्वतंत्र बना। और बादशाहने शिवाजीके परिवारके बंदी स्त्री और बच्चोंको विमुक्त कर सतारा भेज दिया। विक्रम १७७६ में बालाजीकी मृत्यु हुई। बाजीराव दूसरा पेशवा बना। अन्य बातोंके विवेचनको हस्तगत करनेके पूर्व हम पेशवा वंशकी वंशावली उद्धृत करते हैं।

पेशवा वंशावली.
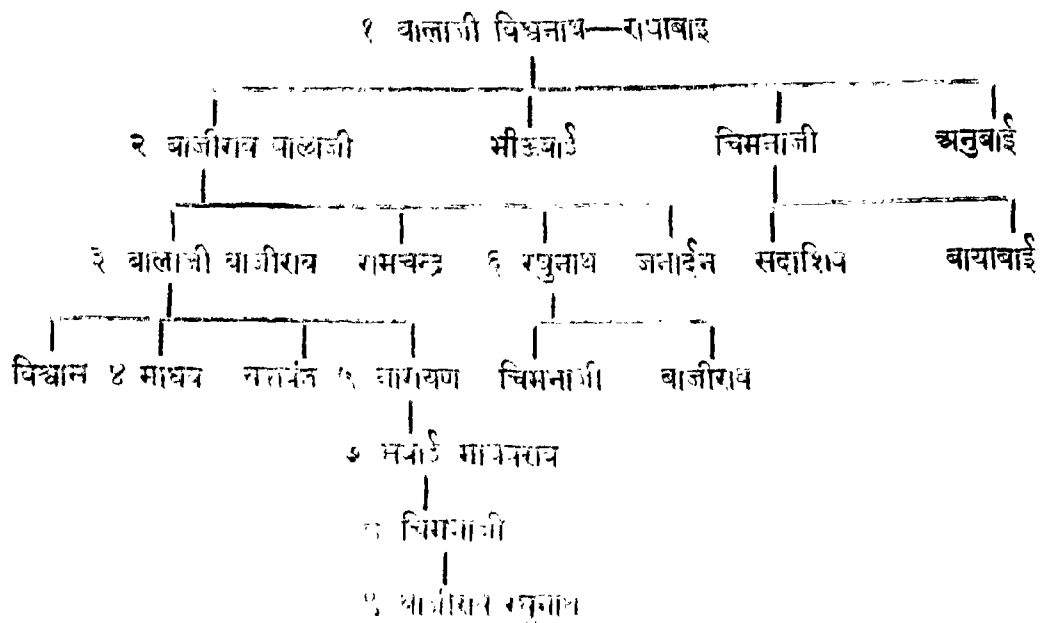
जिस प्रकार बंदीसे मुक्त होनेके पश्चात बालाजीसे शाहुको अभूतपूर्व सहायता मिली थी। उसी प्रकार खण्डेराव दभाड़ेसे मिली थी। दभाड़े परिवार शाहुके पिता और पितामहके समयसे ही महाराष्ट्र सैनिकोंमें प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। यहां तक कि संभाजीके मारे जाने और शाहुकी बंदी अवस्थामें राजारामने खण्डेरावको तलेगांवकी जागीर और सेना खासखेलकी उपाधि प्रदान की थी। इतना होते हुएभी खण्डेराव दभाड़ेने शाहुको न्यायसंगत महाराष्ट्र सिंहासनका अधिकारी मान अन्यान्य सरदारोंके विरोध करने परभी उसका साथ दिया। अतः शाहुने उसे अपना प्रधान सेनापति बनाया। खण्डेराव दभाड़े जब शाहुका प्रधान सेनापति बना, तो उस समय उसके पास नाम मात्रका राज्य था। दभाड़ेने औरंगजेबकी मृत्युसे उत्पन्न विशृंखला का उपयुक्त लाभ उठानेके विचारसे बालाजी विश्वनाथको गृहकलहके निवारणार्थ छोड़ एक बहुत बड़ी सेना लेकर विक्रम संवत १७६४ में खानदेशके मार्गसे पिम्पलनेर आदिको अधिकृत करता हुआ नवापुराको केन्द्र बनाया। वहांसे आगे लाटमें प्रवेश किया, और नवसारी पर्यन्त लूटपाट मचाया। खण्डेराव दभाड़ेकोभी छत्रपति महाराज शिवाजीके समानही लूटपाट करते समय वांसदाके

महारावल वीरदेवसे सहायता मिली थी। खण्डेरावने नवापुराको अपना केन्द्र बनाया। खण्डेराव दभाड़ेके इस आक्रमणके समय दामाजी गायकवाड़ नामक सैनिक उसके साथ था। उसने इस आक्रमणके समय अपनी वीरताका परिचय दिखाया था। दभाड़े और गायकवाड़का यह लूटपाट विक्रम १७६३ से १७७६ पर्यन्त चलता रहा। परन्तु इसी वर्ष इन्होंने बालपुर नामक ग्राममें पूर्ण विजय प्राप्त किया। इसी वर्ष खण्डेरावने सतारा लौटकर दामाजी गायकवाड़की वीरताकी सूचना शाहुको दी। शाहुने दामाजीको समशेर बहादुर की उपाधि प्रदान की। परन्तु खण्डेराव दभाड़े और दामाजीराव गायकवाड़ दोनों की मृत्यु थोड़ेही दिनों बाद हुई। अनन्तर खण्डेराव दभाड़ेका उत्तराधिकारी उसका पुत्र त्र्यम्बकराव और दामाजीका उत्तराधिकारी उसका पुत्र पीलाजीराव हुआ। उसके आगे चलकर दभाड़े परिवार के साथ लाट देशका इतिहास ओत प्रोत है।

शाहुको अपने तीन विश्वस्त और स्वामी भक्त सेवकोंकी मृत्यु घटना देखनेको मिली। शाहुने अपने तीनों स्वर्गीय सेवकोंके उत्तराधिकारियोंको उनके पिताके पदपर नियुक्त किया। जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, कि बालाजी विश्वनाथका पुत्र बाजीराव पेशवा बना। उसी प्रकार खण्डेरावका पुत्र त्र्यम्बकराव दभाड़े सेनापति और दामाजीका भतीजा पीलाजी समसेर बहादुर बना। परन्तु तीनों महत्वाकांक्षी और नवयुवक थे। साथही उनमें आत्माभिमान कूट कूट कर भरा था। शाहुने बाजीरावको पेशवा बनानेके साथही प्रधान सेनापति बनाया। जिसने त्र्यम्बकरावके मनको मलीन किया। और वह एक प्रकारसे पेशवाका विरोधी बन अपने अधिकृत प्रदेशमें चला गया। पीलाजीभी दभाड़ेका साथी बना। सोनगढ़से आगे बढ़ कर वह लूटता मारता आगे बढ़ने लगा। इसी अवसरमें गुजरातके मुगल प्रबंधमें फेरफार हुआ। गुजरातका सूबा सरबुलन्दखां था। और इसका नायब निजामउलमुल्क था। बादशाहने निजामउलमुल्कके स्थानमें सुजातखां को नायब बनाकर भेजा। परन्तु बादशाहकी आज्ञाके प्रतिकूल निजामउलमुल्कके चचा हमीदने बलवा किया। और शाहुके दूसरे सेनापति कन्थाजी कदम्बको दोहदसे सहायताके लिये बुलवाया तथा गुजरातकी

चौथ सहायताके उपलक्षमें देना स्वीकार किया। इधर सुजातखांके भाई रुस्तमअलीने पीलाजीसे चौथके शर्तपर सहायताकी प्रार्थना की। पीलाजी रुस्तमको मदद देना स्वीकार कर आगे बढ़ा और रुस्तम तथा पीलाजीकी सेना महीपार कर अडासके तरफ जा रही थी। अचानक हमीदने आक्रमण किया। परन्तु हटाया गया। इसके अनन्तर रुस्तम और पीलाजीसे मन मुटाव हो गया और पीलाजीने अचानक रुस्तमपर आक्रमण किया। रुस्तम वीरतासे लड़ा परन्तु अन्तमें बंदी होनेके स्थानमें मरना अच्छा मान आत्मघात कर गया। रुस्तमके मरने पश्चात् पीलाजीने हमीदखांसे अपने विश्वासघातके पुरस्कारमें गुजरातकी चौथ मांगी। परन्तु कन्थाजी कदम्बने विरोध किया। अतः महीसे उत्तरका कन्थाजीको और दक्षिणके चौथका अधिकार पीलाजीको मिला। पीलाजी सोनगढ़ और कन्थाजी खानदेश चले आये। हमीदको दण्ड देनेके लिये सरबुलन्दखां भेजा गया। जिसके आनेका संवाद पाकर हमीद भाग खड़ा हुआ। इतनेमें कन्थाजी और पीलाजी उससे जा मिले। अन्तमें सरबुलन्दको हारना पड़ा। इन दोनोंने खूबही ऊधम मचाया अन्तमें सरबुलन्दने बाजीराव पेशवासे सहायताकी प्रार्थना की। और उसने सरबुलन्दसे चौथ स्वीकार कराकर अपने भाई चिमनाजीकी अध्यक्षतामें सेना भेजी। चिमनाजीने सरबुलन्दसे अपने भाईकी शर्त स्वीकार कराकर उसे आश्वासन दिया की कोईभी मरहठा उसके इलाकेमें गड़बड़ नहीं मचायेगा। परन्तु त्र्यम्बकराव दभाड़े और अन्यान्य मरहठे पेशवाको गुजरातसे निकाल बाहर करनेके विचारसे मिल गये। उन्होंने पेशवा और दभाड़े विग्रहको ब्राह्मण अब्राह्मणका रूप दिया। दभाड़े आदि यहां तक आगे बढ़े कि उन्होंने निजामउलमुल्कसे मैत्री स्थापित की। और ३५००० सेनाके साथ पेशवाके विरोधमें प्रवृत्त हुए। बाजीराव स्वयं इनको शिक्षा देनेके लिये गुजरात आया। परन्तु दुर्भाग्यसे नर्मदा उतरनेबाद सम्मिलित गायकवाड़-दभाड़े सेनाके नायक पीलाजीरावके पुत्र दामाजीके हाथसे बाजीरावको पराभूत होना पड़ा।

बाजीराव यद्यपि हारा, परन्तु हतोत्साह न हुआ। डभोई और वरोदाके मध्यवाले भीकू पुरा ग्रामके दूसरे युद्धमें सफलीभूत हुआ। त्र्यम्बकराव तथा पीलाजीका पुत्र सयाजी मारा गया। पिलाजी अपने दो पुत्रोंके साथ घायल होकर सोनगढ़ चला अया। और बाजीराव विजयी होकर सतारा गया। परन्तु वह समझ गया कि ब्राह्मणेतर मरहठे सैनिकोंकी उपेक्षा करनेमें नतो वह समर्थ है, और न राजनैतिक

दृष्टया वाञ्छनीय है। क्योंकि कथित युद्धमें त्र्यम्बकरावके अतिरिक्त पीलाजीराव गायकवाड़, कन्थाजी और रघुनाथराव कदम्ब, सयाजीराव भाराड़े और आनन्दराव पवार तथा प्रायः दूसरे प्रसिद्ध सैनिक शामिल थे। इस हेतु उसने अपनी विजयको ईश्वर दत्त माना और मरहठोंको किसी प्रकार मिलानेको युक्ति संगत मान उसे चरितार्थ करनेमें प्रवृत्त हुआ। उसने विक्रम संवत् १७८७ में मृत सेनापति त्र्यम्बकरावके बालक पुत्र आनंदरावको मराठोंका सेनापति बनाया। नवीन बालक सेनापतिके पैतृक अधिकारके स्वीकार कर उसकी माताको अभिभावक और पीलाजीराव गायकवाड़को प्रतिनिधि नियुक्त किया। इसके अतिरिक्त पीलाजीको नवीन उपाधि सेना खासखेल प्रदान की। और सेनापतिका कर्म करनेका आदेश दिया। एवं घोषणा की कि आजसे आगेको कोईभी मरहठा सेनापति किसी दूसरेके अधिकारमें गुजरात, मालवा आदि किसी देशमें हस्तक्षेप नहीं करेगा। अन्ततोगत्वा बालक सेनापतिके प्रतिनिधि रूपमें पीलाजीसे गुजरातकी चौथका आधा भाग सताराके राजा शाहुकी सेवामें पेशवाके द्वारा भेजना स्वीकृत कराया। पिलाजी गायकवाड़का–आनन्दराव दभाड़ेका–अभिभावक बनाया जाना गायकवाड़ वंशके गुजरातमें अभ्युदयका श्रीगणेश है। आगे चलकर पद पद पर हमें गायकवाड़ोंका उल्लेख करना पड़ेगा, अतः गायकवाड़ वंशावलीको उद्धृत करते हैं।

गायकवाड़ वंशावली.
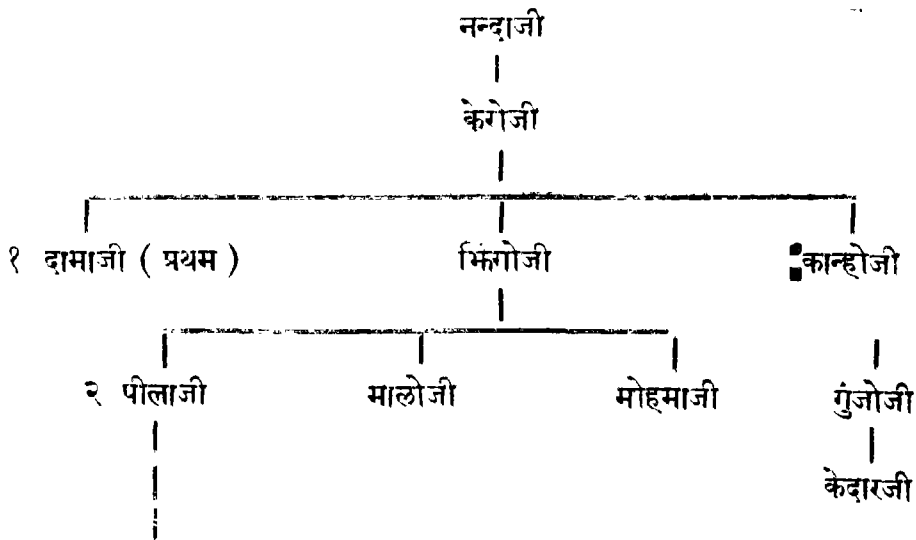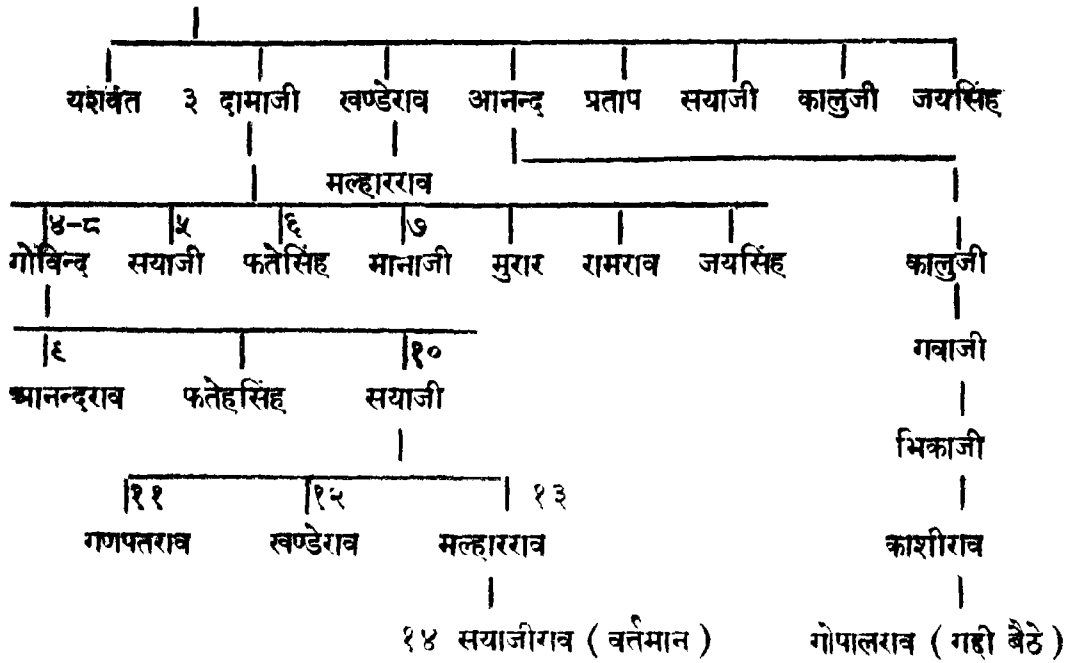
बाजीरावने इस प्रकार प्रबन्ध कर यद्यपि प्रत्येक मरहठा सैनिकको अपने अधिकार पर सुरक्षित कर दिया। किन्तु न तो उसका अपना मन और न मरहठा सैनिकोंका मन शुद्ध हुआ। इसका परिचय आगे मिलेगा। खैर इस प्रकार पीलाजी आनन्दरावका प्रतिनिधि बन कर सोनगढ़को अपना केन्द्र बना गुजरातका एक प्रकारसे सर्व सर्वा बन गया। परन्तु उसे सुख और शान्ति नहीं मिली। क्योंकि मुगल बादशाहने अपने सूबा सरबुलन्दकी शर्तोंको नहीं माना और मरहठोंको गुजरातसे निकाल बाहर करनेके लिये जोधपुरके महाराजा अभयसिंहको सूबा बनाकर भेजा। अभयसिंह दिल्हीसे चलकर अहमदाबाद आये और सरबुलन्दके मनुष्योंके हाथसे उसे बलपूर्वक छीन लिया। एवं बरोदाको हस्तगत कर महमद बहादुरखां बाबीको विजित प्रदेशका अधिपति बनाया। अभयसिंहके आनेके समय पीलाजी डाकोरकी यात्राको गया था। सम्वाद पाकर वह छीने प्रदेशको पुनः स्वाधीन करनेकी धुनमें लगा। परन्तु अभयसिंहने युद्धमें प्रवृत्त होनेके स्थानमें कौशलसे काम लेना चाहा। और पीलाजीसे मैत्रीकी बातें करने लगा। और इस संबंधमें दोनों एक दूसरेसे मिलने लगे। अन्तमें उसके संकेतानुसार पीलाजी मारा गया। अर्थात् जब एक दिन मिलनेके बाद जानेके लिये उठातो एक राजपूत सैनिकने कुछ संवाद देनेके बहानेसे उसके कानमें कुछ बातचीत करनेका संकेत किया, और जब उसने उसके प्रति अपना कान झुकाया, तो बातें करनेके स्थानमें अपना कटार

पीलाजीके पेटमें भोंक दिया । इस प्रकार पीलाजीको रुस्तमखांके साथ किये हुए अपने विश्वासघातका फल विक्रम १७८८ में भोगना पड़ा । एवं "इस हाथ दे और उस हाथ ले" कथानक चरितार्थ हुआ ।

पीलाजीके इस प्रकार विश्वासघातसे मारेजानेका संवाद पाकर वटपद्राके देशाईने अपने मित्रकी मृत्युका प्रतिशोध करनेके लिये भीलोंको एकत्रित कर उपद्रव मचाया । और उक्त देशाईका हाथ बटानेके लिये पीलाजीका भाई मालोजी जम्बूसरसे आगे बढ़ा और शेरखां बाबीको मार भगा बरोदाको हस्त गत किया । इधर पीलाजीके आठ पुत्रोंमेंसे ज्येष्ठ पुत्र दामाजी सोनगढ़से सेना लेकर आगे बढ़ा । और मार काट, लूट खसोट का बाजार गरम किया । दामाजी साम, दाम, विभेद आदि द्वारा समस्त गुजरातको स्वाधीन करने लगा । अभयसिंहके प्रतिनिधिको अहमदाबादसे मार भगाया । लूटपाट करता हुआ जोधपुरके समीप तक पहुंच गया । विक्रम १७९६ में दामाजीके सेनापति राधोजीने फकीरुद्दौला, जो गुजरातका सूबा बनाया गया था, को आगे बढ़नेसे रोका । दामाजीने फकीरुद्दौलाको सूबा न स्वीकार कर अपने हाथके कठपुतला मोमीनखांको सूबा बनाया । इसी वर्ष बाजीराव द्वितीय पेशवाकी मृत्यु नर्मदा काठेके रावेर नामक स्थानमें हुई । और उसका पुत्र नानासाहेब उर्फ बालाजी बाजीराव तीसरा पेशवा हुआ ।

बालाजी बाजीरावके पेशवा होने परभी दामाजीकी स्वतंत्रतामें कुछ न्यूनता न हुई । इस घटनाके तीन वर्ष बाद विक्रम १७९९ में मोमीनखां मरा और बादशाहने अबदुल अजीजको सूबा बनाकर गुजरात भेजा । परन्तु वह दामाजीके हाथसे मारा गया । अनंतर दामाजीन अपना अधिकार खूब, ही बढ़ाया । यहां तक कि विक्रम १७६७ में उसने मालवाकोभी पदाक्रान्त किया । इस प्रकार बालाजी बाजीरावके पेशवा होने पश्चात् मरहठोंका प्रभाव समुद्र तरंगके समान बढ़ रहा था । परन्तु शाहुका दिन बड़े कष्टमें व्यतीत होता था । उसको अपने एक मात्र पुत्र और प्रिय पत्नीकी मृत्युका घोर कष्ट हुआ । और उसका स्वास्थ्य बिगड़ा । वह अन्तिम दिनकी घड़ियां गिन रहा था । मरहटा सरदार शाहुके उत्तराधिकारीके संबंधमें अनेक प्रकारके मनसूबे बांध रहे थे । अन्तमें राजारामके पौत्र और शिवाजीके पुत्र राजारामको गोद लेना निश्चित हुआ । शाहुकी मरण शैयासे बालाजीने एक आज्ञापत्र प्राप्त किया । उसके आधार पर वह मरहठा साम्राज्यका सर्वे सर्वा बन गया । राजारामको राजा बनाना निश्चित रूपसे घोषित किया गया । एवं उक्त आज्ञा पत्रके अनुसार कोल्हापुरको स्वतंत्र राज्य माना गया । पश्चात् शाहुकी मृत्यु हुइ ।

शाहुकी मृत्यु विक्रम १८०५ में हुई और राजाराम गद्दी पर बैठा। उसके गद्दीपर बैठतेही बालाजीने सताराके स्थानमें पूनाको राज्यधानी बनाया और अपने मनके मुताबिक मरहठा राज्यका प्रबन्ध करने लगा। राजाराम पूर्ण रूपेण अयोग्य निकला। वह बालाजीके हाथका कठ पुतला बन गया। परन्तु उसकी दादी ताराबाईसे यह बरदास्त न हुआ। उसने एक दिवस राजारामको राज्य कारभारमें प्रवृत्त हो ब्राह्मणोंके हाथमें मरहठा राज्यलक्ष्मीको जानेसे बचानेके लिये आदेश किया। परन्तु उसका आदेश निष्फल हुआ। अतः उसने विक्रम १८०७ में दामाजी गायकवाड़को गुजरातसे शीघ्रही आकर ब्राह्मणोंके त्राससे मरहठा राज्य लक्ष्मीको बचानेके लिये आग्रह किया। दामाजी बालाजीसे प्रथमसेही असंतुष्ट था क्योंकि इस घटनाके कुछ महीना पूर्व बालाजीने गुजरातकी आयका आधा भाग मांगा था। इस हेतु वह गुजरातसे सताराके लिये चल पड़ा। उधर जब ताराबाईको दामाजीके आनेका संवाद मिला तो उसने राजारामको कैद कर बालाजीके अनुयाइयोंको खूबही ठोका पीटा। वे सतारा छोड़कर भाग खड़े हुए। दामाजी ताराबाईकी सेवामें उपस्थित हुआ। अनन्तर सतारामें भावी युद्धकी आशंकासे अस्त्र शस्त्र और अन्नादि संग्रह किया गया। इस घटनाका संवाद पा बालाजी घटनास्थल पर उपस्थित हुआ और विश्वासघातसे दामाजी और उसके परिवार तथा दभाड़े परिवारको बन्दी बनाया। अनन्तर उसने ताराबाईसे आत्मसमर्पण करनेको कहा परन्तु उसने इन्कार किया। इसपर बालाजीने उससे लड़ना युक्ति संगत न मान पूना चला गया। अन्तमें जानोजी भोंसलेकी मध्यस्थतासे ताराबाई और बालाजीके मध्य शान्ति स्थापित हुई। और ताराबाई सतारासे पूना आई। राजाराम बन्दी रखा गया।

दामाजी गायकवाड़को (दभाड़ेके कर्ज रूप) १५०००००) देनेके साथही दभाड़ेके इलाकेसे ५०००००) प्रतिवर्ष देना स्वीकार करना पड़ा। एवं स्वभुजबलसे अर्जित गुजरात प्रान्तकी आधी आय, चौथ और सरदेशमुखीका खर्च देनेके बाद, देना स्वीकार करना पड़ा। कथित आयके लिये मुल्क बाटा गया। बाँसदा राज्यसे गिरों लिए हुए विसुनपुर परगनाको दामाजीने अपने हिस्सेमें रखा और उसकी चौथ ३०००) वार्षिक देना स्वीकार किया। इस प्रकार दामाजी अपनी स्वतंत्रता खरीद कर गुजरात लौटने लगा तो बालाजीने उसके साथ रघुनाथरावको लगा दिया। कि वह साथ रह कर दामाजीसे कथित सन्धिके नियमोंका पालन करावे। गुजरात लौटते समय दामाजी और रघुनाथरावने खूबही लूटपाट मचाया। गुजरातके विभाजित अंशको स्वाधीन करनेके पश्चात्‌भी दामाजी और रघुनाथरावने लूटपाटका बाजार गरम रखा। यहां तक कि वे अहमदाबाद पहुंच

कर नगरको हस्तगत करनेकी धुनमें लगे। इस समय मुगल सूबा जमामुरादखां दूसरा था। प्रथम उसने वीरताके साथ मरहठोंका सामना किया। परन्तु अन्तमें उसे सुलह करनी पड़ी। सुलहके अनुसार अहमदाबाद छोड़कर उसके स्थानमें पाटन, बड़नगर, बीजापुर और राधनपुर लेकर संतोष करना पड़ा। उसने राधनपुरको केन्द्र बना नवीन स्वतंत्र राज्य विक्रम संवत् १८१३ में स्थापित किया, और गुजरातका प्रधान नगर मरहठोंके अधिकारमें आनेके साथही मुगलोंका नाम गुजरातसे सदाके लिये उठ गया। इस घटनाके कुछ पश्चात् पानीपतके युद्धमें मरहठोंको हारना पड़ा। और बालाजी बाजीरावकी मृत्यु हुई। और विक्रम संवत् १८१७ में बालाजी बाजीरावका दूसरा पुत्र माधवराव अपने चचा रघुनाथरावके साथ सतारा जाकर अपने पेशवा पदको राजारामसे स्वीकार कराया।

यद्यपि माधवराव पेशवा बना परन्तु उसका चचा रघुनाथराव वास्तवमें पेशवा हुआ। और उसके नामसे मनमानी घरजानी करने लगा। उसने सर्व प्रथम गंगाधरको प्रतिनिधिपदसे हटाकर उसके पुत्र भास्कररावको उसका स्थान दिया। एवं नारूशंकर राजा बहादुरको मुतालिक बनाया। अनन्तर विक्रम १८१६ में पेशवाकी आज्ञासे दामाजीने राज्य पीपलाको पदाक्रान्त कर नादोद, भालोद, वारीती और गोवाली परगनाओंकी आयका आधा भाग मांगा। पर इस घटनाके एक वर्ष बाद विक्रम १८२० में राज्य पीपलाके राजा रायसिंहजीकी भतीजीके साथ दामाजीने विवाह किया और पूर्व कथित परगनाओंकी आधी आयकी मांगको छोड़ दिया।

इधर दामाजी गायकवाड़ गुजरात राजपूत राज्योंको इस प्रकार एकके बाद दूसरेको कुचल रहा था। और उधर पूना और सतारा षड्यंत्रका केन्द्र बना था। रघुनाथराव मरहठा सरदारोंको पदच्युत कर अपना विरोधी बना रहा था। साथकी उसके भतीजा माधवरावके साथभी उसका मन मुटाव हो गया था। अत: माधवरावने रघुनाथरावका मूलोच्छेद करना चाहा। रघुनाथने दामाजीसे सहाय प्रार्थना की और उसने एक सेना अपने पुत्र गोविंदरावकी आधीनतामें भेजी। परन्तु रघुनाथ और गोविंदकी सम्मिलित सेना को हारना पड़ा। माधव विजयी बन कर दामाजीको ५२५००० वार्षिक कर देने और ३००० सेना शान्ति समय और ५००० सेना युद्ध समय अपने व्ययसे रखनेके लिये बाध्य कर स्वीकार कराया। एवं गुजरातका कुछ भाग दामाजीको कथित सैनिक सेवाके लिये देना स्वीकार किया। परन्तु इस अपमान जनक सन्धि पत्रपर हस्ताक्षर करनेके पूर्वही

दामाजी की मृत्यु हुई। उसकी मृत्युका सम्वाद पाते ही माधवरावने गायकवाड़की शक्ति का नाश सम्पादनके विचारसे पूनामें बन्दी रूपसे रहनेवाले गोविंदरावसे हस्ताक्षर कराकर उसे दामाजीका उत्तराधिकारी स्वीकार किया। परिणाम उसका सन्तोष जनक हुआ। क्योंकि फतेहसिंह जो गुजरातमें था सयाजीरावको गद्दीपर बैठा अपने आप उसका अभिभावक बन गया। गृह कलहका अंकुर दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। गोविंदराव और फतेहसिंह एक दूसरेके कट्टर शत्रु बन गये। कुछ दिनोंके बाद पेशवाने गोविंदरावके स्थानमें सयाजीरावको दामाजीका उत्तराधिकारी और फतेसिंहको उसका अभिभावका स्वीकार किया। अनन्तर पेशवाने आज फतेसिंहको निकाला तो कल गोविंदरावको अपनाया। पेशवाका यह कार्य ठीक उसी प्रकार हुआ जैसा कि दामाजी प्रभृतिने विजयपुर (बांसदा) के गृह कलहमें स्वार्थ साधनाथ किया था। इतनाही नहीं अंग्रेज वणिक् संघने पेशवा और गायकवाड़का मूलोच्छेद करनेके विचारसे इस नीतिका अनुकरण किया।

हमने पूर्वकी पंक्तियोंमें पेशवाको गायकवाड़की शक्तिका नाश संपादन करनेके लिए गृह कलहको हस्तगत करनेवाला बतलाया है। अतः उसका विशेष दिग्दर्शन कराते हैं। इधर गुजरातमें दामाजी गायकवाड़की मृत्यु पाटनमें हुई। और उसके पुत्र सयाजी, गोविन्द, रामराव उर्फ मल्हारराव मानाजीराव और फतेहसिंहरावके मध्य उत्तराधिकारका विवाद उपस्थित हुआ। पेशवा इस अवसरकी प्रतीक्षामें बैठे थे। गोविन्दराव अपने पिताकी मृत्यु समय पूनामें था। उसने पेशवाको बहुत बड़ी भेट देकर अपनेको दामाजीका उत्तराधिकारी स्वीकार करा लिया। परन्तु फतेहसिंह सयाजीको गद्दी पर बैठा उसका अभिभावक बना। अतः कुछ दिनों बाद पेशवाने गोविन्दरावके पूर्वदत्त अधिकारको अस्वीकार कर, सयाजीरावको उत्तराधिकारी और फतेसिंहरावको उसका प्रतिनिधि स्वीकार कर गायकवाड़ वंशके गृह कलहको प्रचण्ड रूप धारण करनेका अवसर प्रदान किया।

गोविन्दराव गायकवाड़ और फतेसिंहके विद्रोहको प्रचण्ड रूप धारण करनेवाला हम बता चुके हैं। उक्त विग्रहमें फतेसिंह अपनेको गोविन्दरावका सामना करनेमें असमर्थ पा "ब्रिटिश वणिक सघ" के शरण विक्रम संवत् १८२८ में गया परन्तु उन्होंने उसकी प्रार्थनापर विशेष ध्यान नहीं दिया। परन्तु कुछ दिनों बाद ब्रिटिश वणिक संघ और फतेसिंहके मध्य "आक्रमण और प्रत्याक्रमण में परस्पर सहयोगात्मक" सन्धि स्थापित हुई। उक्त संधिब्रिटिश जातिके गुजरातमें आधिपत्यका मार्ग

खोलनेवाली तथा गायकवाड़ आदिकी पराधीनताकी सूचिका थी। कथित सन्धिके अनुसार जब गायकवाड़ और भरुचके नवाबके मध्य विग्रह उपस्थित हुआ तो अंग्रेजोंने आक्रमण कर भरूच छीन गायकवाड़को दे दिया।

उधर पूनामेंभी गृह कलहने प्रवेश किया। नारायणराव मारा गया। माधवराव पेशवाके चचा रघुनाथरावने अपने दत्तक पुत्र अमृतरावको पुरंदरेके साथ सतारा पेशवा पद प्राप्त करनेके लिए भेजा। परंतु विक्रम १८६० में मृत पेशवा नारायणरावके नवजात पुत्रको, सखाराम बापू और नानाराव फडनवीसके प्रतिनिधित्व करने पर, राजारामने पेशवा पद प्रदान किया और उसका अभिभावक माधवराव नीलकंठ पुरंदरेको बनाया।

गोविंदरावने, नारायणराव पेशवाकी मृत्यु पश्चात जब पूनाके राजनैतिक दृष्टिकोणमें अन्तर पड़ा तो, पुन: अपने उत्तराधिकारका प्रश्न उपस्थित किया। परंतु फतेहसिंह पेशवाकी आधीनता स्वीकार करनेके साथ बाकी पड़ा हुआ चौथ आदि देकर अपनी राज्यलिप्साको संतुष्ट करनेमें समर्थ रहा। परन्तु कुछ दिनोंके बाद फतेहसिंहने ब्रिटिश वणिक संघके साथ दूसरी संधि की। इस सन्धिका उद्देश ब्राह्मण सत्ताका नाश करना था। इसके उपलक्षमें ब्रिटिश वणिक संघ ने गायकवाड़को स्वतंत्र नरेश स्वीकार किया। "ब्रिटिश वणिक संघ" ने फतेसिंहको उस प्रकार स्वतंत्र अधिपति स्वीकार किया उसका कारण पेशवाके साथ वाला विग्रह था। कथित पेशवा ब्रिटिश विग्रह लगभग चार वर्ष चला १८६३ में एक प्रकारसे स्थगित हुआ था। इसी विग्रहका फल था कि वणिक संघने फतेसिंहको स्वतंत्र अधिपति स्वीकार किया। क्योंकि वैसा करनेमें उनको अपना लाभ था। परन्तु दो वर्ष पश्चात १८३८ में जब ब्रिटिश वणिक संघकी सफलताका सूर्योदय हो रहा था तो पूर्व कथित संधिकी शर्ते बदल कर गवरनर जनरलने मुम्बईके गवरनरके मार्फत फतेहसिंहके पास भेजा। इसकी शर्तें उसके स्वार्थके प्रतिकूल थीं। और वह पूर्व वत पेशवाका माण्डलिक बना दिया गया। यदि कुछ उसे लाभ हुआ तो वह इतनाही था कि उसकी बाकी कर नहीं देना पड़ा। और पेशवाकी सत्ता गुजरातमें ज्यों की त्यों बनी रही।

इस घटनाके सात वर्ष बाद विक्रम १८४५ में फतेहसिंहराव मरा और पेशवाने मानोजीरावको सयाजीका अभिभावक स्वीकार किया। परन्तु माधवराव सिन्धिया जो इस

समय प्रबल हो चुका था गोविंदरावका सहायक बन गया। इस पर मानोजीराव ब्रिटिश वणिक संघके दरवाजे विक्रम १८३६ वाली फतेहसिंह कृत सन्धिकी दुहाई देता हुआ पहुंचा। परन्तु वाणिक संघने विक्रम १८३८ वाली सालवाई नामक सन्धिकी आड़ लेकर सहाय देनेसे इनकार किया। परन्त १८४१ विक्रममें सयाजीराव और मानोजीराव दोनोंकी मृत्यु हुई। अतः गोविंदरावके अधिकारका अपने आप मार्ग प्रशस्त हुआ। और वह विना किसी विघ्न बाधाके गद्दीपर बैठा।

इस घटनाके थोड़े दिन पूर्व सताराके राजा शाहु द्वितीयन पेशवाको वकील उल मुल्क बनाया था। अतः पेशवाका बल अधिक बढ़ गया। इधर गोविंदराव गायकवाड़ पेशवासे असंतुष्ट था। साथही पेशवा और सिन्धियाके मध्यभी दुर्भावना थी। अतः सिन्धियाकी सहायकी आशासे गोविंदरावने पेशवाके साथ सद्भावना नहीं रखी। इसी समय पेशवाने स्वाधीन गुजरात प्रदेशकी माल गुजारी वसूल करनेके लिये आपा सेरुलकरको भेजा। वह गोविंदराव गायकवाड़के आधीन गांवोंकी प्रजाकोभी तङ्ग करने लगा। यहां तक कि अहमदाबादका गायकवाड़ भवनभी उसने स्वाधीन कर लिया। अतः पेशवा और गायकवाड़के बीच युद्धकी संभावना उपस्थित हुई। ब्रिटिश वणिक संघ बीचमें कूदकर बीच बचाव करने लगा। इतनेहीमें विक्रम १८४६ में नवाब सूरतकी मृत्यु हुई। और वणिक संघने नवाबके प्रदेशको स्वाधीन किया। ब्रिटिश वणिक संघके शासक मिस्टर डन्कन सूरत आये। गोविंदरावने अपना दूत मिस्टर डन्कनके पास भेजा और आपा सेरुलकरके विरुद्ध सहाय मांगा। एवं अपने दूत द्वारा प्रगट किया कि यद्यपि पेशवाका सूबा चिमाजी आपा है परन्तु वास्तवमें शासक आपा सेरुलकर है। यदि ब्रिटिश वणिक संघ उसकी सहायता करे तो वह चोरासी प्रदेश संघको दे सकता है। परन्तु डन्कन महोदयने इस पर कुछभी ध्यान नहीं दिया अन्तमें सेरुलकर और गोविंदरावके मध्य युद्ध हुआ। और सेरुलकर बन्दी बनाया गया। परन्तु गोविंदरावकी मृत्यु हुई। और उसकी झाली राणी (लखतरके झाला ठाकोरकी बेटी) सती हो गई।

गोविंदका उत्तराधिकारी आनन्दराव हुआ। परन्तु उसे सुख शान्तिके स्थानमें कांटोंका ताज मिला क्योंकि गोविंदरावके अनौरस पुत्र कानोजीरावने उत्पात मचाया। और आनन्दरावको बन्दी बनाया। एवं प्रजा तथा मंत्री मण्डलको सताने लगा। कोनाजीके प्रतिकूल

साधारणने अवाज उठाई। और वह पकड़कर आनन्दरावके सामने लाया गया। आनन्दरावने उसे एक किलामें बन्द रखा। इस घटना के थोड़े दिनों बाद कड़ीके सूबा मल्हाररावने विद्रोह किया। परन्तु आनन्दरावने उसके साथ सन्धि कर ली। उक्त संधिके अनुसार उसकी कड़ीकी जागीर निश्चित हो गई। इस संधिको थोड़े दिनों बाद मल्हाररावने तोड़ दिया और दोनोंके मध्य युद्ध छिड़ गया। इस विग्रहमें आनन्दरावकी बहिन और कुछ सेनापति तथा कान्होजी आदि मल्हारराव के साथ थे। बागियोंने अंग्रेजोंसे सहायकी प्रार्थना की और सहायताके उपलक्षमें सूरतकी चौथ और चौरासी परगना देनेका वादा किया। आनन्दराव भी अंग्रेजोंसे सहायकी प्रार्थना कर रहा था। अन्तमें अंग्रेजोंने आनन्दरावको सहाय देना स्वीकार किया। और उनके इस सहाय प्रदानका कारण यह था कि उन्हें शंका थी कि यदि वे सहाय न देंगे तो कदाचित सिन्धिया आनन्दरावकी मददमें आ जावेगा। अतः अंग्रेजोंने मेजर वॉकरकी अध्यक्षतामें फौज भेजी। और वे बरोदा नगरमें प्रवेश किये। अन्तमें आनन्दरावने विक्रम १८५८ में सन्धि की जिसके अनन्तर वाकरको सूरत और चोरासी की चौथ आदि वसूल करनेका अधिकार मिला। मेजर वॉकरने आनन्दरावकी खूब मदद की। आनन्दरावने अंग्रेजोंके साथ दूसरी सन्धि विक्रम १८६१ में की। जिसके अनुसार अंग्रेजोंको ११७०००० वार्षिक आयकी भूमि आनन्दरावसे मिली। अन्तमें विक्रम १८७१ में पेशवा और गायकवाड़का संबंध विच्छेद हुआ। और विक्रम १८७३ की सन्धिकेअनुसार पेशवाका आधिपत्य अधिकार अंग्रेजोंको मिला और बरोदा अंग्रेजोंका आधीन माण्डलिक बना।

लाट गुजरातमें अंग्रेज।

हमारे विवेचनीय इतिहास और देशके साथ अंग्रेज जातिका संबंध ओतप्रोत हो रहा है। इतनाही नहीं हमारे उत्तर कालके इतिहास कालमें तो अंग्रेज जाति सार्वभौम पद प्राप्त किये है। हम अपने उत्तर कालके इतिहास विवेचनमें अनेक बार अंग्रेजोंका उल्लेख कर चुके हैं। अतः अंग्रेज जातिके उत्कर्ष और सार्वभौम सत्ता विकासका विवेचन करते हैं। अंग्रेज जातिके देशका नाम "ग्रेट ब्रिटेन" वृहत ब्रिटेन हैं। और उसका अवस्थान यूरोप महाद्वीप के पश्चिम समुद्रके मध्य अवस्थित है। ग्रेट ब्रिटनका आकार प्रकार हमारे देशक एक छोटेसे प्रदेशके समान और जन संख्या भी उसी प्रकार नगण्य है। क्योंकि हमारे देशकी जन संख्या उससे लगभग

आठ गुनी अधिक है। परन्तु ब्रिटन निवासी हमारेही अधिराजा नहीं वरन संसारके सबसे बड़े साम्राज्यके भोक्ता हैं। उनके राज्यमें संसारका सबसे अधिक भूभाग है। यहां तक कि अंग्रेजोंके साम्राज्यमें कभी भी सूर्यास्त नहीं होता। हमारे देश और अंग्रेजोंके देशका अन्तर ५००० मीलसे भी अधिक है। ब्रिटन और भारतके मध्य आवागमनका जल और स्थल दो पथ हैं। और अब तो आकाश पथभी खुल गया है। परन्तु आवागमनका सुगम मार्ग जल पथही है। अंग्रेजोंने भारतमें जल पथसे प्रवेश किया था। उन्होंने हमारे देशमें विजेताके रूपसे नहीं वरन व्यापारी रूपमें प्रवेश किया था। और क्रमशः अपने अध्यवसाय और कौशल, जिसका नामान्तर राजनैतिक पटुता, के बलसे समस्त देशको अधिकृत कर लिया है। एवं अपनी राजनीतिज्ञता तथा वैज्ञानिक बलके सहारेसे इस विशाल देशको कौन बतावे संसारके १-६ भाग पर और १-५ जनतापर शासन करती है। सच्ची बात तो यह है कि आज संसारमें अंग्रेज जातिकी नीतिज्ञता अपना प्रतिद्वन्दी नहीं रखती। यदि शर्मन्य देशाभिजात और गोकर्ण विश्वविद्यालयके अद्वितीय विद्वान अध्यापक मोक्ष मूलरके "हिन्द हमे क्या सिखा सकता है" के वाक्य यदि हमसे पूछा जाय, "संसारमें किस स्थानके मनुष्योंने सर्व प्रथम ईश्वरी ज्ञान प्राप्त किया था और सर्व श्रेष्ठ है तो हम हिन्दुस्तानको बतावेंगे" को यदि हम इस प्रकार परिवर्तित कर लेवें "यदि हमसे पूछा जाय कि संसारमें कौन जाति सबसे अधिक नीति विद्या और परं कौशला है और जिसका प्रत्येक राज्यनैतिज्ञ व्यक्ति परं प्रवीण है तो हम अंग्रेज जाति और और अंग्रेज राजनैतिकोंको बतावेंगे"। तो हमारे इस कथनमें न तो अत्युक्ति होगी और न मिथ्यात्वका समावेश होगा। खैर अब हम विषयान्तरको छोड़ सीधे मार्गपर आते हैं।

भारतका व्यापारिक तथा आक्रमण प्रत्याक्रमणात्मक संबंध मध्य एसिया और यूरोप खण्डके साथ बहुत प्राचीन है। परन्तु इस अधिक पुराकाल के संबंध विवेचनके झमेलेमें न पड़कर अपने इतिहासके उत्तरकालसे संबंध रखनेवाली अवधिका विचार करते हैं। प्राचीनकालके समानही भारत और यूरोप खण्डका आवागमन मार्गसे चलता था।

१) जल-स्थल मार्गसे होनेवाला व्यापार प्रथम नौकाओं द्वारा अरब समुद्र होकर एलेक्जेन्ड्रीआ पहुँचता था। और यहांसे वेनिस और जिनेवा इत्यादि इटलीके बन्दरोंसे यूरोप खण्डमें प्रवेश करता था।

२) स्थल मार्ग दो भागोंमें बटा था।

अ) कन्दहार ईरान—भारतसे चलकर कन्दहार, ईरान, लघु एशीआ और पेलिस्टाइन

आ) और कन्दहार काबुल—भारतसे चलकर कन्दहार, काबुल, बलख, समरकन्द और केस्पिअन समुद्र पार कर यह मार्ग पुनः स्तम्बुल और वल्गा नदी मार्गसे जर्मनी होकर दो भागोंमें बट जाता था।

प्रथम यह व्यापार मूर जातिके हाथमें इस्वी सन १४५३ पर्यन्त था। परन्तु उसी वर्ष तूर्कोंने स्तम्बुल और कोन्स्टेन्टिनोपोल विजय किया और यह व्यापार मार्ग बन्द हुआ। अतः यूरोप निवासिओंको भारतके साथ व्यापार मार्ग अनुसन्धानकी चिन्ता हुई। इस समय यूरोप खण्डमें पोर्चुगीजोंका सौभाग्य सूर्य चमक रहा था। और वे परं साहसिक तथा पटु नाविक थे। अतः वे सर्व प्रथम मार्ग अनुसन्धानमें प्रवृत्त हुए। इस्वी सन १४६२ में कोलम्बस भारतका मार्ग अनुसन्धान करनेको चला परन्तु अमेरिका चला गया। किन्तु सन १४६८ में वास्को डिगामा भारत पहुँचनेमें समर्थ हुआ और भारत वसुन्धराके कालीकट नामक स्थानमें उतरा। और स्थानीय राजा जमोरिनसे साक्षात किया। जमोरिन उसके अनुकूल पड़ा परन्तु अरबोंने उसका विरोध किया। अतः दूसरे वर्ष १४६६ में लिस्बन लौट गया। इसके अनन्तर इस्वी सन १५०७ में काब्रल केलिकट आया और व्यापारिक कोठी खोल कर बैठ गया। एवं १५०९ में वास्को डीगामा पुनः केलिकट आया उस समय उसे जमोरिन के साथ युद्ध करना पड़ा। परन्तु कोचीन और कनानोरके साथ अनुकूलता हुई। इसी अवधिमें पोर्चुगल नरेशने ६ पटु व्यक्तियोंका आर्मडा नियुक्त कर भारत भेजा। और वे यहां आकर केवल व्यापारमेंही प्रवृत्त नहीं हुए परन्तु व्यापारिक लाभकी दृष्टिसे दुर्ग आदि बना लड़ने झगड़नेभी लगे। अलबेकर्क अरमडाके पश्चात भारत आया और १५१० में गोआ पर अधिकार जमाया। १५१२ में बीजापूरकी सेनाने गोआ पर आक्रमण किया परन्तु हटाई गई। अलबेकर्क १५१० में मरा। अनन्तर इन्होंने १५४५ पर्यन्त दक्षिण भारतमें समुद्र मार्गसे गुजरातमें आकर दिव और खम्भात आदि स्थानोंको अधिकृत किया। एवं सन १५६४ पर्यन्त भारतके विविध स्थानोंमें व्यापारिक केन्द्र बनाया तथा लंका आदि अनेक द्वीपोंको विजय किया परन्तु इनका सौभाग्य अस्ताचलोन्मुख हुआ। इन्हें पराभूत करनेवाले अंग्रेज और डच भारतीय

व्यापारिक रंग मञ्चपर उपस्थित हो उनके हाथसे व्यापारके साथही उनके अधिकृत भूभागको हड़प गये।

तिथि क्रमके अनुसार यद्यपि अंग्रेज वणिक संघका स्थान प्रथम है और उनके संघ स्थापन तथा भारत आगमन पर विचार करना उचित प्रतीत होता है तथापि डच–डेन और फ्रेन्चोंका विचार क्रमशः प्रथम करते हैं। क्योंकि उनका संबंध क्षणिक और हमारे ऐतिहासिक कालके लिये कुछभी महत्व नहीं रखता।

अंग्रेजोंके अनुकरणमें डचोंने "संयुक्त डच वणिक संघ" स्थापित किया और भारतमें व्यापार करनेके लिये चल पड़े। और अपने चिर शत्रु पोर्चुगीजोंके स्थानको हस्तगत करने लगे। एकके बाद दूसरा पोर्चुगल प्रदेश उनके अधिकारमें आने लगा। इन्होंने १६४१ में लटेवियाको केन्द्र बनाया और लंकाको विजय किया। और भारत वर्षके कालीकट नामक स्थानमें उतरे। वहांसे चलकर नेगापटन, चिनसुरा, सूरत, भरूच और कोचीनमें व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। परन्तु अंग्रेजोंने इन्हेंभी अन्तमें मार भगाया।

डेनोंने सन १६१६ में वणिक संघ स्थापित किया और सिरामपूर आदि स्थानोंमें व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। इनकोभी अंग्रेजोंने निकाल बाहर किया। सबके अन्तमें फ्रेन्च जाति व्यापारिक मञ्चपर उपस्थित हुई। यों तो फ्रेन्चोंका व्यापार ईसवी सनके सत्तरहवीं सदीके प्रारम्भसेही चल पड़ा था। परन्तु ईसवी सन १६६४ में फ्रेन्च वणिक संघकी स्थापना हुई और उसका प्रथम नायक कालबर्ट हुआ। फ्रेन्चोंने भारत वसुन्धराके मुसलिपट्टम नामक स्थानमें। अपना व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। किन्तु डचोंने वहांसे उन्हें निकाल बाहर किया। तब उन्होंने मार्टिनके नायकत्वमें सन १६७४ में पान्डिचेरी बसाया। बंगालमें जाकर चंद्रनगरमें डेरा जमाया। और बंगालकी खाड़ीसे निकल कर अरब समुद्रके पश्चिम तटवर्ती भूभाग पर दृष्टिपात किया। एवं लाटके परं प्रसिद्ध भरूच और सूरत नामक नगरोंमें अपना व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। वास्तवमें यदि देखा जायतो अंग्रेजोंका सच्चा प्रतिद्वन्द्वी कोई वसुन्धरा पर हुआ है तो वह फ्रेन्च जाति है।

इंगलेन्डकी गद्दी पर नवीन एलिजाबेथ सन १५५८ में बैठी। और उसका राज्य सन १६०३ पर्यंत ४५ वप रहा। इसके इस लम्बे राज्यकालमें अंग्रेज जातिकी सर्व मुखीन उन्नति हु

फ्रेंच, फ्लेण्डर्स और नेदरलेण्ड की हजारों प्रजा स्पेनके राजा फिलिप के अत्याचार से पीड़ित हो इंगलेण्ड में आकर बस गई। ४००० फ्लेण्डर्स वाले इंगलेण्ड के नोर्विच में बसे और वह शीघ्र ही ऊनी वस्त्र का केन्द्र बना। सैकड़ों फ्रान्सीसी रेशमी बिनने वाले जुलाहे खास लण्डन में बसे और रेशम का व्यवसाय चल पड़ा। इन विदेशियों के व्यवसायके फलस्वरूप वस्त्र व्यवसाय समुद्र समान बढ़ा। योर्कशायर और लेन्केसायर केन्द्र बन गया। अंग्रेज नौकायें व्यवसायिक पदार्थ लेकर भूमध्यसागर और अन्यान्य स्थानों में आने जाने लगीं। अंग्रेज नाविक दूर देशों में प्रवास करने के लिये लालायित होने लगे। होपकिन इंगलेण्ड से चल कर गायेना पहुँचा और कुछ दिनों वहां निवास कर छल बल से ३०० निग्रो गुलामों को पकड़ा। ड्रेक प्रथम अंग्रेज नाविक है जिसने जलमार्ग से संसार भ्रमण किया। वह प्रथम पांच नौकाओं को लेकर स्पेनियार्ड नौकाओंको लूटने के लिये दक्षिण समुद्र में घुसा। परन्तु चार नौकाएं बिछुड़ गईं। तथापि उसने हिम्मत नहीं छोड़ी और स्पेनियार्ड नौकाओं को लूट कर बहुतसा सोना और चांदी प्राप्त किया। किन्तु घर आते उसे डर लगा कि कहीं बड़ी प्रबल स्पेनियार्ड नौकाओंसे भेंट न हो जाय। अतः वह प्रशान्त महासागर के बीच घुस गया। और पूर्व हिन्द को पीछे छोड़ता हुआ हिन्द सागर और केप ओफ गुड होप से होकर तीन वर्ष में घर पहुंचा। रानी इलिजाबेथ ने उसका पूर्ण सत्कार कर एक तलवार के साथ नाइट की उपाधि प्रदान की। जिल्बर्ट और रेलिंग नामक दो वैमात्रिक बन्धुओं ने अमेरिका में जाकर न्यु फोकलेण्ड और विर्जिनिया नामक दो उपनिवेश बसाये।

स्पेन नरेश फिलिप इंगलेण्ड से असन्तुष्ट था। उसने 'इन्वीन्सीबल आर्मेडा' नामक नौका संघको जिसमें १२० नावें थीं और जिसमें २०००० सिपाही और ८००० नाविक थे—को इंगलेण्डपर आक्रमण करनेके लिये भेजा। परन्तु उक्त नौका संघको पूर्ण रूपेण अंग्रेजोंने नष्ट कर दिया और साथ ही स्पेनके दक्षिण तटपर आक्रमण कर कार्डि नगरको हस्तगत किया इसके बाद ११ दिसम्बर सन १५९९ को अंग्रेज वणिकोंका "ब्रिटिश ईस्ट इंडिया" नामक संघ भारतसे व्यापार करनेके लिये बनाया गया। और भारतके साथ व्यापारीक संघर्षका प्रारम्भ हुआ। जब अंग्रेज भारतके प्रति अग्रसर हुए तो पोर्चुगिज और डच उनके विरोधमें खड़े हुए। क्यों कि उस समय वही दोनों समुद्रको अपने आधीन मानते थे।

यहां तक कि पोर्चुगीजोंको पोप महाशय नवीन दुनिया अमेरिका आदिका न्याय संगत स्वामी घोषित कर चुके थे। परन्तु अंग्रेजोंके भाग्य के बाल रविका उदय हो चुका था। उसकी कीरणें शीघ्रतासे विकसित हो रहीं थीं। वे सन १५८८ में स्पेनियाई "इन्वीन्सिबल आर्मेडा" का नाश कर चुके थे। अंग्रेज नाविक अमेरिका में पहुंच चुके थे संसारकी परिक्रमा कर चुके थे। अतः इन दोनों जातियोंके विरोध जन्य हानि रूप बाधासे और भी उत्साहित हो गये। एवं सन १६११ में बंगालकी खाड़ीके पश्चिम तटवर्ती मछली पट्टममें केन्द्र स्थापित किया। दूसरे वर्ष सन १६१२ में अरब समुद्रके पश्चिम तटवर्ती लाट वसुन्धरा के सूरत नगरमें कोठी खोली। और सावली नामक स्थानमें पोर्चुगीजोंका मान मर्दन किया। और अपना आतंक अन्यान्य नाविकों तथा देशियों पर जमाया। अंग्रेज वणिकोंका मार्ग प्रशस्त करनेके विचारसे तत्कालीन इंगलेण्ड नरेश जेम्स प्रथमने सन १६१५ में भारत सम्राट जहांगीरकी सेवा में अपने दूत सर थोमस रो को भेजा। वह इंगलेण्डसे चल कर सूरत उतरा और वहांसे बुरहानपुर होता हुआ सन १६१६ की जनवरी में बादशाहकी सेवामें अजमेर नगरमें उपस्थित हुआ। और बादशाहके लश्करके साथ मांडु, बुरहानपुर और अहमदाबाद आदि स्थानों में लगभग दो वर्ष पर्यन्त फिरता रहा। परन्तु जो व्यापारिक सुगमता इंगलेण्ड नरेशने मांगी थी उसको असंगत और अनुचित बताकर बादशाहने अस्वीकार कर दिया। तब वह सन १६१८ मे सूरत वापस आ गया। और सन १६१९ स्वदेश लौट गया। परन्तु अंग्रेज हतोत्साह नहीं हुए। लड़ते झगड़ते अपने प्रति द्वन्दियों डच आदिसे उनके अधिकृत भूभागको छीनते झपटते अपना व्यापार चालू रक्खा। सन १६२५ में बंगालमें प्रवेश कर अर्मागावमें केन्द्र स्थापित किया। सन १६३९ में फ्रान्सीसी डे ने चन्द्रगिरीके राजासे वर्तमान मद्रास नगर और सेन्ट ज्योर्ज दुर्गका पट्टा प्राप्त किया। सन १६५० में बंगालके मुगल सूबेदारसे बंगालमें व्यापार करनेका परवाना प्राप्त कर हुगली और कासीम बजारमें केन्द्र स्थापित किया।

इंगलेण्ड नरेश चार्ल्स प्रथम सन १६६० में गद्दीपर बैठा और सन १६६१ में पोर-चुगल राज्य कुमारी केथेराइनसे विवाह किया। दहेज में उसे वर्तमान बम्बई द्वीप मिला। इस घटनाके चार वर्ष बाद सन १६६४ में महाराजा शिवाजीने सूरत नगरको लूटा। उस समय सूरत नगरमें अंग्रेज, फ्रेंच, डच आदि अन्यान्य यूरोपिअनोंका व्यापारी केन्द्र था। परन्तु

शिवाजीके आक्रमण समय केवल अंग्रेज और डचोंने नगरकी रक्षाके लिये अपना हाथ उठाया। उसके पांच वर्ष पश्चात इंगलेण्ड नरेश चार्ल्स प्रथमने दहेजमें मिला हुआ वर्तमान मुम्बई अंग्रेज बणिकसंघको सन १६६६ में दश पाउण्ड वार्षिक देनेके शर्तपर दे दिया। अंग्रेज बणिक संघको अपने राजासे वर्तमान मुम्बई मिलने पश्चात् दूसरे वर्ष शिवाजीने पुनः सूरतपर आक्रमण कर तीन दिवस पर्यन्त लूटा। उससे सूरतका व्यापार सदाके लिये नष्ट हो गया। सन १६८६ में अंग्रेजोंका मुठभेड़ मुगल बादशाह औरंगजेबके साथ हुआ। सन १६९० में चार्नाकके हुगली किनारेके गोविंदपुर, सुतानटी और कालीघाट नामक तीन ग्राम ११०० रुपियामें खरीद कर वर्तमान कलकत्ता नगरका सूत्रपात किया एवं कलकत्तका प्रसिद्ध दुर्ग फोर्ट विलियमका निर्माण किया और इसी वर्ष लाट प्रदेशके सूरत नगरसे अंग्रेज बणिक संघने हटकर अपना केन्द्र मुम्बईको बनाया। इस प्रकार ब्रिटिश संघका भारतमें मुम्बई, मद्रास और कलकत्ता प्रधान स्थान हुआ।

सूक्ष्म रूपसे ब्रिटिश वणिक जातिका उत्कर्ष और ब्रिटिश वणिक संघके जन्म तथा विकासका परिचय देने पश्चात हम केवल अपने विवेचनको लाट देशके साथ संबंध रखनेवाली परिस्थितिके साथ ही परिमित करेंगे। क्योंकि अन्यान्य बातोंसे हमारा संबंध नही हैं। लाट देशके साथ मुम्बई वाली वणिक संघकी शाखाका संबंध है। इस शाखाने मुम्बईको केन्द्र बना अपना व्यापार प्रचलित रखा। परन्तु देशकी राज्यनैतिक हलचलसे अपनेको पूर्ण रूपेण अक्षुण्ण रखा। परन्तु सन १७७२ में वणिक संघने लाटको राज्यनैतिक हलचलमें भाग लिया। दामाजी गायकवाड़ की मृत्यु पश्चात उत्तराधिकार लिये जब उसके पुत्रोंमें विवाद उपस्थित हुआतो उसके पुत्र फतेहसिंहने संघसे सहाय माँगा और उसने उसके साथ आक्रमण प्रत्याकरणमें परस्पर सहयोगात्मक संधि की और उसके अनुसार भरूचके नवाबसे भरूच छीन उसे दे दिया। पर भरूच इलाकेका आधा भाग अपने पास रखा। इसके अनन्तर संघ देशके राज्यनैतिक मंच पर खेलने लगा।

इसी वर्ष १७७२ में पेशवा माधवरावकी मृत्यु पश्चात उसका छोटाभाई पेशवा बना परन्तु थोड़े दिनों बाद १७७३ में उसे सिपाहियोंने विद्रोह कर राघोबा (रघुनाथराव) के सामनेही उसे मार डाला। अनन्तर राघोबा पेशवा बन बैठा। परन्तु तीन महीना बाद नारायणरावकी स्त्री नेपुत्र प्रसव किया। वह जब ४० दिनका हुआ तो राजारामने उसे पेशवा बनाया। इसपर

रघुनाथरावने विद्रोह किया परन्तु १७७४ के मार्चमें हार कर उत्तर हिन्दुस्तानमें गया। किन्तु किसी स्थानमें आश्रय न मिलनेसे सूरतमें आकर अंग्रेज वणिक संघसे प्रार्थना की। संघने निम्न शर्तोंपर सहाय देना स्वीकार किया।

१–संघ रघुनाथरावको पेशवापद प्राप्त करनेमें सैनिक सहाय प्रदान करेगा।

२–संघके सैनिक सहाय प्रदानके उपलक्षमें रघुनाथराव पेशवापद प्राप्त करनेके अनन्तरः–

अ) संघको सूरत और भरूचके आसपास २२५००० वार्षिक आयवाला भूभाग देगा।

आ) एवं सेनाका कुल व्यय रघुनाथरावको देना होगा।

इस संधिका नाम सूरत संधि पड़ा और संघने इसके अनुसार एक सेना देकर रघुनाथरावको पूना भेजा और दूसरी सेना कर्नल कैटिंगकी अध्यक्षतामें गुजरातमें रवाना की। कर्नल कैटिंगकी सेनाने गुजरात जाकर अड़ास नामक स्थानमें पेशवाकी सेनाको हराया। परन्तु रघुनाथरावके साथ जानेवाली सेनाको मरहटोंके सामने मुहकी खानी पड़ी। संघकी सेनाको मरहटोंसे पिटते देख कर कलकत्ताके प्रधानने रघुनाथरावके साथ सन १७७५ की सूरतवाली संधिको अन्यायपूर्ण बताकर अस्वीकार किया। पेशवासे दूसरी संधि स्थापित करनेके लिये मेजर आप्टनको इस वर्षके अन्तमें पूना भेजा। मिस्टर आप्टनने सन १७७६ के मार्चमें निम्न शर्तके साथ संधि की। जो पुरन्दरकी संधिके नामसे अभिहित हुई।

१–संघ राघोबा (रघुनाथराव) को नाना फडनवीसके सुपुर्द करेगा।

२–संघ संधिकी शर्त पूरी करेगा इसको विश्वास दिलानेके लिये अपने दो कर्मचारियोंको प्रतिभूरूपमें पूना भेजेगा।

३–भरूचके पासवाला भूभाग सिन्धियाको सौंप देगा

४–भविष्यमें संघ रघुनाथरावसे कुछ भी सम्बन्ध न रखेगा।

५–रघुनाथरावको ३००००० वार्षिक मिलेगा। और उसे कोपरगांवमें रहना होगा।

६–संघ पेशवाकी सत्ता स्वीकारेगा।

बलिहारी अलौकिक न्याय परायणताकी ? खैर थोड़े दिनोंके बाद संघने पुरन्दरकी इस संधिको तोड़ दिया। उनके तोड़नेका कारण यह था कि बोर्ड ओफ डायरेक्टरकी दृष्टिमें राघोबा कृत सूरत वाली संधि न्यायोचित ठहरती थी। और उसने उसके पालनका आदेश किया। अतः सन १७७८ में संघने राघोबाके साथ दूसरी संधि की और उनका मरहटोंके साथ प्रत्यक्ष विग्रह प्रारंभ हुआ। इसी अवसरमें संघके नेता हेस्टींग्सने कूटनीतिसे काम लिया। माधोजी भोंसलेसे गुप्त संधि कर युद्धमें प्रवृत्त होने से उसे पृथक रखा। जनरल गोडार्ड भोपालके नवाबसे मैत्रीकर गुजरातमें घुसा। कर्नल योकाम सिंधियाके शत्रु गोहद्के राजासे मैत्री स्थापित कर सिंधियासे भिड़ गया। और सन १७८१ में फतेसिंह गायकवाड़से मैत्री की जिसकीशर्तें (१) गायकवाड़ पेशवासे स्वतंत्र माना जायगा (२) अंग्रेज गायकवाड़की सहायता ३००० फौजसे करेंगे (३) समस्त गुजरात प्रदेश अंग्रेज और गायकवाड़ आपसमें बाट लेंगे। बादको दोनोंने डभोई और अहमदाबादको हस्तगत किया। अन्तमें महाराष्ट्रमें घुसा परन्तु आगे नहीं बढ़ सका। किन्तु मुम्बईकी सेनाने पानवेल, कल्याण, मुम्बई आदि विजय किया। तथापि संघको हैदरअलीके साथ वाले युद्धके कारण सन १७८२ मे सलबाईकी निम्न शर्तवाली संधि करनी पड़ी।

१—सिंधियाके कुल किला आदि संघ वापस करेगा।

२—भरूच सिंधियाको समर्पण करेगा।

३—संघको शष्टि द्वीपादि मिलेगा।

४—रघुनाथरावको २५००० मासिक वृत्ति मिलेगी। परन्तु पेशवापदकी प्राप्तिपर दृष्टिपात न करेगा।

५—संघ अहमदाबाद प्रदेश फतेसिंहराव गयकवाड़को समर्पण करेगा।

६—संघ सवाई माधवरावको पेशवा स्वीकार करेगा।

७—पेशवा अंग्रेज संघके अतिरिक्त अन्य यूरोपियन व्यापारियोंको सुगमता नहीं देगा।

८—संघ रघुनाथरावको कभी भी भविष्यमें आश्रय नहीं देगा। और पेशवाके अन्तर प्रबन्ध और अन्यान्य बातोंमें हस्तक्षेप नहीं करेगा।

परन्तु सन १७६५ में सवाई माधवरावकी मृत्यु हुई और पेशवा पदका विवाद उठा तो अंग्रेजोंने कथित सन्धिकी शर्तोंकी उपेक्षा कर हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया। क्योंकि उन्हें उपयुक्त अवसर मिला। इस समय पेशवा पदका अभिलाषी राघोबाका पुत्र बाजीराव था। दौलतराव सिंधियाने उसको कैद कर उसके भाई चिमनाजीरावको पेशवा बनाने चला। परन्तु नाना फडनवीसने दौलतरावका विरोध कर उसे बन्दीमुक्त किया। अतः वह पुनः सन १७६६ में पेशवा बना। पेशवा बनने बाद उसने सिंधियासे मिल कर नानाको बन्दी किया। नानाके बन्दी होने पश्चात् वह सिंधियाके विरुद्ध हुआ। अतः उसने नानाको छोड़ दिया। और वह सन १८०० में मर गया। नानाके मरनेके पश्चात बाजीराव अपने सरदारोंके साथ लड़ने झगड़ने लगा। उसके भाई विठोजीरावको मरवा डाला। दौलतराव सिंधियाको सर करनेके विचारसे उसके और जसवन्तराव होलकरके विवादमें घुसा परन्तु होलकरके विरुद्ध चलने लगा। उसकी जागीर जप्त की। उसके भतीजे खण्डेरावको कैद किया। अन्तमें दौलतरावको जसवन्तने सन १८०२ के अक्टोबरमें पूनामें हराया और राघोबाके दत्तक पुत्र अमृतरावके पुत्र भास्कररावको पेशवा बनाया। अतः बाजीराव अंग्रेज वणिक संघके शरण गया। और सन १८०२ के ३१ वीं दिसंबरको बसई नामक निम्न सन्धिपर हस्ताक्षर किया।

१—अंग्रेज वणिक संघ और बाजीराव एक दूसरेको आक्रमण प्रत्याक्रमण समय सहाय प्रदान करेंगे।

२—अंग्रेज बाजीरावको पेशवा पद प्राप्त करनेमें सहाय देंगे।

३—इसके उपलक्षमें बाजीराव अंग्रेजोंको २६००००० वार्षिक आयवाला प्रदेश देगा।

४—एक अंग्रेज सेना अपनी सेनामें रखेगा।

५—किसी अन्य युरोपियनको अपनी सेनामें नहीं रखेगा।

६—अपने राजनैतिक विवादको अंग्रेजोंकी मध्यस्थतासे निर्णय करावेगा।

७—इस निमित्त एक ब्रिटिश रेजिमेण्ट पूनामें रखेगा।

८—गुजरात आदि छोटे राज्योंसे स्वत्व उठा लेगा।

इस संधि पत्रके अनुसार एक अंग्रेज सेना पूनामें गई और सर आर्थर वेलेस्लीने तपाकेसे उसे पेशवा पदपर अधिष्ठित किया । एवं लाटका बाँसदा, सचीन, राज्यपीपला, मांडवी तथा कोकणका धर्मपुर और गुजरातके दूसरे राज्य पेशवाकी आधीनतासे मुक्त हो ब्रिटिश के नैतिक जुएमें जुड़े । पुनश्च इन राज्योंपर जो पेशवाका सार्वभौम अधिकार और तज्जन्य स्वत्व था वह अवान्तर रूपसे वणिक संघको मिला। बाजीरावको पेशवा बना उन्होंने सिंधिया और होल्करको अपने देशमें जानेके लिये संवाद दिया परन्तु इन दोनोंको कथित संधिके अनुसार महाराष्ट्र साम्राज्य और उसका अन्त प्रतीत हुआ अतः उन्होंने उसे नहीं माना । अतः सन १८०३ में अंग्रेजोंके साथ उनकी लड़ाई शुरू हुई। किन्तु इस समय अंग्रेजोंका भाग्य चमक रहा था। उन्होंने सबमें विजय प्राप्त किया। सप्टेम्बरमें लार्ड लेक अलीगढ़ हस्तगत कर दिल्ही गया । और सिंधियाकी सेनाको हराकर दिल्हीपर अधिकार किया और अन्ध मुगल बादशाह अंग्रेजोंका रक्षित बना । गंगा यमुनाके दोआबसे सिंधियाकी सत्ताका अन्त हुआ । इधर दक्षिणमें आर्थर वेलेस्लीने अहमदनगर अधिकृत किया अनन्तर सिंधिया और भोंसलेकी सेनाको हराकर असीरगढ़ और बुरहानपुर लिया । अन्ततोगत्वा कर्नल वुडिंग्टने भरूच छीन लिया । उधर भोंसलेकी सेनाका अकोलामें पूर्ण पराजय हुआ । इस प्रकार सिंधियाको अपने साथी भोंसलेके साथ अंग्रेजोंसे सन्धि करनी पड़ी। उन्होंनें दोनोंसे पृथक पृथक सन्धि की। १७ दिसम्बर सन १८०४ को भोंसलेके साथ सन्धि हुई। उसके अनुसार उसने बालेश्वर, कटक और गोदावरी तथा वर्धाके मध्यका भूभाग अंग्रेजोंको दिया। एवं सम्बलपुरके समीपवर्ती रजवाड़ों तथा निजामपरसे अपना स्वत्व उठा लिया और अंग्रेजोंका संरक्षित बना। तथा किसी युरोपियनको अपनी नोकरीमें नहीं रखना स्वीकार किया । इधर दौलतरावको भी अहमदनगर और अजण्टाके पासका मुल्क, भरूच और गंगा यमुनाके मध्यका मुल्क देना पड़ा। बादशाह आलम और जयपुर, जोधपुर और बुन्दीपरका स्वत्व छोड़ना पड़ा। अन्ततोगत्वा अंग्रेज संघका रक्षित राजा होना स्वीकार करना पड़ा। तब संघने उसे असीरगढ़, चम्पानेर और बुरहानपुर वापस दिया। इस लूटमें अहमदनगर पेशवाको, एजन्टादि भूभाग निजामको मिला।

संघने मरहठों, गायकवाड़ पेशवा, भोंसला और सिंधिया, की कमर तोड़ कर गंगा यमुना तटके दिल्ही आदि, बुन्देलखण्ड, गोंडवाना, ओड़ीसा, छोटा नागपूर, मालवा,

राजपूताना, गुजरात और काठियावाड़ में अपना आधिपत्य स्थापित कर लियाथा परन्तु मरहठा साम्राज्यका दीप टिम टिमाता था। संभव था कि उसे पुनः शक्ति संचय रूप तेल मिल जाय और वह पूर्ण शक्ति रूप ज्योति प्राप्त कर सके। यह आशंका होल्करके तरफसे थी। क्योंकि उसकी शक्ति अक्षुण्ण बनी थी। एवं वह कथित सिंधिया, भोंसले और वणिक संघके युद्ध समय चुप चाप बैठा था। यदि उसने अपने भाइयोंका साथ दिया होता तो कदाचित इस युद्धके परिणामका इतिहास भिन्न प्रकारसे लिखा गया होता। परन्तु खेदकी बात है कि उसका साथ देनेको कौन बतावे जब संघ सेना एक आध स्थानों पर विजयी हुई तो उसने संघके सेनापतिके पास सम्वाद भेजा कि वह सिंधियाके प्रतिकूल संघकी सहायता करेंगे यदि संघ उसे कुछ भूभाग देनेका वचन देवे। बलिहारी है स्वार्थान्धातकी! परन्तु संघको उसकी सहायताकी आवश्यकता न थी। अतः उसने उसकी उपेक्षा की। अनन्तर जसवंतरावने राजपूतानाके राजाओंको–जो संघके आधीन हो चुके थे–सताने लगा। अन्तमें सन १८०४ में संघके साथ जसवंतका विग्रह प्रारंभ हुआ। प्रथम जसवंत विजयी हुआ। कर्नल मासूनको युद्ध क्षेत्रमें अपना सारा सामान छोड़ भागना पड़ा। जसवंतराव दिल्ली तक मारता कूटता चला गया परन्तु अन्तमें उसे हारना पड़ा। उसके परं मित्र भरतपुर वालोंको अंग्रेजोंने हराया। उसने अंग्रेजोंकी आधीनता स्वीकार कर ली। जसवंतकी कमर टूट गई। अन्तमें उसने अंग्रेजोंके हाथ आत्म समर्पण किया। उन्होंने उसको उसका सारा प्रदेश कुछ भूभागको छोड़ वापस किया। वहभी सन १८०५ में उसे मिल गया। १८११ में जसवंतरावकी मृत्यु हुई।

अन्ततोगत्वा होते हवाते सन १८१८ में अंग्रेजोंको पूर्ण विजय प्राप्त हुई। बाजीराव पेशवा पराभूत हुआ तथा पदभ्रष्ट कर उत्तर हिंदुस्तानमें विठूर नामक स्थानमें भेज दिया। सतारा पति अंग्रेजोंका करद बना। अंग्रेज गुजरात, लाट, महाराष्ट्र आदिके स्वामी बन गये। इतनाही नहीं काठियावाड़, राजपूताना, मालवा, बुंदेलखण्ड, गंगा यमुना दोआब, बंगाल, बिहार, ओड़ीसा, नागपूर, छोटा नागपुर तथा दक्षिण भारत आदि भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें संघका सार्वभौम एक छत्र प्रभाव स्थापित हो गया। संघ मनभाया करने लगा। किसी भारतीय नरेशमें इसके प्रतिकूल उंगली उठानेका साहस न रहा। हां १८५७–५८ के बलवाके समय

अंग्रेजोंको घोर चिन्तामें पड़ना पड़ा था। इस समय बाजीरावने अपने मनके गुब्बारे खुल कर फोड़े। कानपूर आदि हस्तगत कर एकबार पुन: स्वाधीनता प्राप्त करनेकी चेष्टामें प्रवृत्त हुआ। महाराणी लक्ष्मीबाईने भारतीय स्त्री समाजका—अपने हाथके बलका कौशल दिखना मुखोज्वल किया। तांतिया टोपीने लाट प्रदेश तक आकर अपने हाथके जौहर दिखलाये। परन्तु भारतीय संरक्षित नरेशोंने दिल खोल कर संघको साहाय प्रदान किया। संघ इस विप्लव समयभी विजयी हुआ। परन्तु संघका अन्त दूसरे प्रकारसे हुआ। भारत, इंगलेन्डकी राणी विक्टोरियाके आधीन हुआ। उन्होंने भारतकी बगडोर अपने हाथ ली। अनेक प्रकारका वादा किया। परन्तु उसका पालन किया या नहीं यह अज्ञेय नहीं है, अंग्रेज जाति भारतका शासन परं कौशलके साथ करती है इसने भारतकी सेनासे अंग्रेज साम्राज्यका खूब विस्तार किया। भारतीय सेनाने काबुल, बरमा, चीन, आफ्रीका में युध्द किया है। और वहांकी जातियोंको अंग्रेज साम्राज्यके आधीन बनाया है। इसने विद्या आदिका खूब प्रचार किया। रेल, तार, डाक आदि बना कर प्रजाको आनन्द दिया है। परन्तु सबसे अमूल्य वस्तु स्वातंत्र्यका अपहरण किया है। अंग्रेजोंके संसर्गसे भारतीयों के दृष्टिकोण बदल गए हैं। उनके हृदयमें जातीयताके अंकुर रोपण हो चुके हैं। वे स्वाधीनता और पराधीनताके अन्तरको समझ गये हैं। धर्म और जातीयता के संकुचित विचारके कुपरिणामसे वे अब अनभिज्ञ नहीं रहे हैं। परन्तु चिरकालसे आनेवाली फूट जन्य विशृंखला धर्मान्धता और ऊँच नींचका भाव अभी उनका पिण्ड नहीं छोड़ रहा है। तथापि दूरदर्शी और अनुभवी व्यक्तियों और स्वदेश और स्वजातिके निमित्त सर्वस्व परित्याग करनेवाले नव युवकोंका अभाव नहीं है। वे स्वातंत्र्य प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील हो रहे हैं। जातीय महासभा सन १८८५ से इसमें प्रयत्न शील है विगत जर्मन युद्ध समय भारतीयोंने अंग्रेजोंकी सहायता धन, जनसे दिल खोलकर की थी। १२००००० से अधिक भारतीय सेनाने युद्धमें भाग लिया। फ्रान्सके अल्सास और लोरेन्समें जकर जर्मनोंके छक्के छुड़ा फ्रान्सकी लाज बचायी। मेसेपोटेमियामें जाकर तुर्कोंके दांत तोड़े। अंग्रेजोंने भारतीयोंकी शक्ति और राज्यभक्तिकी भूरि भूरि प्रशंसा की। उपलक्षमें शासन सुधार हुआ। परन्तु वह भारतीयोंको संतुष्ट नहींकर सका।

अतः भारतीयोंने नवीन शासन सुधार योजनाका जन्मकाल सन १६२१ से ही विरोध किया। सर्व प्रकारके आन्दोलन से काम लिया। अन्तमें सरकारका आसन डोला उसकी कुम्भकरणी निद्रा भंग हुई। उसे नव निर्मित "माउन्ट फर्ड" सुधार योजना में परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत हुई। इतना होते हुए भी उसने भारतीयोंकी मांग "स्वभाग्य विधान (Selfdetermination) की उपेक्षा कर साइमन कमीशन नियुक्त किया। देश के ओरसे छोर पर्यन्त विरोधका बवन्डर उठ गया। गर्म नर्म सबोंने विरोध किया पर कमीशन अपने मार्ग पर अग्रसर होता गया। अन्त में अपनी रिपोर्ट उपस्थित की। रिपोर्टने भारतीय विक्षुब्ध हृदयको और भी विक्षुब्ध बनाया।

अन्तमें सरकारको अपनी भूल मालूम हुई। उसने भारतीय और ब्रिटिश प्रतिनिधियोंकी गोलमेज सभा आवाहन किया परन्तु दुर्भाग्य से भारतीय प्रतिनिधियोंका निर्वाचन जनता से न होकर उनकी नियुक्ति सरकार द्वारा हुई। अतः तीनबार गोलमेज सभा होनेपरभी सन्तोषजनक परिणाम नहीं हुआ। गोलमेज सभाकी रिपोर्ट "साइमन कमीशन" की रिपोर्टसे भी असन्तोषकारक हुई। यदि कुछ हुआ तो वह यह ही कि भारतीय-भारत और ब्रिटिश-भारतके शासनका एकीकरण स्वीकृत किया गया। एकीकरणकी योजना अब राजकीय स्वीकृति प्राप्त कर चुकी है।

प्रस्तुत सुधारके अनुसार अब भारत वर्षकी सरकारका नाम "Federal Government" संघ सरकार होगा। इसके "Federal Unit" सांघिक मण्डल दो भागोंमें विभक्त हैं। जिनका नाम भारतीय भारत और ब्रिटिश भारत है। "Federal Legislature" संघसभा दो भागोंमें बटी है। प्रत्येक शासन सभामें ब्रिटिश भारतको २-३ और भारतीय भारतको लगभग १-३ प्रतिनिधि निर्वाचन करनेका अधिकार है।

भारतीय भारत का सांघिक मंडल आसाम, बंगाल बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश संयुक्त प्रदेश, पंजाब, सीमा प्रदेश, सिन्ध, मद्रास, बम्बई १२ भागोंमें बटा है। प्रत्येक मंडलको अपने आभ्यान्तरिक शासनमें "Provincial Autonomy" स्वतन्त्र शासन का अधिकार प्राप्त है। योंतो प्रत्येक प्रान्त और मंडलको अपना "Legis lature" प्राप्त है परन्तु बंगाल बिहार आदि कतिपय प्रांन्तोंमें छोटी बड़ी दो धारा सभायें हैं।

भारतीय भारतका सांघिक (Unit) मंडल भी अनेक भागोंमें बटा हुआ है। मैसूर, ट्रावनकोर, हैदराबाद, बडोदा, काश्मीर आदि बड़े राज्य "Separate entity" हैं और छोटे राज्यों का अनेक "Unit" बनाया गया है।

प्रस्तुत सुधार ने यद्यपि भारतीय भारत को ब्रिटिश भारतके कार्यों में हस्त क्षेप करने का अधिकार प्रदान किया है परन्तु ब्रिटिश भारतको भारतीय भारतके अन्तर विधानमें हस्तक्षेप करने का कुछ भी अधिकार नहीं दिया है। अतः भारतीय संघ शासनके स्थापित होतेही भारतीय नरेशोंको ब्रिटिश भारतके अन्तर में हस्तक्षेप करने का अवसर मिलेगा। परन्तु भारतीय संघशासन तभी संगठित होगा जब लगभग आधे राजगण संमिलित होंगे।

नवसुधार योजना ब्रिटिश भारत में १ ली अप्रैल सन १९३७ में लागू होगी। इसके निमित्त अभीसे धारा सभाओंके निर्वाचनके लिये प्रत्येक राजनैतिक दल सरगर्मी से काम कर रहा है।

हम विवेचनीय इतिहासके सभी पूर्व और परकालीन राज्यवंशोंके उत्कर्षापकर्षका दिग्दर्शन करा चुके हैं। आशा है इसके अवलोकन पश्चात् आगे चलकर इतिहासके अंगो पांगोंके विवेचनको हृदयंगम करनेमें हमारे पाठकोंको सहायता मिलेगी।

चौलुक्य चन्द्रिका लाट नवसारिका खंड।

युवराज शिलादित्य का दान पत्र।

प्रथम पत्रक।

१ ॐ स्वस्ति जयत्याविष्कृतं विष्णोर्वाराहं क्षोभितार्णवं। दक्षिणोन्नत दंष्ट्राग्रे वि

२ श्रान्त भुवनं वपुः॥ श्रीमतां सकल भुवन संस्तूयमान मानव्यस गोत्राणां

३ हारिती पुत्राणां सप्त लोक मातृकाभिस्सप्त मातृकाभिर्वर्धितानां कार्त्तिकेय प

४ रि रक्षण प्राप्त कल्याण परंपराणां भगवन्नारायण प्रसाद समासादितवाराह ला

५ ञ्छनेक्षण वशीकृताशेषमहीभृतां चौलुक्य नामान्वये निज भुज बल पराजिता

६ खिल रिपु महीपाल समिति विराम युधिष्ठिरोपमान सत्य विक्रम श्री पुलकेशी वल्लभः तस्य

७ पुत्रः परम महेश्वर मातापितृ श्री नागवर्धन पादानुध्यात् श्री विक्रमादित्य सत्या।

८ श्रय पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परम महेश्वर भट्टारकेन अनिवारित पौरुषा

९ क्रान्त पल्लवान्वयाज्ज्यायसा भ्रातास्सर्माभिवर्धित विभूतिर्धराश्रय श्री जयसिंह

१० वर्म्मा तस्य पुत्रः शरदमल सकल शशधर मरीचिमाला वितान विशुद्ध कीर्ति पताका।

युवराज शिलादित्यका मान-पत्र।

द्वितीय-पत्रक।

१ विभासित समस्त दिगन्तरालयः प्रदत्त द्विजराज वर लावण्य सौ

२ भाग्य संपन्न कामदेव सकल कला प्रवीणःपौरुषवान विद्याधर चक्र

३ वर्तीव श्रयाश्रय श्री शिलादित्य युवराजः नवसारिकामधिवसतः नवसारि

४ का वास्तव्य काश्यप गोत्र गामीः पुत्र स्वामन्त स्वामी तस्य पुत्रा

५ य मातृ स्थविरः तस्यानुजन्म भ्राता किक्क स्वामिनः भागिक्क स्वामिने अध्वर्यु ब्रह्मचारि

६ णे ठहारिका विषयान्तर्गत कण्डवलाहार विषये आसट्टी ग्रामं सोद्रकं सप

७ रिकरं उदकोत्सर्ग पूर्वम्माता पित्रो रात्मनश्च पुण्य यशोभि वृद्धये दत्तवान् ॥

८ वाताहतदीप शिखा चंचलां लक्ष्मीमनुस्मृत्य सर्वैरागामिभि र्नृप- तिभि धर्मदायोऽ

९ मु मन्तव्यः। बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजाभिः सगरादिभिः। यस्य यस्य यदा भूमि

१० स्तस्तस्य तस्य तदा फलं॥ माघ शुद्धत्रयोदश्यां लिखितमिदं सन्धि विग्रहिक श्री धनंजयेन

११ संवत्स शत चतुष्टय एक विंशत्यधिके ४२१ आं।

युवराज शिलादित्यके दान पत्र

का

छायानुवाद।

कल्याण हो। वाराह रूप धारी भगवान विष्णु, जिन्होंने समुद्रका मन्थन और अपने ऊपर उठे हुए दक्षिणदन्तके अग्रभाग पर पृथ्वीको विश्राम दिया, का जय हो। श्रीमान् मानव्य गोत्र सम्भूत हारिती पुत्र, जो सकल संसारमें स्तुतिका पात्र है, और जिसको सप्त मातृओंने सप्त मातृकाओंके समान पालन किया तथा जिसकी रक्षा भगवान कार्तिकेयने की है, और जिसने परंपरागत वाराहध्वजको भगवान विष्णुकी कृपासे प्राप्त किया है, पुनश्च जिसने क्षण मात्रमें पृथिवीको शत्रु रहित किया उस चौलुक्य वंशमें राम और युधिष्ठरके समान सत्याश्रय श्री पुलकेशी वल्लभ हुआ जिसने अपने भुजबलसे समस्त शत्रु राजाओं को वशीभूत किया। उसका पुत्र परम महेश्वर माता पिता और नागवर्धनका पादानुध्यात श्री विक्रमादित्य सत्याश्रय हुआ। उस परम भट्टारक महाराजाधिराज पृथ्वी वल्लभने पल्लवों के समस्त पौरुषको आक्रान्त किया। उसका छोटाभाई जयसिंह अपने भाई के द्वारा अभिवर्धित राज श्री जयसिंहवर्म्मा हुआ। जिसका पुत्र पूर्ण विकसित चंद्रमा समान कीर्तिमान, कामदेव के समान कान्तिमान–ब्राह्मणों के समान विनीत–सकल कलाओं का ज्ञाता–पौरुष तथा विद्वान चक्रवर्ती तुल्य श्री आश्रय युवराज शिलादित्यने नवसारिका वास करते हुए नवसारी के रहने वाले काश्यप गोत्री गामी स्वामीके पुत्र स्वामन्त स्वामी–उसके पुत्र मातृस्थविर के छोटेभाई कियकास्वामी के पुत्र भागिकस्वामी अध्वर्यु ब्रह्मचारीको ठाहरिका विषय के उप विषय कण्डवला-हारि के आसट्टी नामक ग्रामको समस्त भोगभाग आदि दाय युक्त संकल्प पूर्वक माता पिता तथा अपने पुण्य और यशकी वृद्धि के लिए–सांसारिक वैभव को वायु से क्रान्त दीप शिखा समान चंचल विचार कर प्रदान किया। इस धर्मदायको समस्त आगामी नरेशोंको पालन करना चाहिए। क्योंकि इस वसुधा का पूर्ववर्ती सागर आदि अनेक राजाओं ने भोग किया परन्तु पृथ्वी का स्वामी जो होता है उसको ही उसके दान का फल मिलता है। माघ शुद्ध त्रयोदशी को इस शासन पत्र को सन्धि विग्रहिक श्री धनंजयने लिखा। संवत्सर सौ चार एक विंश। ४२१। ओं।

युवराज शिलादित्यके दान पत्र

का

विवेचन ।

प्रस्तुत ताम्रपत्र युवराज शिलादित्य का शासन पत्र है । ८. १ । २ लम्बा और ४. ३ । ४ चौड़े आकार के ताम्रपट पर उत्कीर्ण है । ताम्रपटों की संख्या दो है । प्रथम ताम्रपट में पंक्ति ओं की संख्या १० और दूसरे में ११ है । दोनों पटों के मध्य छिद्र हैं उसमें एक अंगूठी लगी है । अंगूठी के ऊपर राजा की मुद्रा है । उसमें श्री आश्रय अंकित है । ताम्र लेख पुरातन चौलुक्य शैली का है, लेखकी भाषा संस्कृत है ।

लेख पर दृष्टिपात करने से दानदाता की वंशावली निम्न प्रकारसे उपलब्ध होती है।
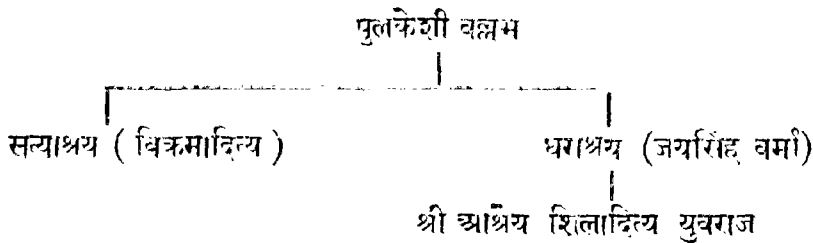
वातापिके चौलुक्य वंशकी वंशावलीसे हमें प्रकट होता है कि सत्याश्रय-विक्रमादित्य-पुलकेशी द्वितीयका पुत्र था । इस ताम्रपत्रमेंभी उक्त बातें पाई जाती हैं अतएव इस ताम्रपत्र कथित पुलकेशी वल्लभ और पुलकेशी द्वियीय अभिन्न व्यक्ति हैं । इस लेखमें सत्याश्रय विक्रमादित्यको "माता पितृ श्री नागवर्धन पादानुध्यात" कथित किया गया है ताम्रपत्रोंमें "पादानुध्यात" पद स्वर्गीय राजाके उत्तराधिकारीको ज्ञापन करता है । चाहे वह पूर्व राजाका भाई--भतीजा--चचा अथवा पुत्र प्रभृति कोई भी क्यों न हो । अत एव सम्भव है कि विक्रमादित्यको अपने पितासे राज्य न मिला हो । उसके और उसके पिताके मध्य नागवर्धन ने राज्य किया हो इसीको ज्ञापन करनेके लिये यहांपर "माता पिता और श्री नागवर्धन पादानुध्यात" पदका प्रयोग किया गया है । सम्भव है नागवर्धन पुलकेशीका चचेरा भाई हो ।

परन्तु डाक्टर फ्लीट द्वारा संपादित लेखसे प्रकट होता है कि पुलकेशी द्वितीयके लिये भी "नागवर्धन पदानुध्यात पदका प्रयोग किया गया है। अतएव डाक्टर फ्लीट "नागवर्धन पादानुध्यात" पदका अर्थ किसी देव विशेषका करते हैं। पण्डित भगवान लाल इन्द्रजी भी फ्लीट महोदयके कथनसे सहमत हैं। हमारी दृष्टिमें भी उक्त विद्वानोंकी धारणा सत्य प्रतीत होती है। क्योंकि "नागवर्धन पादानुध्यात" पदका प्रयोग नागवर्धनके लेखमेंभी पाया जाता है। यदि हम देवताका ग्रहण न करें तो पिता पुत्र दोनोंका एकका उत्तराधिकारी होना सिद्ध होता है। यह क्योंकर हो सकता है? अतः "नागवर्धन पादानुध्यात" पदका यथार्थ भाव देवता ग्रहण करनेसे ही सिद्ध होगा।

विक्रमादित्यका उत्तराधिकारी धराश्रय जयसिंह और उसका उत्तराधिकारी श्री आश्रय शिलादित्य प्रकट होता है। यही शिलादित्य इस ताम्रपत्रका शासन कर्ता है। परन्तु वातापिके चौलुक्य वंशावलीमें न तो जयसिंयका और न उसके पुत्र शिलादित्यका नाम पाया जाता है। इस अभावका कारण भी वातापिके चौलुक्योंके लेखमें नहीं मिलता। वर्तमान लेखसे उक्त उलझन मिट जाती है क्योंकि इसमें जयसिंहके सम्बन्धमें निम्न वाक्य है:—

"ज्यायसा भ्रात्रा समभिवर्धितविभूतिः"

पाया जाता है। इसका भाव यह है कि विक्रमने जयसिंहको लाट देश दिया था। और जयसिंह लाट प्रदेशमें चौलुक्य वंशका राज्य संस्थापक हुआ।

पर वलसाड़से प्राप्त गुजरातके चौलुक्य मंगलराजके ताम्रपत्रमें वंशावली निम्न प्रकार से दी गई है
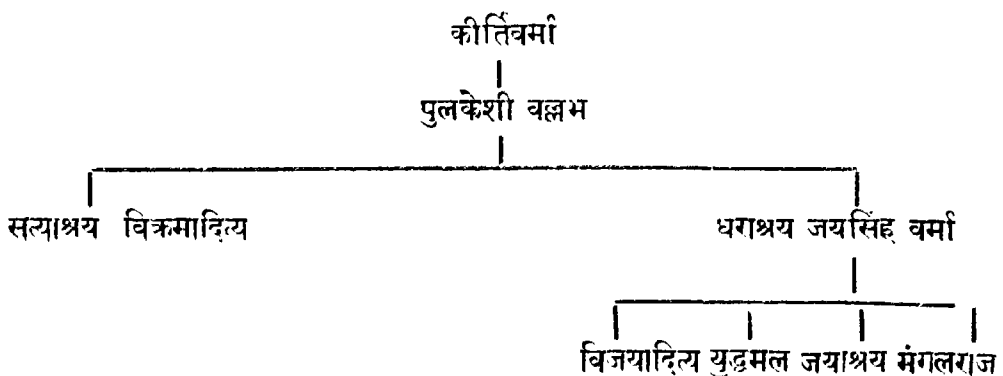
दोनों वंशावलियोंके तारतम्यसे प्रकट होता है कि कीर्तिवर्मासे लेकर विक्रमादित्य और जयसिंह पर्यंत कोई अन्तर नहीं है। परन्तु जयसिंहके पुत्रोंके नामादि सम्बन्धमें मतभेद है। नवसारिका ताम्रपत्र उसके पुत्रका नाम श्री आश्रय शिलादित्य बताता है और वलसाड़का ताम्रपत्र विजयादित्य, युद्धमल, जयाश्रय और मंगलराज नाम ज्ञापन करता है। अतएव दोनोंमें घोर मतभेद है। मंगलराजने उक्त वलसाड़वाला लेख मंगलपुरीमें शासनी भूत किया था। अन्यान्य विवरणमें भी पाया जाता है परन्तु मंगलराजके लेखमें शिलादित्यका उल्लेख नहीं। यद्यपि वह नवसारीवाले लेखमें स्पष्टतया युवराज लिखा गया है इससे स्पष्टतया प्रकट होता है कि वह जयसिंहका बड़ा लड़का था।

मंगलराजके लेखमें शिलादित्यका उल्लेख न पाये जानेके दोही कारण हो सकते हैं या तो वह युवराजावस्थामें ही मर गया था अथवा मंगलराजने उसे गद्दीसे उतार दिया था हमारी समझमें उसके मंगलराज द्वारा गद्दीपरसे उतारे जानेकी अधिक सम्भावना है। जबतक इसका परिचायक कोई स्पष्ट प्रमाण न मिले हम निश्चयके साथ कुछ भी नहीं कह सकते।

इसके अतिरिक्त नवसारी वाले प्रस्तुत ताम्रपत्र और वलसाड़वाले मंगलराजके ताम्र पत्रकी तिथियोंका अन्तर बाधक है शिलादित्यके शासनपत्रकी तिथि-अंकों और अक्षरोंमें स्पष्टरूपेण संवत ४२१ और मंगलराजके शासनपत्रकी तिथि शाके ६५३ है। पूर्व संवत ४२१ न तो शक और विक्रम संवत हो सकता है। क्योंकि उसे विक्रम संवत माननेसे उसको हो शक बनानेके लिये १३५ जोड़ना पड़ेगा। अतः ४२१+१३५=५५६ होता है। इस प्रकार मंगलराजके लेख और प्रस्तुत लेखमें ९७ वर्षका अन्तर पड़ता है। दो भाइयोंके मध्य ९७ वर्षका अन्तर कदापि सम्भव नहीं। इस हेतु उक्त संवत ४२१ विक्रम संवत नहीं हो सकता। पुनश्च उक्त संवतको विक्रम संवत न माननेका कारण यह है कि यह समय शाके ५५६ के बराबर है। और हमें निश्चितरूपसे विदित है कि वातापिके चौलुक्य राज्य सिंहासनपर शिलादित्यका दादा पुलकेशी द्वितीय आसीन था। पुलकेशीके पश्चात हमें आदित्यवर्मा और चन्द्रादित्यके राज्य करनेका स्पष्ट परिचय प्राप्त है। एवं चन्द्रादित्यके पश्चात उसकी राणी विजयभट्टारिका महादेवीके शासन करनेका भी प्रमाण उपलब्ध है। अन्ततोगत्वा शाके ५५६ से लगभग २० वर्ष पर्यन्त शिलादित्यके चाचा विक्रमादित्यको गद्दीपर बैठनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ

था। जब वह स्वयं गद्दीपर नहीं बैठा था तो वह क्योंकर अपने छोटे भाई धराश्रय जयसिंह वर्माको लाट प्रदेशका राज्य दे सकता है। जब शिलादित्यके पिताको शाके ५५६ में स्वयं ही राज्य नहीं मिला था तो वैसी दशामें उसका पुत्र शिलादित्य युवराज क्योंकर माना जा सकता है। अब यदि कहा जाय कि मंगलराज के शासनपत्रकी तिथि अनर्गल है। तो हमारा विनम्र निवेदन यह होगा कि उक्त तिथि ठीक है क्योंकि उसके साथ वातापिके चौलुक्य राज-वंशकी तिथिका क्रम मिलजाता है। अतएव हम उसे अशुद्ध नहीं मान सकते।

इन विपत्तियोंसे त्राण पानेके लिये पण्डित भगवानलाल इन्द्रजीने निम्न संभावनाओंका अनुमान किया है।

१–चौलुक्यवंश में शिलादित्य नाम नहीं पाया जाता। अतएव या तो यह ताम्रपत्र वल्लभी के राजा शिलादित्यका है अथवा जाली है।

२–यदि वल्लभी के राजा शिलादित्य का यह लेख नहीं है तो वैसी दशा में यह अवश्य जाली है। क्यों कि इसकी तिथि का मेल वातापि के राज्यवंशकी तिथि से नहीं मिलता।

इसके संबंध में हमारा निवेदन यह है कि इस शासन का कर्ता वल्लभी का शिलादित्य नहीं है क्यों कि इसकी शैली का वल्लभी वालों के लेखों की शैली से मेल नहीं खाता। पुनश्च यह लेख जाली इस कारण से नहीं है कि इसमें सूक्ष्मतर विवरण पाये जाते हैं। एवं इसकी शैली का वातापि के चौलुक्यों के लेखसे पूर्ण सामंजस्य पाया जाता है। पुनश्च इस लेख के अतिरिक्त शिलादित्य का एक और लेख सूरत से प्राप्त हुआ है। उसके पर्यालोचन से प्रगट होता है कि उक्त लेख के लिखे जाने के समय भी धराश्रय जयसिंह लाट के चौलुक्य राज्य सिंहासन पर सुशोभित था और राजकार्य में उसका हाथ युवराज शिलादित्य बटाता था। अपरंच नवसारी से प्राप्त अन्य दो लेखों में संवत ४२१–४४३–४९० मिला है। ऐसी दशा में इस संवतका परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

कथित संवत ४२१ को हम विक्रम संवत से भिन्न सिद्ध कर चुके हैं। अतः अब विचारना है कि यह कौनसा संवत है। मगध के गुप्तों का राज्य वर्तमान गुजरात और

काठियावाड़ प्रदेश में था। गुप्तों का गुप्त नामक संवत्सर अपना था। उक्त गुप्त संवत्सरका प्रचार उनके राज्य काल तथा कुछ दिनों पर्यन्त वर्तमान गुजरात–काठियावाड़ में था। अतः संभव है कि कथित संवत ४२१ गुप्त संवत हो। गुप्त संवत का प्रारंभ शक ८८ तथा विक्रम २२३ में हुआ था। अब यदि हम कथित संवत ४२१ को गुप्त संवत मान लेवें तो वैसी दशा में उसे शक संवत बनाने के लिये उसमें हमें ८८ वर्ष जोड़ना होगा। कथित संवत ४२१ में ८८ जोड़ने से शक ५०६ होता है। इस प्रकार युवराज शिलादित्य और मंगलराज के मध्य पूर्व कथित ६७ वर्षका अन्तर और भी अधिक बढ़ जाता है। अर्थात उक्त ६७ वर्ष का अन्तर ६७ से बढ़कर १४४ हो जाता है। इस हेतु संवत ४२१ को हम गुप्त संवत नहीं मान सकते।

वर्तमान गुजरात और काठियावाड़ प्रदेश में विक्रम, शक, गुप्त और वल्लभी संवत्सरों के अतिरिक्त त्रयकूटक नामक संवत्सर का भी प्रचार था। अब विचारना यह है कि कथित संवत ४२१ त्रयकूटक संवत्सर हो सकता है या नहीं। त्रयकूटक संवत्सर का प्रारंभ विक्रम संवत ३०५ में हुआ था। अब यदि हम इसे त्रयकूटक संवत मान लेवें तो ऐसी दशा में इसे विक्रम बनाने के लिये ४२१ में ३०५ जोड़ना होगा। ४२१+३०५=७२६ होता है। उपलब्ध ७२६ विक्रम को शक बनाने के लिये हमें १३५ घटाना होगा। ७२६–१३५=५९१ शक होता है। मंगलराज के शासन की तिथि ६५३ शक हमें ज्ञात है। अतः इन दोनों का अन्तर ६२ वर्षका पड़ता है। इस हेतु इस विवादास्पद संवत ४२१ को हम त्रयकूटक संवत भी नहीं मान सकते। अनेक पाश्चात्य और प्राच्य विद्वानों ने कथित संवत ४२१ को त्रयकूटक संवत माना है। परन्तु हम उनका साथ नहीं दे सकते। ऐसी दशा में इस संवत को हम अज्ञात संवत्सर कहते हैं।

विवेचनीय संवत ४२१ को अज्ञात संवतमानने के बादभी हमारा त्राण दृष्टिगोचर नहीं होता क्यों कि शिलादित्य और मंगलराज के समय की संगति मिलाना आवश्यक है। हम ऊपर शिलादित्य के दूसरे लेख संवत ४४३ वाले का उल्लेख कर चुके हैं।

हमारी समझमें यह लेख हमारा त्राण दाता है। इस लेखकी संप्राप्ति हमारी दृढ़ नौका है। इसके पर्यालोचन से प्रगट होता है कि इसमें वातापि के चौलुक्य राज सत्याश्रय विनयादित्य वल्लभ महाराज को अधिराज रूपसे स्वीकृत किया गया है। अतएव यह लेख विनयादित्य के राज्यारोहण के बादका है। विनयादित्य वातापि के चौलुक्य राज विक्रमादित्य प्रथम कापुत्र और उत्तराधिकारी था। इसका राज्यकाल शक ६०१ से ६१८ पर्यन्त है। अतः सिद्ध हुआ कि युवराज शिलादित्य का प्रथम लेख ६०१ से पूर्वका और दूसरा इसके बाद का है। अब यदि हम शिलादित्य के दूसरे लेख संवत ४४३ वाले को विनयादित्य के अन्तिम समय शक ६१८ का मान लेवें तो इस अज्ञात संवत और शक संवत में १७५ वर्षका अन्तर होता है। इस प्रकार युवराज शिलादित्य का प्रथम लेख संवत ४२१ वाला शक ५९६ का ठहरता है। अतः हम निश्चय के साथ कह सकते हैं कि इस अज्ञात संवत और शक का अन्तर १७५ है। क्यों कि इस प्रकार मानने से वातापि के चौलुक्य राज वंशकी तिथि का क्रम सुचरूरूपेण मिल जाता है।

इस अज्ञात संवत्सर का शक संवत से अन्तर प्राप्त करने के पश्चात भी हमारा त्राण नहीं हुआ। क्यों कि युवराज शिलादित्य और मंगलराज के समय का अन्तर का समाधान नहीं होता। इसके संबंध मे हम कह सकते हैं कि शिलादित्य के द्वितीय लेख संवत ४४३ तदनुसार शक ६१८ और विक्रम ७५३ से मंगलराज के लेख का अन्तर तारतम्य संमेलन से ही त्राण होगा। युवराज शिलादित्य के द्वितीय लेख संवत ४४३ वाले को शक ६१८ का सिद्ध होते ही मंगलराज के लेखसे केवल ३५ वर्षका अन्तर रह जाता है। यह अन्तर कोई महत्व पूर्ण अन्तर नहीं है। इसका निश्चित तथा संतोषजनक रीत्या समाधान शिलादित्य और मंगलराज के लेखों को उनके अन्त समय के समीप वाला मान लेने से हो जाता है। मंगलराज के लेखको उसके अन्त समय का अथवा अन्त समय के समीप का मानना केवल हमारे अनुमानपरही निर्भर नहीं है। वरन् हमारी इस धारणा का प्रबल सहायक मंगलराज के उत्तराधिकारी और लघुभ्राता पुलकेशी का संवत ४९० वाला लेख है। मंगलराज के लेख और इस लेखके मध्य केवल ८ वर्षका अन्तर है। पुनश्च शिलादित्य युवराज

अवस्थामें ही मरचुका था। अतः हम कह सकते हैं कि प्रथम लेख संवत ४२१ वाले के लिखे जाते समय वह अल्प वयस्क बालक था। परन्तु द्वितीय लेख संवत ४४३ वाले के समय वह अवश्य पूर्ण यौवन प्राप्त था। इन लेखों के संवत के संबंधमें मंगलराज के उत्तराधिकारी तथा लघु भ्राता पुलकेशी के संवत ४६० वालेलेखका बिवेचन करते समय विशेष विचार करेंगे।

जयसिंह वर्मा के शिलादित्य, मंगलराज, बुद्धवर्मा नागवर्मा और पुलकेशी नामक पांच पुत्रांके होनेका परिचय मिलता है यह परिचय हमें इन पुत्रों के शासन पत्रों से मिलता है। शिलादित्य और मंगलराज के लेख का हम उपर उल्लेख कर चुके हैं। पुलकेशी का शासन पत्र नवसारी से, बुद्धवर्मा के पुत्र का शासन पत्र खेड़ासे और नागवर्धन का नासिक से मिला है। इन सब शासन पत्रों में वंशावली दी गई है। हम अपने पाठकों के मनोरंजनार्थ प्रत्येक शासन पत्र की वंशावली निम्न भागमें उधृत करते हैं। आशा है कि उधृत वंशावलियों पर दृष्टिपात करते ही हमारे कथन कि जयसिंह वर्मा के पांच पुत्र थे, की साधुता अपने आप सिद्ध हो जायगी।

शासन पत्रोंकी वंशावलियाँः—
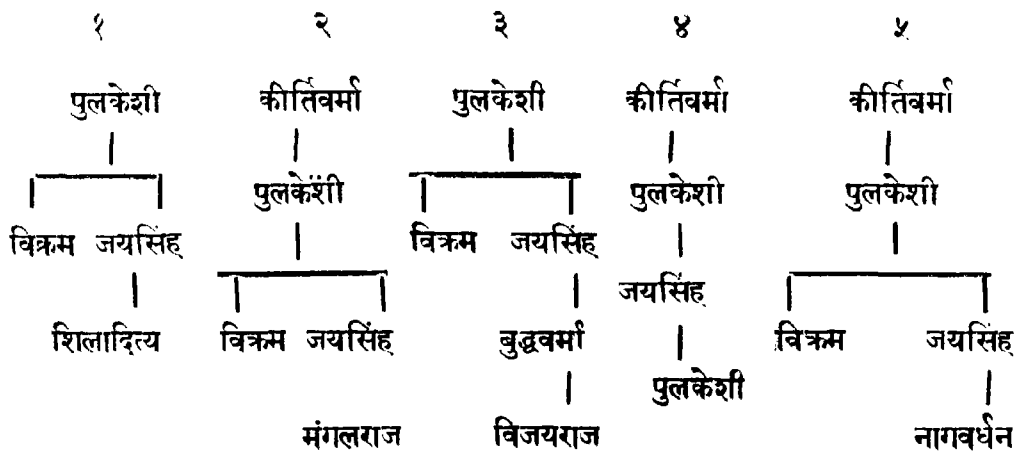
८ सी]

इन वंशावलियों पर दृष्टिपात करने से इनकी एकता अपने आप सिद्ध हो जाती है। एवं इनके तारतम्य से लाट नवसारिका के चौलुक्य वंश की वंशावली निम्न प्रकारसे पाई जाती है।

परिष्कृत वंशावली
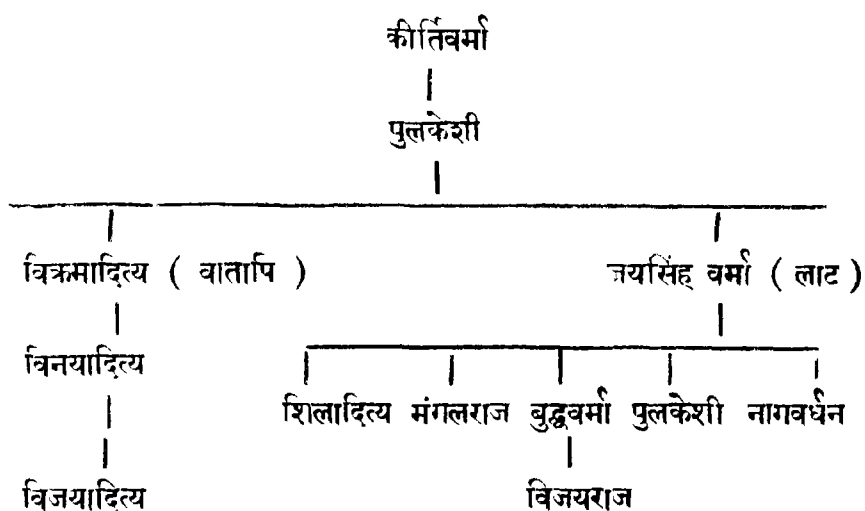
ताम्र पत्रों के पर्यालोचन से प्रगट होता है कि पुलकेशी की तुलना सूर्य कुल कमल दिवाकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम और चान्द्र पौरव वंश विभूषण धर्मराज युधिष्ठिर के साथ की गई है। यदि वास्तवमें देखा जाय तो पुलकेशी कथित तुलना का भाजन अवश्य है क्योंकि चान्द्र पौरव वंश की युधिष्ठिर और महाभारत पश्चात क्रमशः अवनति होती गई थी, और उदयन के बाद तो वह एक प्रकारसे नष्ट ही हो गया था। क्योंकि इस वंशका मुख उज्वल करने वाला पुलकेशी का दादा पुलकेशी प्रथम है। चंद्र वंशमें युधिष्ठिर के बाद पुलकेशी सर्व प्रथम अश्वमेघ यज्ञ करने वाला किन्तु पुलकेशी द्वितीय ने चंद्रवंशको पांडवों के समान गौरव

पर पहुँचाया था। क्योंकि वह भारत का एक छत्र चक्रवर्ती साम्राट था। एवं उसने अन्य देशोंके साथ राज नैतिक संबंध स्थापित कर राजदूतोंका परिवर्तन किया था। उसकी राज सभामें पारसी राजदूत रहता था। एवम प्रसिद्ध चीनी यात्री हुआंगतसांग भारत भ्रमण करता हुआ उसकी राज सभामें आया था। इन दोनों विदेशियों का नाम भारतीय इतिहासमें सदा अमर रहेगा। क्योंकि दोनों का चिह्न आज भी उपलब्ध है।

पारसी राजदूत, भारत सम्राट चौलुक्य चंद्र पुलकेशीकी सेवामें, पारसी नरेश की भेजी हुई भेंट की वस्तुएं, उपस्थित करते समय, का चित्र अजन्त गिरि (अजन्टा) की गुफामें चित्रित किया गया है, एवम हुआंगतसांगने अपनी आंखों देखे चौलुक्य वंशके वैभवका, मनुष्यों के सदाचार प्रभृति तथा धार्मिक भावनाओं, रहनसहन, और युद्ध नीति इत्यादिका वर्णन अपने यात्रा विवरणमें बड़ीही ओजस्विनी भाषामें उत्तमता के साथ किया है।

पुनश्च ताम्र पत्र के मनन से प्रगट होता है कि पुलकेशी द्वितीय के पश्चात चौलुक्य वंशका सौभाग्य मंद पड़ा। क्यों कि पल्लवों ने इनकी बहुतसी भूमि दवाली थी। परन्तु जब विक्रमादित्य गद्दीपर आया तो उसने पल्लवों को अच्छा पाठ पढ़ाया। पल्लवों को पाठ पढ़ाने वाला धराश्रय जयसिंह वर्मा था। जिससे संतुष्ट हो कर विक्रमादित्य ने साम्राज्य के उत्तरीय भाग गोप मंडल, उत्तर कोंकण, और लाटादि का राज्य प्रदान किया था। पल्लव विजय का विवेचन हम चौलुक्य चंद्रिका वातापि खण्ड में विक्रम के लेखों में कर चुके हैं।

प्रस्तुत ताम्र पात्र के शासन कर्ता युवराज शिलादित्य के लिये इसमें "शरद कमल सकल शश धर मरीचि माला वितान विशुद्धकीर्ति पताका" वाक्य का प्रयोग किया गया है। परन्तु हमारी सम्फ शिलादित्यमें इस विशेषणका यथार्थ अधिकारी नहीं था। क्यों कि प्रथम तो वह स्वयं राजा नहीं था यदि कुछ था तो केवल युवराज। द्वितीय वह स्वतंत्र राजाका नहीं वरन माण्डलीक राजा का पुत्र था। तीसरे हम ऊपर प्रगट कर चुके हैं कि प्रस्तुत लेख लिखे जाते समय वह अल्प वयस्क बालक था।

ऐसी दशामें हम कह सकते हैं कि कवि ने अपने स्वामी के प्रति पूर्ण रूपेण चाटुकता धर्मका पालन किया है। हमारे पाठक जानते है कवि बड़ेही निरंकुश और कल्पना साम्राट होते हैं। वे तिल का ताड़ और ताड़ का तिल अनायासही बना सकते हैं। यहां भी कविने शिलादित्य को अपनी निरंकुश कल्पना द्वारा महत्व के शिखर पर चढ़ा दिया है। परन्तु वह वास्तव में इस महत्त्वका अधिकारी नहीं था।

हमारी समझ में शासन पत्र के बाह्य विषयों का सांगोपांग विवेचन हो चुका। अत एव हम इसके अन्तर विवेचन में प्रवृत्त होते हैं। शासन पत्र से प्रगट होता है कि शासन पत्र लिखे जाने के समय शिलादित्य का निवास नवसारी में था। इसका वर्णन शासन पत्र के वाक्य "नव सारिका मधि वसतः" में किया गया है। अब विचार उत्पन्न होता है कि क्या इस वंशकी राज्यधानी नवसारी में थी। नवसारी के पास जयसिंह ने अपने नाम से धराश्रय नगरी नामक नगर बसाया था। उक्त नगर संप्रति धरासी नामसे अभिहित होता है। और नवसारी से लगभग दो मील की दूरी पर है। धरासी के ध्वंशावशेष से आज भी उसके पुरातन गौरव के द्योतन करने वाले अनेक अवशेष पाये जाते हैं। अतः संभावना होती है कि जयसिंह का निवास और उसकी राज्यधानी धरासी में हो। परन्तु स्पष्ट प्रमाण के अभाव में हम निश्चय के साथ कुछभी नहीं कह सकते। पुनश्च उसके विरुद्ध शासन पत्र में शिलादित्यका निवास नवसारी में होना स्पष्ट रूपसे लिखा गया है। एवं नवसारी की प्राचीनता और राजनगर होनेका प्रमाण नवसारीकी भूमि में जहां भी खोदें प्राप्त होता है। एवं प्रस्तुत शासन पत्र भी नवसारी के खंडहरों में से मिला था। अतः नवसारी को ही चौलुक्य वंशकी राज्यधानी मानने में हमें कुछभी आपत्ति नहीं।

शासन पत्र कथित दान के प्रतिग्रहीता कश्यप गोत्री मातिकस्वामी अध्वर्युब्रह्मचारी हैं। प्रतिग्रहीताकी वंशावली शासन पत्र में निम्न प्रकारसे दी गई है।

वंशावली

दानका विषय ठहारिका विषय के उपविषय कण्डवलाहार अन्तर्गत आसट्ठी नामक ग्राम है। खेदकी बात है कि प्रस्तुत ग्राम की सीमा आदि का कुछ भी परिचय नहीं दिया गया है अतः वर्तमान समय में इस ग्रामका अस्तित्व है या नहीं हम कुछ भी नहीं कह सकते।

जनाश्रय श्री पुलकेशी

का

शासन पत्र ।

१ ॐ स्वस्ति ॥ जयत्याविष्कृतंविष्णोर्वाराहं क्षोभितार्णवम् । दक्षिणोन्नत दंष्ट्राग्रे

२ विश्रान्त भुवनं वपुः ॥ श्रीमतांसकलभुवनसंस्तूयमान मानव्यस गोत्रा

३ णां हारितीपुत्राणां कार्तिकेयपरिरक्षणप्राप्तकल्याणपरंपराणां सप्त-लोकमातृभि स्स

४ प्तमातृभिरभिरक्षितानां भगवन्नारायणप्रसादसमासादित वाराह लाञ्छननिक्षणे

५ नक्षणे वर्शीकृताशेषमहिभृतांचौलुक्यानामान्वये—

६ ण कमल युगल स्सत्याश्रय श्रीपृथिवीवल्लभमहाराजाधिराज परमेश्वर श्रीकीर्तिवर्मा राजस्तस्य

७ सुत स्तत्पादानुध्यात

८

९

१० पृथिवीपति श्रीहर्षवर्धनपराजयोपलब्धोग्रप्रतापः परम महेश्वरोऽपरनामासत्याश्रयः

११ यः श्रीपुलकेशी वल्लभस्तस्यसुतस्तत्पादानुध्यानो

१२

१३

१४ द्भयक्रमागतराज्यश्रिय : परमभट्टारकस्सत्याश्रय : श्रीविक्रमादित्य-राज स्तस्या

१५ नुजः

१६

१७ रम माहेश्वरपरमभट्टारकधराश्रय : श्रीजयसिंहवर्माराजस्तस्यसुत स्ततपादानु

१८

१९

२० परममाहेश्वर

परम भट्टारक जयाश्रय श्री मंगलराज स्यानु

२१ ज स्ततपादा

२२

२३

शरभ सीर मुदूगरो द्धारिणि तरल तर तार तरवारि वा

२४ रितो दित सैन्धव कच्छेल सौराष्ट्र चापोत्कट मौर्य गुर्जरादि राज्य निःशेषदक्षिणात्यक्षितिपतिजिगी

२५ षया दक्षिणापथ प्रवेश......प्रशममेव नवसारिका विषय प्रथ-नाया गतेत्वरित

———

जनाश्रय श्री पुलकेशी

का

शासन पत्र।

द्वितिय-पत्रक।

२६ तुरग खर खुर खुरोत्खात धरिणि धूलि धूसरित दिगंतरे कुंत प्रांत नितांत विनद्ध्यमान रभसाभि धाविनो

२७ दुर्भट हृदयोद्धार विवर विनिर्गतांत्र पृथुतर रुधिर धार रंजित कवच भीषण वपुषि स्वामि महा

२८ सन्मानदानराजा ग्रहण कर्योपकृत स्वशिरोभिरभिमुखमापतितैः प्रदंपद प्रदर्शनाग्र दंष्ट्रोष्ठ पुटकैरने

२९ क समराजिर विवर चरिकारि कटि तट हय विघटन विशालित घन रुधिर पटल पाटलित पट कृपाण पटैरपि मह—

३० यो वैर लब्ध परभ शैर्विगत्त क्षपण तो क्षिप क्षिप्रनीक्षण क्षुर प्रप्रहार विलून वैरि शिरं कमलगलनालै रा

३१ ह वर सरभ सरोमाञ्च कंचुकाच्छादित तनुभिरनेकवैरि नरेन्द्र वृन्द वृन्दारकैराजितपूर्वैर्व्यपगत स्वाक

३२ भृण मनेन स्वामिनः स्वशिरः प्रदानेन तावदेक जन्मनि मित्य-मीष्यपिजान परितोषानन्तर प्रहृत पटु प

३३ टहर प्रवृत्त कबन्ध बद्ध रास मंडलिकैः समर शिरसि विजितेन जिकान्के शौर्यानुरागिणा श्रीवदत्रभूनरे

३४ न्द्रेण प्रसादी कृतापरनाम चतुष्टय स्तद्यथा दक्षिणा पथ साधारण चलुकी कुलालंकार पृथिवी वल्लभमानिवर्त्तकानि

३५ वर्त्तयित्रावनिजनाश्रय श्री पुलकेशी राजस्सर्वाण्येवात्मीयान्

३६ समनु दर्शयत्यस्तुवः संविदितं यथा स्माभिर्माता पि

३७ त्रो रात्मनश्च पुण्य यशोभि वृद्धये वलिचरु वैश्व देवाग्नि क्रियो
त्सर्पणार्थं वनवासि विनिर्गत वत्स

३८ सगोत्र तैत्तरिक सब्रह्मचारिणे द्विवेदि ब्राह्मणाङ्गदे ब्राह्मण
गोविन्दसू नुने कार्मण्येयाहार विषयान्तरगते

३९ पद्रक ग्राम सोद्रक

४० धर्मदायत्वेन प्रतिपादितो यतो स्य

४१

४२

४३

४४

४५

४६

४७

४८ संवत्सर श

४९ त ४००, ९० कार्तिक शुद्ध १५ लिखित मेतं महासन्धि विग्रहिक
प्राप्त पंच महाशब्द सामन्त श्री वप्प

५० दि··· ·········धिकृत हरगण सुनुना कलाचरमधिकाक्षरं वा
स···········प्रमाणं

जनाश्रय पुलकेशीके शासनपत्र
का
विवेचन

प्रस्तुत ताम्रपत्र नवसारी ग्रामसे प्राप्त हुआ था। इसके पत्रकोंकी संख्या दो है। प्रत्येक पत्रकमें लेख पंक्तियां २५ हैं। पत्रकोंका आकार प्रकार १।२–६।१।२ इंच है। प्रथम पत्रकके नीचे और ऊपरके दोनों भागोंमें ३.१।२ दोनों तर्फ छोड़कर दो दो छिद्र हैं। इससे प्रकट होता है कि इन छिद्रों द्वारा कड़ीके संयोगसे वे जोड़े गये थे। परन्तु इनको जोड़नेवाली कड़ियाँ उपलब्ध नहीं हैं। अतः दोनों पत्र पृथक हैं। अक्षर यद्यपि कम खोदे गये हैं तथापि स्पष्ट हैं। लिपि नवसारीमें प्राप्त शिलादित्यके शासनपत्रके समान और भाषा संस्कृत है।

इस लेखके सम्बन्धमें वियेनाके ओरियण्टल कोन्फरेन्समें एक निबन्ध पढ़ा गया था और उक्त कोन्फरेन्सकी रिपोर्ट पृष्ठ २२० में प्रसिद्ध की गई है। एवं इस लेखका कुछ अंश बाम्बे गेझेटिअरके गुजरात नामक वोल्युम एकके पार्ट एकमें उद्धृत किया गया है। मूल लेख सम्प्रति प्रिन्स ओफ वेल्स म्युजियममें सुरक्षित है।

लेखका मंगलाचरण और अन्तिम शापात्मक अंश पद्यात्मक और शेष भाग गद्यात्मक है। इसका लेखक पंच महाशब्द प्राप्त महासन्धि विग्रहिक सामन्त श्री वप्प (जिसके पिताका नाम धनगण) है।

लेखका प्रारम्भ स्वस्ति श्रीसे होता है। और सर्व प्रथम चौलुक्योंके कुलदेव वाराहकी स्तुति की गई है। पश्चात उनका वंशगत बिरुद देनेके अनन्तर शासनकर्ताकी वंशावली निम्न प्रकारसे दी गई है।

वंशावली

कीर्तिवर्मा
|
पुलकेशी वल्लभ
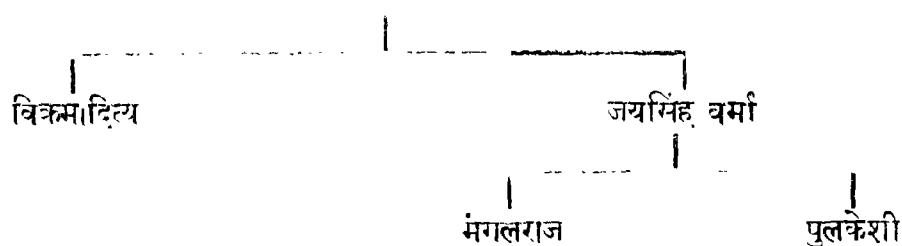
लेखमें स्पष्टरूपसे वंशावली कथित नामोंका सम्बन्ध प्रकट किया गया है। लेखसे प्रकट होता है कि कीर्तिवर्माके पुत्र पुलकेशीको विक्रमादित्य और जयसिंह नामक दो पुत्र थे। विक्रम वातापिकी गद्दीपर बैठा और जयसिंहको लाट मण्डलकी जागीर मिली। जयसिंहके मंगलराज और पुलकेशी नामक दो पुत्रोंका उल्लेख है। जयसिंहका उत्तराधिकारी मंगलराज हुआ और मंगलराजका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई पुलकेशी हुआ। पुलकेशीही प्रस्तुत दानपत्रका शासनकर्ता है। इस शासनपत्रके द्वारा उसने तैत्तरीय शाखाध्यायी वत्सगोत्री गोविन्द द्विवेदीके पुत्र अंगद द्विवेदीको जो वनवासी प्रदेशका रहनेवाला था, कार्मण्येयाहार विषयका पद्रक ग्राम दान दिया था। प्रदत्त ग्राम पद्रककी सीमा आदिका उल्लेख दानपत्रमें नहीं है। अतः हम नहीं कह सकते कि प्रदत्त ग्राम पद्रक का वर्तमान समयमें अस्तित्व है या नहीं। परन्तु कार्मण्येयको हम निश्चितरूपसे जानते हैं कि यह स्थान तापी तटपर अव-स्थित है और वर्तमान समय कमरेजके नामसे प्रख्यात है। कार्मण्येयका उल्लेख इस शासनपत्र के पूर्ववर्ती शासनपत्र, जो पुलकेशीके ज्येष्ठ भ्राता युवराज शिलादित्यका शासनपत्र है और सूरतसे प्राप्त हुआ था, में किया गया है। और हम भी इसके अवस्थानादिका पूर्णरूपेण विचार उक्त शासनपत्रके विवेचनमें कर चुके हैं।

दुर्भाग्य से इस शासन पत्र का संवत् स्पष्ट नहीं है। अतः अनेक प्रकारकी आशंकाएं विकराल रूप धारण कर सामने खड़ी होती हैं। चाहे इसका संवत स्पष्ट हो या न हो, इसमें कथित ग्रामका परिचय हमें न मिले, परन्तु यह शासन पत्र भारतीय इतिहास के लिये बड़ेही महत्व का है। इस शासनपत्र के पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि पुलकेशी के राज्य कालमें ताजिक अर्थात यवन सेनाने सिन्ध, कच्छ, सौराष्ट्र, चापोत्कट, मौर्य और गुर्जर को कष्ट दिया था, अर्थात विजय करती हुई आगे बढ़ती तापी तट के वर्तमान कमलेज पर्यन्त चली आई थी। उसका विचार दक्षिणा पथ में प्रवेश करनेका था। किन्तु पुलकेशी ने उनके विषैले दांत निकाल उन्हें स्वदेश लौटनेके लिये बाध्य किया था।

शासन पत्र कथित इस यवन आक्रमणका समर्थन मुसलमानी इतिहास से भी होता है। मुसलमान इतिहास कुतूहुल बलादान के पर्यालोचन से ज्ञात होता है कि खलीफा हस्सामने जुनेद को सिन्ध का शासक नियुक्त किया था। और वह खलीफाकी आज्ञा से सिन्ध से आगे बढ़कर मरमाड, मण्डल, दलमज, बास्स, अमेन, मालिव, बहेरमिद और जुज पर आक्रमण किया था। इन नामों पर दृष्टिपात करने से प्रगट होता है कि अरबी लिपि के दोष से स्थानों और राज्य के नाम में अन्तर पड़ गया है। कथित देशों में से कुछ देशों का वर्तमान परिचय पाना असंभव है किन्तु अधिकांश नाम ऐसे हैं जिनका अनायासही परिचय पाया जा सकता है। हम निम्न भागमें कुतूहुल बलादान कथित नामों को लिख कर उनके समानन्तर में वर्तमान नामों को लिखते है।

तुलनात्मिका सूचि

कुतूहुल बलादान के नाम	वर्तमान नाम
१—मरमाड	मारवाड
२—मण्डल	वीरमगाम (चतुर्दिक)
३—दमलेज	कमरेज
४—बरस	भरूच
५—अमेन	उज्जैन
६—अलबेले माल	भीनमाल (श्री माल)
७—वहिरमद	(संभवतः मौर्य वन)
८—मालिव	मालवा
९—जुज	भुज

प्रस्तुत शासन पत्र हमें बताता है कि मुसलमानोंने सिन्ध, कच्छ, सौराष्ट्र, चापोत्कट मौर्य और गुर्जरोंपर आक्रमण किया था। इनसे अतिरिक्त वह स्थानोंका परिचय उद्धृत सूची से मिलता है। मुसलमानों के इस आक्रमणका मौर्य वन (चित्तोड़) के मोरी परमारों उनके

इतिहास से भी समर्थन होता है और प्रगट होता है कि मुसलमानोंने मौर्य वन पर आक्रमण करने के पश्चात् मालवा उज्जैन के प्रति गमन किया था। अतः हम निश्चय के साथ कह सकते हैं कि मुसलमानी इतिहास का बहिरमद मौर्य वन है। ताम्र पत्र कथित गुर्जर भरूच के गुर्जर और चापोत्कट, भीनमाल के चावड़ा हैं। चावड़ों ने भीनमाल के गुर्जरों से मारवाड़ का राज्य प्राप्त किया था। मुसलमानों का कमलेज वर्तमान कमरेज शासन पत्र का कार्मण्येय है। हमारी समझ में मुसलमानों ने भरूचके गुर्जरों को विजय करनेके पश्चात चौलुक्यों के राज्य पर दृष्टिपात किया होगा। और आक्रमण करने के विचार से जब वे आगे बढ़े होंगे तो पुलकेशी ने कमलेज नामक दुर्ग के समीप आगे बढ़कर उनका मुकाबला किया होगा। आजभी भरूचसे नवसारी भूपथसे आने वालों को कमरेज होकर आना पड़ेगा। परन्तु मुसलमानों को कमरेज के समीप चौलुक्य सेना से सामना होतेही लेने के देने पड़े होंगे। और वे बाध्य होकर स्वदेश लौट गये होंगे।

हम देखते हैं कि मुसलमानी इतिहासमें मुसलमानोंके कमलेज विजयका उल्लेख है। परन्तु हमारी समझमें यह मुसलमान ऐतिहासिकोंकी डींगमात्र है। यदि वास्तवमें वे कमलेजको विजय किए होते तो वे अवश्य नवसारीतक जाते और उसे लूटते। क्योंकि नवसारी चौलुक्य राज्यकी राज्यधानी थी। वैसी दशामें अपनेको कमलेज विजेता लिखनेके स्थानमें की नवसारी विजेता लिखते। हमारी इस धारणाका समर्थन इस बातसे भी होता है कि कमलेज उस समय कोई राज्य नहीं, वरन नवसारीके चौलुक्योंका एक विषयमात्र था। अतः हम शासनपत्रके कथनको निर्भ्रान्त और ऐतिहासिक सत्य मानते हैं।

हमारी समझमें शासनपत्रके कथनका एक प्रकारसे पूर्णरूपेण विवेचन हो गया। अब केवल उसके संवत्सरका विचार करनामात्र शेष है। हमारी समझमें इसी शासनपत्रके संवत्सरका निर्णय होनेसे नवसारीके चौलुक्योंके अन्य तीन लेखोंके संवतोंका निर्णय होगा। हम पूर्वमें मुसलमान और मुसलमानी इतिहासका अनेक बार उल्लेख कर चुके हैं। और फिर भी हमको उसका आश्रय लेना पड़ता है। हम पूर्वमें बता चुके हैं कि आक्रमणकारी मुसलमान सेनाके सेनापति जुनेदको खलीफा हस्सामने सिन्धका शासक बनाया था। खलीफा हस्सामका समय हिजरी १०५-१२५पर्यन्त है। हिजरी सनका प्रारंभ विक्रम संवत ६७६ में हुआ था। अतः हिजरी १०५=

विक्रम ७८४ और हिजरी १२५=विक्रम ८०४ के हैं। परन्तु हिजरी और विक्रम संवत्‌के मध्य में प्रत्येक तीसरे वर्ष एक महीनेका अन्तर पड़ता है। अतः हिजरी सन १०५ और १२५ को विक्रम बनानेके लिये पूर्व कथित ७८४ और ८०४ में से ३ और ४ वर्ष घटाने पड़ेंगे। इस प्रकार हिजरी १०५ विक्रम ७८१ और हिजरी १२५ विक्रम ८०० के बराबर हैं। अन्यान्य ऐतिहासिक घटनाओंपर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि जुनेद्‌को हिजरी सन १२० में पुलकेशी द्वारा पराभूत होना पड़ा था। अर्थात् यह घटना खलीफा हश्शामके राज्यके १५ वें वर्षकी है। अतः जुनेद्‌का उक्त पराभव काल हिजरी १२० तदनुसार ७९६ विक्रम है।

प्रस्तुत शासनपत्रकी तिथि कार्तिक शुद्ध १५::४९० है। यह मानी हुई बात है कि पुलकेशीने अपनी विजयके उपलक्षमें इस शासनपत्रको शासनीभूत किया था। यदि यह बात ऐसी न होती तो उक्त विजयका उल्लेख इसमें न होता। मुसलमान इतिहाससे उसके आक्रमणका समय हम पूर्वमें विक्रम संवत् ७९६ सिद्ध कर चुके हैं। अतः इस शासन पत्रका समय ४९० विक्रम संवत् ७९५ के बराबर है। इस प्रकार दोनों संवतोंका अन्तर ३०६ वर्ष प्राप्त होता है।

हमारी समझमें इस अज्ञात संवत्सरका सांगोपांग विचार हो चुका। और साथ ही जयसिंह वर्माके पुत्र युवराज शिलादित्यके दोनों शासनपत्रों के संवत् ४२१ और ४४३ का निश्चित समय शाके ५९२ और ६१४ तथा विक्रम ७२७ और ७४९, मंगलराजके लेख शाके ६५३ और विक्रम ७८८, और पुलकेशीके लेखका अज्ञात संवत् ४९० शाके ५६१ और विक्रम ७९६ है।

चौलुक्यराज विजयराजके शासनपत्र

का

प्रथम पत्र ।

१ स्वस्ति विजय स्कन्धा वारात् विजयपुर वासकात् शरदुपगम प्रसन्न गगन तल विमल विपुले विविध पुरुष रत्नगुण।

२ निकरावभासिते महा सत्वापाश्रय दुर्लंघ्ये गांभिर्यवति स्थित्यनु-पालन परे महोदधाविवमानव्यस गोत्राणां हा

३ रिति पुत्राणां स्वामी महासेनपादानुध्यातानां चौलुक्यानामान्वये व्यपगत सजल जलधर पटल गगन तल गत शिशिर कर

४ किरण कुवलयतर यशाः श्री जयसिंह राजः ॥ तस्य सुनः प्रबलरिपु तिमिर पटलभिदुरः सतत मुदयस्थोनर्कदिव

५ मप्य स्वलित प्रतापो दिवाकर इव बल्लभ रण विक्रान्त श्री बुद्धवर्म्म राजः ॥ तस्य सूनुः पृथिव्यामप्रतिरथःश्चतुरुदधि सलिला

६ स्वादित यशां धनद वरुणेन्द्रा न्तक सम प्रभावः स्वबाहुबलो पात्तोर्जित राज्य श्री प्रतापाति शयोपनत समग्र सामन्त म

७ ण्डलः परस्परा पीडित धर्म्मार्थ कामनिर्मो चिप्रणति मात्रसु परितोष गंभीरोन्नत हृदयः सम्यक्प्रजा पालनाधिगतः दीना

८ न्ध कृपणार्थेः शरणागत वत्सलःयथाभिलषित फल प्रदो मातापितृ पादानुध्यातः श्री विजयराज सर्वानेव विषयपति राष्ट्र (कूटान्)

९ ग्राम महत्तराधिकारिकादिनामनु दर्शयत्यस्तु वस्सं विदित मस्माभि र्यथा काशाकुल विषयान्तरगतः सन्धिय पूर्विण पाश्चिय

१० एषः ग्रामः सोद्रकः सपरिकरः सर्वादित्य विष्टिप्राति भेदिका परिहिणः भूमिच्छिद्रन्यायेन चाटभट्ट प्रावेश्य जम्बुस

११ र सामान्य मावाजसनेय काण्वाध्वर्यु सब्रह्मचारिणां माता पित्रो-
रात्मनश्च पुण्य यशोभिवृद्धये वैशाख पौर्णमास्या मुदकाति

१२ सर्गेण प्रतिपादिता ॥ भारद्वाज सगोत्राय रवि देवाय पत्तिके द्वे
इन्द्रसूराय पत्तिका तावीसूराय दिव ॅपत्तिका इश्वरस्यार्ध पत्तिका

१३ दामाय पत्तिका द्रोणायार्ध पत्तिका अर्त स्वामिने ऽर्ध पत्तिका
मैलायार्ध पत्तिका षष्ठि देवायार्ध पत्तिका सोमायार्ध पत्तिका
राम शर्मणे ऽ

१४ र्ध पत्तिका मायायार्ध पत्तिका द्रोणधरायार्ध पत्तिका धूम्रायण
सगोत्र आणुकाय द्विवर्ध पत्तिका सूरायार्ध पत्तिका ॥ दण्डकीय

१५ सगोत्र भट्टः पत्तिका समुद्राय दिवर्ध पत्तिका द्रोणाय पत्तिका
अर्य तावीशर्मणे पत्तिके द्वे भट्टिनेऽर्ध पत्तिका वत्राय पत्तिका

१६ द्रोण शर्मणेऽर्ध पत्तिका द्वितीय द्रोण शर्मणेऽर्ध पत्तिका । काश्यपस
गोत्र वप्प स्वामिने त्रिस्रः पत्तिका दुर्गश मेणेऽर्ध पत्तिका दत्तायों

१७ र्ध पत्तिका कौण्डीन सगोत्र वादाया———र्ध पत्तिका सेलाय
पत्तिका द्रोणाय पत्तिका सोमायार्ध पत्तिका सेलायार्ध पत्तिका

१८ बलशर्मणेऽर्ध पत्तिका मायिस्वामिनेऽर्ध पत्तिका मात्रसगोत्र
विशाखाय पत्तिका धराय पत्तिका नान्दिने पत्तिका कुमाराय पत्तिका

१९ रामाय पत्तिका व अयस्यार्ध पत्तिका गणायार्ध पत्तिका कोर्दुबायऽर्ध
पत्तिका मायिब भट्टायार्ध पत्तिका शर्मणऽर्ध पत्तिका राम शर्मणेऽर्ध

२० पत्तिका हारित सगोत्रधर्म धराय दिवर्ध पत्तिका ॥ वैष्णव सगोत्र
भट्टिने पत्तिका गौतम सगोत्र धारायार्ध पत्तिका अमधरा

२१ यार्ध पत्तिका सेलायार्ध पत्तिका ॥ शाण्डिल गोत्र दामायार्ध
पत्तिका लक्ष्मण सगोत्र काकस्य पत्तिका

—०—

चौलुक्यराज विजयराजके शासनपत्र

का

द्वितीय पत्र।

२२ वत्स सगोत्र गोपादित्याय पत्तिका विशाखायार्ध पत्तिका सूरायार्ध पत्तिका माघि स्वामिनेऽर्ध पत्तिका यज्ञशर्मा

२३ र्ध पत्तिका लावस्विराय पत्तिका अर्कस्यार्ध पत्तिका ताविशर्मणेऽर्ध पत्तिका शर्मणेऽर्ध पत्तिका कुमारायार्ध पत्तिका

२४ माश्रीश्वरायार्ध पत्तिका बाटलायार्ध पत्तिका ॥ एतेभ्यः सर्वेभ्यः बलिचरु वैश्वदेवाग्नि होत्रादि क्रियोपसर्पणार्थं आचंद्रार्कार्णव क्षि

२५ ति स्थिति समकालीनःपुत्र पौत्रान्वय भोग्याःयतोस्मद्वंशजैरन्यैर्वा-गामिभूमिपतिभि स्सामान्य भूप्रदान फलेप्सुभिः नलवेणु कदलि

२६ सारं संसार मुदधि जलवीचि चपलांश्च भोगान् प्रबल पवनाहताश्वत्थ पत्र चंचलं च श्रियं कुसुमित शिरीष कुसुम सह

२७ शांच यौवनं माकलय्य अयमस्मादायोऽनु मन्तव्यः पालयितव्यश्च योऽत्वज्ञान तिमिर

२८ पटलावृत मतिराच्छिंद्यादाच्छिद्य

२९ मानं वानुमोदते स पंचभि र्महापातकै स्संयुक्तः स्यात्। उक्तं च भगवता व्यासेन षष्ठि (वर्ष सहस्राणि स्वर्गे)

३० वसति भूमिदः आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत। विन्ध्याटविस्वतो यासु शुष्क कोटर वासिनः। कृष्ण स

३१ र्पाहि जायन्ते भूमिदानापहारकाः बहुभि र्वसुधा (भुक्ता राजभि स्सगरादिभि.) (यस्य यस्य यदा भूमिः)

३२ तस्य तस्य तदा फलं। पूर्वं दत्तं द्विजातिभ्यो: (यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर महीमतां श्रेष्ठःदाना च्छ्रेयोऽनु पालनम्) यानीह

३३ दत्तानि (पुरा नरेन्द्रैः धर्मार्थ कामादि यशस्कराणि॥ निर्माल्यवन्ति प्रतिमानि तानिको नाम साधुः) पुनरा ददीत ॥ संम्वत्सर श

३४ त त्रये चतुर्नवत्यधिके वैशाख पौर्णमास्यां नन्नवासायक दूतकं लिखितं महा सन्धि विग्रहाधि कृतेन खुडस्वामिना

३५ संवत्सर ॥३९४॥ वैशाख शुद्ध १५॥ क्षत्रिय मातृसिंहेनोत्कीर्णानि

——

प्रस्तुत ताम्र पटोत्कीर्ण लेख आज १०७ वर्ष पूर्व सन १८२७ में उत्तर गुजरात के खेटकपुर मण्डल (खेड़ा) के समीप बहने वाली वत्रुआ नदी के कटाव से तट भागकी भूमि कट जाने से मिला था। इन पत्रों का प्रकाशन अध्यापक डासन ने रायल एसिआटिक सोसायटी के पत्र भाग १ पृष्ठ २४७ में किया था। वर्तमान समय यह शासन पत्र उक्त सोसायटी के बोम्बे विभाग के अधिकारमें है।

इन पत्रकों का आकार प्रकार लगभग १३ ४ ८ + ८ ७.८ इञ्च है। प्रथम पत्रक की लेख पंक्तियाँ २१ तथा द्वितीय पत्रक की १३ हैं। इस प्रकार दोनों पत्रोंकी कुल लेख पंक्तियाँ ३४ हैं। एक प्रकार से पत्रों की आद्यन्त भावी पंक्तियाँ सुरक्षित हैं। परन्तु द्वितीय पत्रक के लेखकी पंक्तियाँ २८,२९,३०,३१, और ३२ प्रायः नष्ट हो गई हैं।

यह लेख विजयराज नामक चौलुक्य राजा का शासन पत्र है। इसकी तिथि वैशाख शुद्ध १५ संवत ३९४ है। इसके द्वारा विजयराज ने जम्बुसर नामक ग्राम निवासी ब्राह्मणों को उनके बलि वैश्य देवाग्नि होत्रादि नित्य नैमित्तिक कर्म संपादनार्थ भूमिदान दिया है। पुनश्च दान का उद्देश्य अपने माता पिता और स्वात्म्य के पुण्य और यश की वृद्धि की कामना है। लेखकी भाषा संस्कृत और लिपि केनाडी है। यह शासन पत्र उस समय लिखा गया था जब शासन कर्ता विजय राज का निवास विजयपुर नामक स्थान में था। विजयराजकी वंशावली का प्रारंभ जयसिंह से किया गया है। और उस पर्यन्त वंशावली में केवल तीन नाम दिये गये हैं। और प्रत्येक का संबंध स्पष्ट रूपेण वर्णन किया गया है। पुनश्च विजयराज के वंशका परिचय चौलुक्य नामसे दिया गया है। इतना सब कुछ होते हुए भी शासन पत्र में घोर त्रुटियाँ पाई जाती हैं। क्यों कि इसमें यह नहीं बताया गया है की जयसिंह कहां का राजा और उसके बाप तथा दादा कौन थे। एवं जयसिंह की राज्यधानी कहां थी। अंततोगत्वा विजयसिंह का बाप बुद्धवर्मा तथा स्वयं विजयसिंह कहां रहता था। इसके अतिरिक्त शासन पत्रका संवत कौन संवत था यहभी नहीं पाया जाता। सबसे बढ़कर शासन पत्रकी त्रुटि प्रदत्तग्राम " पर्याय " की सीमाओं के उल्लेखका न होना है। अतः यह शासन पत्र और इसमें कथित

राजशिविर का स्थान विजयपुर-ब्राह्मणोंका ग्राम जंबुसर घोर विवादका कारण हो रहा है। आज तक अनेक विद्वानों ने पक्ष विपक्ष में लेख लिखे हैं। किसी के मत से यह शासन पत्र बनावटी तो दूसरे के मतसे सत्य है।

वास्तव में देखा जाय तो इस शासन पत्र कथित ग्रामादि विवादकी वस्तु हैं क्यों कि शासन पत्र विजयपुर नामक ग्राम में अवस्थित राजशिबिरसे लिखा जाता है। यह जम्बुसर के ब्राह्मणों को दिये हुए भूमिदान का प्रमाण पत्र है अर्थात इसके द्वारा उक्त ग्राम के ब्राम्हणों को दान दिया जाता है। यह जंबुसर नामक स्थान से लगभग ५० मिल की दूरी से प्राप्त होता है। पुनश्च इसके प्राप्त होने के स्थान से विजयपुर नामक स्थान जिसके प्रति अद्यावधि विद्वानोंकी दृष्टि पड़ी है वह ७०-८० मिल से भी अधिक दूर प्रान्तिज नामक स्थानके समानान्तर पर लगभग २० मील की दूरी पर उत्तर पश्चिम में अवस्थित बीजापुर नामक ग्राम है। अब यदि देखा जाय तो इसके लिखे जाने के स्थान से प्रतिग्रहीता ब्राम्हणों के निवास स्थान की दूरी १२५-३० मील से भी अधिक है। परन्तु इस शासन पत्र को ब्राम्हणों के निवास स्थान तथा लिखे जाने के स्थान से कुछ दूरी पर मिलने के कारण बनावटी मानने वालोंने इस साधारण बात पर भी ध्यान नहीं दिया है कि शासन पत्र को जंबुसर नामक स्थान से कोई मनुष्य अपने साथ लेकर अन्य स्थान को जा सकता है। पुनश्च उन्होंने भरूच जिला के जम्बुसर नामक तालुका के ग्राम जंबुसरको ही शासन पत्र कथित जंबुसर मान लिया है। अब यदि इनके माने हुए जंबुसरको लेखका जंबुसर और बीजापुरको विजयपुर मान लेवें तो वैसी दशामें प्रश्न उपस्थित होगा कि क्या चौलुक्यों का अधिकार जंबुसर, खेड़ा और बीजापुर पर्यन्त था। इस प्रश्नका उत्तर हम दृढ़ता के साथ दे सकते हैं कि उनका अधिकार बीजापुर पर्यन्त नहीं था। हमारे इस उत्तर का कारण यह है कि यह सर्व मान्य सिद्धांत है कि प्रस्तुत शासन पत्र कथित जयसिंह लाट नवसारिका के चौलुक्य राज्य वंशका संस्थापक था। जयसिंह के राज्य काल में भृगुकच्छ [भरूच] में गुर्जरों का और आनत अथवा उत्तर गुजरात के खेटकपुर [खेड़ा] पर सौराष्ट्र के वल्लभी राज के स्वामी मैत्रकों का अधिकार था। हां तापी और नर्मदा के मध्य वर्ती भूभाग पर जयसिंह के अधिकार का चिन्ह पाया जाता है। क्यों कि उसके बड़े पुत्र युवराज शिलादित्य के सूरत से प्राप्त

शासन पत्र ४२१ वाले लेखमें और दूसरे पुत्र पुलकेशी के संवत ४९० वाले लेख में इसका उल्लेख पाया जाता है। एवं तापी के वाम तटवर्ती भूभाग पर उसके अधिकार का स्पष्ट चिन्ह कथित लेखों से पाया जाता है। इन दोनों लेखों में कार्मण्येय का उल्लेख है। कार्मण्येय वर्तमान कमरेज है। और तापी के वाम तट पर अवस्थित है। इस नगरकी प्राचीनता निर्विवाद है। क्यों कि इसके दुर्गावशेष से अनेक पुरातात्विक पदार्थ पाये जाते हैं। कमरेज सूरतसे लगभग १५ मीलकी दूरी पर वायव्य कोण में है।

कमरेज ग्रामसे लगभग २०-२५ मील उत्तर पूर्व में राजपीपला के अन्तर्गत जम्बु नामक एक पुरातन ग्राम है। वर्तमान समय इस गाँवमें केवल १०-१५ झोपड़ियाँ पाई जाती हैं। परन्तु गाँवके चारो तरफ लगभग दोमील पर्यन्त अनेक मन्दिरों और मकानों के अवशेष पाये जाते हैं। अब यदि हम इस जम्बु गांव को शासन पत्र कथित जंबुसर मान लेवें तो वैसी दशा में शासन पत्र संबंधी अनेक आशंकाओं का समाधान हो जाता है। प्रथम शंका जो चौलुक्यों के जंबुसर खेड़ा और आन्तिज के समीप वाले बीजापुर पर्यन्त अधिकार संबंधी है-का किसी अंश में निराकरण हो जाता है। क्यों कि कमरेज से और अधिक आगे २० मील पर्यन्त उनके अधिकार का होना असंभव नहीं है। अब यदि हम जंबुग्राम और कमरेज के पास पर्याय और वीजापुर नामक ग्रामों का परिचय पा जायें तो सारी उलझी हुई गुथ्थी अपने आप सुलझ जाय। कमरेज से ठीक सामने तापी नदी के दक्षिण तट पर कठोर नामक ग्राम है। कठोर से सायण नामक ग्राम लगभग ४ मील की दूरी पर है। सायण बी. बी. सी. आई. रेल्वे का एक स्टेशन है। सायण से पश्चिम देढ़ दो मील की दूरी पर परिया ग्राम है। हमारी समझमें शासन पत्र कथित पर्याय ग्राम वर्तमान परिया है। क्यों कि पर्याय का परिया बनना अत्यंत सुलभ है। इस परिवर्तनको निश्चित करने के लिये परिवर्तन नीति को भी काममें लानेकी आवश्यकता नहीं है। क्यों कि पर्याय के अन्तरभावी यकार का परित्याग होकर परिया बना है। इस प्रदेशमें जयसिंह तथा उसके पुत्रों के अधिकारका होना अकाट्य सत्य है। अतः हम निःशंक होकर वर्तमान परिया को शासन पत्र कथित पर्याय मानते हैं। परन्तु दुर्भाग्य से शासन पत्र कथित विजयपुर का परिचय प्राप्त करनेमें हम असमर्थ हैं।

प्रदत्त ग्राम पर्याय का अवस्थान निश्चित होते ही जंबुसरको हम शासन पत्र कथित जंबुसर घोषित करते हैं। और पाश्चात्य विद्वानों की धारणा कि यह शासन पत्र बनावटी है को भ्रान्त और आधार शून्य प्रकट करते हैं।

शासन पत्र कथित जंबुसर आदि ग्रामों के स्थानादिका विवेचन करने पश्चात इसकी तिथि का विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। इसकी तिथि संवत ३६४ है। हमारे पाठकों को ज्ञात है कि जयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र युवराज शिलादित्य के संवत ४२१ और ४४३ के दो लेख द्वितीय पुत्र मंगलराजका शक ६५३ का एक लेख और तृतीय पुत्र पुलकेशी के शक ४६० के लेखका हमें परिचय है। कथित लेखों का संवत विक्रम ७२७, ७४६, ७८८, और ७६६ हैं। अतः प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत शासन पत्रका संवत ३९४ कौनसा संवत है। यह अज्ञात संवत्सर नहीं हो सकता क्यों कि पुल-केशी के लेख के विवेचन में हम दिखा चुके हैं कि उक्त अज्ञात संवत्सर और विक्रम संवत्सर का अन्तर ३०६ वर्ष का है। संभव है यह गुप्त संवत्सर हो। गुप्त संवत मानने से इसे विक्रम बनाने के लिये विक्रम और गुप्त संवत का अन्तर ८८ वर्ष इसमें जोड़ना होगा। ३९४+८८=४८२ प्राप्त होता है। अतः यह गुप्त संवत्सर नहीं। कदाचित यह शक संवत हो। शक मानने से इसमें शक और विक्रम के अन्तर १३५ को जोड़ना होगा। अतः ३६४=१३५=५२६ उपलब्ध होता है। अतः यह शक संवत भी नहीं है। अब केवल शेषभूत वल्लभी संवत रह गया है। यदि वल्लभी संवत मानने से भी इस संवत का क्रम नहीं मिला तो हमें हार मानकर इस शासन पत्र को जाली मानना पड़ेगा। वल्लभी और विक्रम संवत का अन्तर ३७५ वर्षका है। अतः प्रस्तुत संवत ३६४–३७५ –७६९ विक्रम होता है। इस संवत का जयसिंह के तिथि क्रमसे क्रमभी मिल जाता है। परन्तु तिथि क्रमके मिलने बाद भी एक दूसरी विपत्ति सामने आकर खड़ी होजाती है। वह विपत्ति यह है कि प्राप्त विक्रम संवत ७६६ जयसिंह के द्वितीय पुत्र मंगलराज के राज्य काल में पड़ता है। क्यों कि उसका समय विक्रम ७४६ से ७८६ के मध्य है।

इसका समाधान यह है कि जयसिंह ने अपने चौथे पुत्र बुद्धवर्मा को जागीर दिया होगा। और उसका पुत्र उसकी मृत्यु पश्चात अपने पिताकी जागीरका उत्तराधि-

कारी हुआ होगा। परन्तु इस संभावनाका मूलोच्छेद शासन पत्र के वाक्य 'स्व बाहुबलोपार्जित राज्य' से होता है। क्यों कि विजयसिंह स्पष्ट रूपसे अपने बाहुबलके प्रताप से राज्य प्राप्त करनेका उल्लेख करता है। इस संबंध में हम कह सकते हैं कि जयसिंहकी मृत्यु पश्चात मंगलराज विक्रम ७४९ में गद्दीपर बैठा तो संभवत बुद्धवर्मा से उसका मतभेद हो गया। और कदाचित उसने बुद्धवर्माकी जागीर के साथ कुछ छेड़छाड़ की हो। जिसका विजसिंह ने अपनी बाहुबलसे दमन कर अपने अधिकार की रक्षा की हो। अथवा यह भी संभव है कि विजय और मंगलराज का मतभेद हुआ हो। पैत्रिक जागीर का अधिकार प्राप्त करने पश्चात विजयने किसी छोटे सामन्तको मार उसके अधिकार को अपने अधिकार में मिला अपने विजय के उपलक्ष में इस शासन पत्र को प्रचलित किया हो। हमारी समझमें यही यथार्थ प्रतीत होता है। किन्तु यह भी हम निश्चय के साथ कह सकते हैं कि शासन पत्र प्रचलित करते समय विजयका मंगलरज के साथ कुछभी संबंध नहीं था। वह पूर्ण स्वतंत्र था वरन उसके शासन पत्र में मंगलराज के नामोल्लेख के अभाव के स्थान में उसे अधिराज रूपसे स्वीकार किया गया होता।

श्री नागवर्धनका दान पत्र ।

प्रथम पत्रक ।

१ ॐ स्वस्ति । जयत्यविष्कृतं विष्णोर्वाराहं क्षोभितार्णवं । दक्षिणोन्नत

२ दंष्ट्राग्र विश्रान्तं भुवनं वपुः । श्रीमतां सकल भुवन संस्तूयमान मा

३ नव्य सगोत्राणां हारिती पुत्राणां सप्त लोक मातृभिः सप्तमातृभि

४ रभिवर्धितानां कार्तिकेय परिरक्षणावाप्त कल्याण परंपराणां

५ भगवन्नारायणप्रसाद समासादित वराह लाञ्छनेक्षण

६ क्षणवशी कृता शेष महीभृतां चौलुक्यानां कुलमलंकरिष्णोर

७ श्वमेधावभृथस्नानपवित्रीकृतगात्रस्य सत्याश्रय श्रीकीर्तिवर्म्म

८ राजस्यात्मजोऽनेक नरपति शतमकुटतर कोठि घृष्ठ चरणारवि

९ न्दो मेरु मलय मन्दर समान धैर्योऽहरहराभि वर्द्धमान वर करि रथ

१० तुरग पदाति बलो मनोजवैक कंन्ठ चित्राख्यः प्रवर तुरंग

११ मेणो पार्जित स्वराज्यविजित चेर चोल पण्ड्य क्रमागत राज्यत्र

१२ यः श्रीमदुत्तरापथाधि पति श्री हर्ष
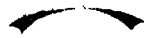
श्री नागवर्धनका दान पत्र ।

द्वितीय पत्रक ।

१३ पराजयोपलब्धा परनामधेयः श्री नागवर्धनपादानुध्या

१४ तपरम माहेश्वरः श्री पुलकेशी वल्लभः तस्यानुजो भ्राता विजिता

१५ रि सकलपक्षो धराश्रयः श्री जयसिंह वर्म्मराजः तस्य सूनुः त्रिभुवनाश्रयः

१६ श्री नागवर्धनराजः सर्वानेवागामी वर्त्तमान भविष्यांश्च नरप

१७ तीन् समनुदर्शयत्यस्तु वः संविदितं यथास्माभिर्गोपराष्ट्र विषयान्त

१८ पाति बलेग्रामःसोद्रक सपरिकर अचाट भट्ट प्रवेश्य आचन्द्रार्काणर्व

१९ क्षिति स्थिति समाकालिन मातापित्रोरुद्दि श्यात्मनश्च विपुलपुण्य यशोभि

२० वृद्ध्यार्थं बल्लमकुंर विज्ञप्तिकया कापालेश्वरस्य गुगुल पूजा निमित्त

२१ तन्निवासि महाव्रतिभ्य उपभोगाय सलिल पूर्वकं प्रतिपादित स्तदस्मद्वंश्यै

२२ रन्यैश्चैवागामी नृपतिभिःशरदाभ्र चंचलं जीवितमा कलय्यायमस्म-द्दायोनु मन्तव्य ।

२३ प्रति पालितव्यश्चेत्युक्तं भगवताव्यासेन । बहुभि र्वसुधाभुक्ता राजाभिस्स

२४ गरादिभिः । यस्य यस्य यदाभूमिः तस्य तस्य तदा फल मिति ।

२५ स्वदत्तां परदत्तांवायो हरते वसुन्धरां । षष्टि वर्षसहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ।

छायानुवाद ।

कल्याण हो । वाराह रूप भगवान विष्णुकी, जिन्होंने समुद्रमंथन किया और अपने ऊपर उठे हुए दक्षिणदन्त के अग्र भागपर वसुन्धराको आश्रय दिया, जय हो ! समस्त संसारमें प्रशंसा प्राप्त मानव्य गोत्र संभूत हारिती पुत्र, जो सात माताओंके समान सप्त मातृकाओं द्वारा परिवर्धित, भगवान कार्तिकेय द्वारा संरक्षित, भगवान नारायण के प्रसाद से सुवर्ण वाराहध्वज संप्राप्त—जिसके देखने मात्र से शत्रु वशीभूत होते हैं—उस चौलुक्य वंशका अलंकार—जिसका शरीर अश्वमेधावभृथ स्नान से पवित्र हुआ है और जो सत्य का आश्रय है—श्रीमान कीर्तिवर्माका पुत्र—जिसने अनेक राजाओं के मुकुटों को अपने पग तलमें किया है, जो मेरु और मन्दर के समान धैर्यशाली तथा नित्य वृद्धिमान है, जिसकी सेनामें गजारोही, अश्वारोही रथी और पदाति हैं, एवं जिसने वायु समान वेगवान चित्रकंठ नामक अश्वपर आरूढ़ हो अपने शत्रुओंका मर्दन कर स्वराज्य के अपहृत भूभागको स्वाधीन किया है प्रथम केरल, चोल और पांड्य राज्यत्रयको पद दलित किया है और अन्ततोगत्वा उत्तरापथ के स्वामी श्री हर्षको पराभूत कर नवीन विरुद धारण किया है—श्री नागवर्धन का पादानुध्यात परम माहेश्वर श्री पुलकेशी वल्लभ है। उसका छोटाभाई राजा श्री जयसिंह वर्मा जिसने अपने भाई के शत्रुओं के समस्त मित्र राजाओंकी संमिलित सेनाको पराभूत किया । और धराका आश्रय बन धराश्रय विरुद ग्रहण किया । उसका पुत्र त्रिभुवनाश्रय राजा नागवर्धन समस्त वर्तमान और भावी राजाओंको ज्ञापन करता है कि हमने गोप राष्ट्र विषयका बलेग्राम नामक ग्राम समस्त भोग भाग हिरण्यादि सपरिकर सहित—आचार्य भट्ट की प्रेरणासे—यावत चन्द्र सूर्य तथा समुद्र और भूमि की स्थिति पर्यन्त—भगवान कपालेश्वर के पूजनार्चन निर्वाहार्थ तथा कपालेश्वर के महाव्रतियों के उपभोगार्थ—अपने माता पिता तथा आत्म पुण्य और यश की वृद्धि अर्थ जलद्वारा संकल्पपूर्वक प्रदान किया है । हमारे वंशके तथा अन्य वंशके भावी राजाओंको उचित है कि लौकिक ऐश्वरको नश्वर मान हमारे इस दान धर्मका पालन करें क्योंकि भगवान व्यासने कहा है—सगरादि अनेक राजाओंने इस वसुन्धराका भोग किया है, परन्तु वसुधा जिसके अधिकारमें जिस समय रहती है—उसको ही भूमिदानका फल मिलता है । जो मनुष्य अपनी दी हुई अथवा दूसरे की दी हुई भूमिका अपहरण करता है वह साठ हजार वर्ष पर्यन्त विष्ठामें कृमि बनकर वास करता है ।

विवेचन ।

प्रस्तुत लेख चौलुक्यराज नागवर्धन का दान पत्र है। इस के द्वारा दाताने कपालेश्वर महादेव के पूजनार्चन निर्वाहार्थ गोप राष्ट्र विषय का बलेग्राम नामक ग्राम दान दिया है। लेख वर्तमान नासिक जिला के निर्पाण नामक ग्राम से मिला था। इसका दोवार प्रकाशन बम्बे रायल एसियेटिक सोसाइटी के जोर्नल मे हो चुका है। प्रथमवार बालगंगाधर शास्त्री ने भाग २ पृष्ट ४ और द्वितीय वार प्रो. भंडारकर ने भाग १४ पृष्ट १६ मे प्रकाशित किया था।

लेख ८.५/८X५.३/५ आकार के दो ताम्र पटोंपर उत्कीर्ण है। दोनो पट कडियोंके सयोग से जुडे है। कडियो के उपर राज मुद्रा है। उसमे श्री जयाश्रय वाक्य अंकित है। उक्त वाक्य के उपर चन्द्रमा और निम्न भागमे कमल की आकृति बनी है। प्रथम पटकी लेख पक्तियां १२ और द्वितीय पट की १६ है। इस की शैली प्रचलित चौलुक्य शैली है। भाषा संस्कृत और लिपी गुजराती है।

लेख का प्रारम्भ चौलुक्यों के कुलदेव वाराह रूप भगवान विष्णुकी प्रार्थना और अन्त दान धर्म के फलाफल से किया गया है। लेख मे लेख की तिथि नही है। साथही लेखक और दूतक के परिचय का अभाव है। एवं प्रदत्त ग्राम की सीमा आदि भी नही दी गई है। कथित त्रुटियां विशेष चिन्तनीय है। भगवान वाराह की प्रार्थना के अनन्तर चौलुक्य वंश की परंपरा वर्णन करने पश्चात अश्वमेधावभृथ्य स्नान द्वारा शरीर पवित्र करनेका उल्लेख है। एवं उक्त प्रकारसे पवित्रभूत शरीरवाले राजा का नाम कीर्तिवर्म्मा अंकित किया गया है। लेख कीर्तिवर्म्माके सत्याश्रय पुलकेशी और धराश्रय जयसिंह नामक दो पुत्र बताता है। एवं दाता के पिता जयसिंह को लेख अपने बडे भाई पुलकेशी के शत्रुओं का नाश करने वाला प्रगट करता है। लेख मे दाता की वंशावली उस पर्यंत निम्न प्रकार से है।

वंशावली।
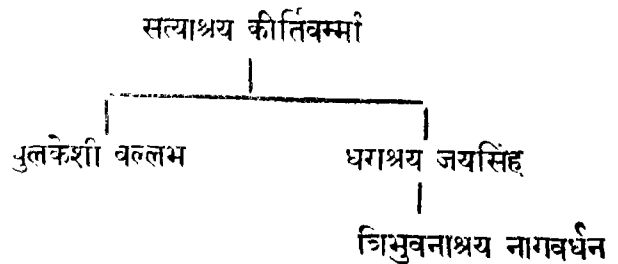
हम उपर बता चुके है कि लेख मे तिथि, लेखक और दूतक आदि का अभाव विशेष चिन्तनीय है। परन्तु हमारी समझ मे लेखका कीर्तिवर्म्मा का विरुद सत्याश्रय, पुलकेशी द्वितीयके घोडे का नाम चित्रकंठ और धराश्रय जयसिंह को उसका भाई बताना इसे शंका महोदधी के

महान भवरमे डाल देता है। कितने विद्वान लेखकी अयथार्थताकी शंकासे लेखकी वंशावली गत दोपरापरिहर्थ कीर्तिवर्म्माके पुलशी, जयसिंह, बुद्धवर्म्मा और विष्णु वर्द्धन नामक चार पुत्रोंका होना प्रकट करते हैं। एवं प्रकट करते है कि पुलकेशी ने जिस प्रकार विष्णु वर्धनको वेंगी मंडल का सामन्त बनाया था उसी प्रकार जयसिंह को गोप राष्ट्र का और बुद्धवर्म्मा को उत्तर कोंकण का बनाया था।

परन्तु हमारी समझ मे इस प्रकार वंशावली गत दोष परिहार करने से त्राण प्राप्त नही होगा। क्योंकि सैकडों की संख्या मे प्राप्त चौलुक्योंके शासन पत्र इसका विरोध करते है। चाहे आप पश्चिम या पूर्व चौलुक्य वंश के शासन पत्रोंको लेवें नतो आपको कीर्तिवर्म्मा का विरुद सत्याश्रय मिलेगा और न उसके अश्वमेधावभृत्य स्नान कृत पवित्र भृत शरीरका परिचय मिलेगा। अन्यान्य लेखों को पटतर करने पर भी केवल कीर्तिवर्म्मा के पुत्र पुलकेशी द्वितीय के विविध शासन हमारे कथन का समर्थन करेंगे। हम यहां पर अपने समर्थन मे बेगम बाजार हैदराबाद दक्षिण से प्राप्त पुलकेशी द्वितीय के शासन पत्र का अवतरण करते है "अश्वमेधावभृत्थ स्नानपवित्रीकृत गात्रस्य सत्याश्रय श्री पुलकेशी बल्लभ महाराजस्य पौत्र: पराक्रमाक्रान्त बनवा स्यादि पर नृपति मंडल प्रतिबद्ध विशुद्ध कीर्तिपताकस्य कीर्तिवर्म्म बल्लभ महाराजस्य तनयो नय विनयादि गुण विभूत्याश्रय श्री सत्याश्रय पृथिवी वल्लभ महाराज समर शत संघट संसक्त पर नृपति पराजयोपलब्ध परमेश्वरापर नामधेय"। उधृत वाक्य हमारी धारणाका समर्थन पूर्णत: करने के साथही प्रस्तुतलेख के कथन "पुलकेशी चित्रकठ नामक अश्व पर आरुढ हो" का मूलोच्छेद करता है।

यद्यपि पुलकेशीके चित्रकंठ घोडे पर चढने और कीर्तिवर्म्मा के अश्वमेधावभृत्थ स्नान कृत पवित्र शरीर होने तथा सत्याश्रय विरुद का खंडण पर्याप्त रूपेण उपरोक्त वाक्य से होता है तथापि हम यहां पर अपने समर्थन मे पुलकेशी द्वितीय के पुत्र विक्रमादित्य प्रथमके बेगम बजार हैदराबाद दक्षिणसे प्राप्त शासन पत्रका निम्न वाक्य "अश्वमेधावभृत्थ स्नान पवित्री कृत गात्रस्य श्री पुलकेशी बल्लभ महाराजस्य प्रपौत्र: पराक्रमाक्रान्त बनबास्यादि पर नृपति मंडल प्रणिबद्ध विशुद्ध कीर्ति पताकस्य श्री कीर्तिवर्म्म बल्लभ महाराजस्य पौत्र: समर संसक्त सकलोत्तरापथेश्वर श्री हर्षवर्धन पराजयोपलब्ध परमेश्वरापरनामधेयस्य सत्याश्रय श्री पृथिवी बल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वरस्य प्रिय तनय: चित्रकंठाख्य प्रवर तुरंग मेनैकेनैव प्रेरितोऽनेक समर मुखेपु रिपु नृपति रुधिरजलास्वादन ....विक्रमादित्य:" का अवतरण करते है। अवतरित वाक्य हमारी पूर्व कथित धारणाका समर्थन करनेके साथही चित्रकंठ घोडे का सम्बन्ध विक्रमादित्य प्रथम के साथ जोडता है।

हमारी समझमे आलोच्य लेखके कथन "कीर्तिवर्म्मा अश्वमेधावभृत्थ स्नानकृत पवित्र शरीर तथा पुलकेशी द्वितीय चित्रकंठ घोडे का स्वामी था" की अयथार्थता पर्याप्त रूपेण सिद्ध हो चुकी। अत: हम इस सम्बन्धमे और प्रमाण आदिका अवतरण न कर वंशावलीकी अयथार्थता प्रदर्शन करने मे प्रवृत्त होते है। पूर्वोद्धृत वाक्य द्वयसे विक्रमादित्य पर्यन्त चार नाम प्राप्त होते हैं। प्राप्त चार

व्यक्तियों का सम्बन्ध स्पष्ट रूपेण वर्णीत है। पुलकेशी द्वितीयके शासन पत्र मे उसे पुलकेशी प्रथम का पौत्र और कीर्तिवर्म्मा का पुत्र कहा गया है। उसी प्रकार विक्रमादित्य के शासन पत्र मे उसे पुलकेशी प्रथमका प्रपौत्र, कीर्तिवर्म्माका पौत्र एवं पुलकेशी द्वितीय का प्रिय तनय बताया गया है। साथ ही विक्रमादित्य को चित्रकंठ घोड़े पर आरुढ होने वाला वर्णन किया गया है।

आलोच्य शासन पत्र को धराश्रय जयसिंह के भाई के पास चित्र कंठ घोडा का होना स्वीकार है। उधर धराश्रय जयसिंह के अन्य पुत्र युवराज शिलादित्य के पूर्व प्रकाशित शासन पत्र मे धराश्रय जयसिंह को स्पष्ट रूपेण विक्रमादित्य का भ्राता और पुलकेशी का पुत्र बताया है। ऐसी दशा मे हम निश्शंकोच हो आलोच्य शासन पत्र की वंशावली को दोषपूर्ण बताते है। आलोच्य लेख को, हम उपर बता चुके है; वंशावली गत दोष अन्यान्य दोषो के साथ मिल कर शंका महोदधि के महान भवर डाल देता है। अब विचारना है कि प्रस्तुत शासन पत्र में इस प्रकार की त्रुटियां क्यो पाई जाती है।

यद्यपि लेख कथित त्रुटियों के कारण शंका महोदधि के महान भवंर में पड़ा है। इसकी यथार्थता संदिग्धता को प्राप्त है। तथापि हमारी समझ मे लेख मे कितनी ऐसी साम्यता आदि पाई जाती हैं जिनको दृष्टि कोण मे लाते ही लेख शंका महोदधि को अपने आप उत्तीर्ण कर जाता है। हमारी समझ सम्यतादि का दिग्दर्शन कराने के पूर्व इसकी तिथि आदि अन्य त्रुटियों का विचार करना ही उत्तम प्रतीत होता है॥ अत: हम लेख का समय विवेचन सर्व प्रथम हस्तगत करते हैं।

लेखमें दान दाताको धराश्रय जयसिंहका पुत्र और राजा नामसे अभिहित किया गया है। अत: यह स्वत: सिद्ध है कि प्रस्तुत लेख दान दाता के राजा होने पश्चात लिखा गया है। साथही यही भी मानी हुई बात है कि दाता अपने पिता की जीविता अवस्था मे राजा नामसे कदापि अभिहित नहीं हो सकता। इस हेतु लेख दाता के पिता की मृत्यु पश्चात लिखा गया है। पूर्व मे युवराज शिलादित्य के शासन पत्रका विवेचन करते समय सिद्ध कर चुके है कि धराश्रय जयसिंह शक ६१८ के आसपास पर्यन्त जीवित था। अत: यह लेख अवश्य शक ६१८ के बाद लिखा गया होगा। क्योकि धराश्रय जयसिंह की मुत्यु होनेके लक्षण दिखते है। जयसिंह का उत्तराधिकार उसका दूसरा पुत्र मंगलराज हुआ था। एवं मंलराजकी समकालितामें ही जयसिंह के पौत्र और बुद्धवर्मा के पुत्र विजयराज को राजा रूपमें शासन पत्र प्रचलित करते पाते है। संभवत: जयसिंह ने अपनी मृत्यु समय मंगलराज को उत्तराधिकारी और अन्य पुत्रों बुद्धवर्म्मा, नागवर्धन और पुलकेशी आदि को जांगीर प्रदान किया हो और वे अपने अधिकृत स्थानोंपर राजा रुपसे शासन करते हों। यदि ऐसी बात न होती तो बुद्धवर्म्माका पुत्र विजय राज अथवा नागवर्धनको इस प्रकार शासन पत्र शासित करते न पाते।

आलोच्य शासन पत्र की तीथि संबन्धी दोष का आनुमनिक रुपेण समाधान करने पश्चात हम लेख की वंशावली गत दोष के परिहार मे प्रवृत होते है। प्रस्तुत लेख की लिपी गुर्जर

लिपी है । अतः इसके लेखक को उक्त लिपी का ज्ञान था और वह संभवतः गुर्जर था। गुर्जर लिपी का नागवर्धन के प्रदेश मे प्रचार नही था। इस हेतु लेखक उसके यहां नवागन्तुका था। उसे चौलुक्यों के इतिहास, और वंशावली आदि का ज्ञान नही था। उसकीही अज्ञानता वसात वंशावली मे दोष आगया है।

वंशावली गत दोष को लेखक के मत्थे डालने पर भी हमारा त्राण नहीं क्योंकि गुर्जर प्रदेश मे रहने वाले के चौलुक्यों के इतिहास से अनभिज्ञ होने की संभावना को मानने की प्रवृती नही होती। कारण कि गुर्जर प्रान्त चौलुक्यों के प्रभाव से दूर नही था। दान दाता के पिताका राज्य लाट प्रदेश मे था। जहांपर दान दाताके भाई और भतीजे लेख लिखे जाते समय शासन करते थे। इतनाही नही उनका अधिकार लाट मे लगभग ३४-३५ वर्ष पश्चात पर्यन्त स्थित होनेके प्रत्यक्ष चिन्ह पाये जाते हैं। इनका सबन्ध भी वातापिके साथ बना हुआ था। क्यों कि हम मंगलराज के भाई और उत्तराधिकारी पुलकेशी को दक्षिणापथ मे प्रवेश करने वाले अरबों के साथ युद्ध करते पाते हैं। ऐसी दशा मे हम लेखक को चौलुक्य इतिहास से अनभिज्ञ कदापि नहीं मान सकते।

अब विचारना है कि आलोच्य लेख की लिपी से परचित पर चौलुक्यों के इतिहास से अनभिज्ञ यदि गुर्जर नहीं था तो कौन था। हमारी समझमें प्रस्तुत लेखकी लिपीको गुर्जर लिपी न मान कैथी लिपी माननाहीं युक्ती संगत प्रतीत होता है। कैथी लिपी प्रदेश निवासी का चौलुक्यों के इतिहास से अनभिज्ञ होना असंभव नही। क्योंकि उक्त प्रदेश में चौलुक्यों का प्रभाव नहीं था। अब देखना है कि वह कौनसाप्रदेश है जहांपर गुर्जर लिपी से मिलती जुलती कैथी नामक लिपी का प्रचार था। आलोच्य कैथी लिपीका प्रचार चौलुक्योंके प्रभाव से अति दूर मगध प्रदेशमें था और आज भी है। कैथी लिपी और गुर्जर लिपी के मध्य पूर्णरूपेण साम्यता है। दोनो के दो तीन अक्षरों को छोड कर सब अक्षर एक है। अतः हम आलोच्य लेख के लेखक को गुर्जर न मान मागधी घोषित करते है।

आलोच्य लेख की लिपी को मागधी "कैथी" लिपी घोषित करते हीं प्रश्न उपस्थित होता है।। गुजराती और कैथी लिपीयोंका अति दूरस्थ दो भिन्न प्रान्तो मे क्योंकर प्रचार हुआ ? गुर्जर लिपी कैथी लिपी की जननी या कैथी लिपी गुर्जर लिपी की जननी है ? गुर्जरों की प्रवृती अपनी लिपी को कैथी की जननी बतानेकी अधिक होगी और हम उन्हे उनकी इस प्रवृती के लिये दोष नही दे सकते क्योकि यह मानव स्वभाव है। उधर कैथी लिपी वालों कीं प्रवृती अपनी लिपी को गुर्जर लिपी की जननी बताने की होगी। परंतु इस का निर्णय करने के पूर्व हमे विचारना होगा। "किसी देश अथवा जाति की लिपी अथवा संस्कृती का प्रभाव अन्य देश और जाति पर तब तक नही पडता जब तक प्रभावान्वित देश अथवा जाति प्रभाव डालने वाले देश या जाति के राज नैतिक प्रभाव मे कुछ समय के लिये नहो। कथित कुछ समय शताब्दियो का होना आवश्यक है"। क्या

वर्तमान गुर्जर प्रदेश का राजनैतिक प्रभाव कैथी लिपी वाले प्रदेश मगध, मिथिला, बनारस, अवध आदि में किसी समय था। इस प्रश्न का सिधा उत्तर है कि भारतीय इतिहास उच्चे स्वर मे घोषित करता है कि उक्त प्रदेश गुर्जर प्रदेशके प्रभाव में कदापि नहीं थे बरन गुर्जर प्रदेश ही सेकडो वर्ष पर्यंत कैथी लिपीवाले प्रदेशों के राजनैतीक यूप मे बंधा था। इतनाही नहीं ज्ञात ऐतिहासिक काल से लेकर आज पर्यंत का इतिहास प्रगट करता है कि गुजरात प्रदेश मे राज्य करने वाले मौर्य, क्षत्रप, त्रयकूटक, सैन्द्रक गुप्त, मैत्रक, गुर्जर, चौलुक्य और राष्ट्रकूट आदि कोईभी वंश गुर्जर प्रदेश का निवासी नहीं था।

कथित राजवंशोंमेसे मौर्य, गुप्त और मैत्रक मगध-अवध निवासी, त्रयकूट और सेन्द्रक संभवतः मध्य प्रान्त वासी, चौलुक्य और राष्ट्रकूट दक्षिणापथ वासी थे। हां गुर्जर वंश और क्षत्रपोंका मूल निवास अद्यावधि निश्चित नहीं है। ऐसी दशा में नतो सैन्द्रक या त्रयकूटक और न चौलुक्य या राष्ट्रकूट गुर्जर लिपी का प्रचार करने वाले माने जा सकते है। इन वंशो के हटते ही गुर्जर और क्षत्रप वंश सामने आता है परन्तु इन दोनों को हम गुर्जर लिपी का प्रचार करने वाला नहीं मान सकते। कारण कि यद्यपि इनका राज्य गुर्जर प्रदेश में था परन्तु इनके प्रभाव का मगध आदि कैथी लिपी प्रदेश में अत्यन्ताभाव था। कथित चौलुक्य आदि राज वंशों के विचार क्षेत्र से हटतेही केवल मौर्य गुप्त और मैत्रक वंश त्रय शेषभूत रह जातें हैं। इन तीनों वंशों का राजनैतिक प्रभाव गुर्जर प्रदेश में लग भग एक हजार वर्ष रहा। संभव है इन तीनो मे से किसी ने मगध प्रवासी होने के कारण अपनी लिपी का प्रचार अपने अधिकृत काठियावाड—गुर्जर प्रदेशो में किया हो।

हम मौर्य तथा गुप्तों को कैथी लिपी का गुर्जर प्रदेश में प्रचार करनेवाला नहीं मान सकते। हां मैत्रकोंको हम निश्शंकोच होकर कैथी लिपी का गुर्जर प्रदेश में प्रचार करने वाला घोषित करते हैं। हमारी इस घोषणा का कारण प्रबल है। काठियावाड प्रदेश मे मैत्रक वंश की स्थापना करने वाला भटारक था। वह गुप्तों का सेनापति था। वह कठियावाडमें नवागन्तुक था। वह गुप्तो द्वारा कठियावाडमें शासक रूपसे भेजा गया था। अतः जब स्वतंत्र बना तो उसने अपनी लिपी का प्रचार अपने अधिकृत प्रदेश में किया। एवं काल पाकर उसकी लिपी गुर्जर लिपी नामसे प्रख्यात हुई।

हमारी कथित धारणा शेख चिली की उड़ान मात्र नहीं है। बरन हमारे पास उसके प्रबल कारण है। मैत्रक वंश को पश्चात्य और प्राच्य अनेक विद्वानों ने अपनी अभिरुची के अनुसार किसी ने विदेशी, किसी ने गुर्जरोसे अभिन्न, किसी ने हून और किसी ने अन्य जातिका बताया है। जिनकी प्रवृती भारतीयता के प्रति अधिक झुकी थी तो उन्होंने मैत्रकोंको पौराणिक सूर्य्य वंश से मिलाकर उन्हे शिशोदियों का पूर्वज घोषित किया है। परन्तु कबि सोढल कृत उदय सुन्दरी की उपलब्धी ने सब को मौन बना दिया है। कथित पुस्तक का लेखक अपने को मैत्रक राज वंश का वंशधर और अपनी जाति

का नाम आलम कायस्थ लिखता है। हमारी समझमें यद्यपि हमने अपनी पुस्तक "नेसनलिटी ऑफ दी वल्लभी कींगस" में पूर्ण रुपेण मैत्रकों की जातीयता पर प्रकाश डाला है। तथापि यहां कवि सोढलके कथन का अवतरण देना असंगत नही वरन विषय को स्पष्ट करने वाला होगा। इस हेतु यहां पर उसका अवतरण देते है।

> वंशस्य सच्चरितः सारवतः किमंग
>
> संगीयते सुललितःकुटिलस्य तस्य।
>
> येनान्तरा धृतभरेण धराधिपत्ये
>
> राज्ञां जयत्यहत विस्तरमातपत्रं ॥
>
> किंबहुना। तृतीय मकृतोन्मेष
>
> कायस्थः अति लोचनं।
>
> राज वर्गो वहन्नेष भवेदत्र महेश्वरः॥

उधृत वाक्य में कवि ने अपनी जाति का परिचय दिया है। हां मानते है कि कायस्थों के प्रचलित जातीय कथानकसे इसमे कुछ अन्तर है। हमारी समझमे वह अन्तर नगण्य है क्योंकि अपनी मातृभूमि से हजारो मिल की दूर पर रहने तथा अपने जातीय बन्धुओं से संबंध विच्छेद हो जाने के कारण अपने जातीय कथानक में अन्तराभास का संमेलन करना असंभव नहीं है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे सामने अग्निकुल मानने वाले चौलुक्य, चौहान, प्रतिहार और परमार आदि राज वंश है। इन चार राजवंशों में परमारो को छोड किसी के शासन पत्र आदि में उनका अग्निकुंड से उत्पन्न होना नहीं पाया जाता। पर आप उनमेंसे किसी से पूछें वे अपनेको अग्निकुल बतावेंगे। परमारोंके शासन पत्र आदि उन्हें अग्निकुण्ड संभूत बताते हैं पर ऐसा प्रकट करने वाले शासन पत्रों से पूर्व भावी शासन पत्रों में उनका भी अग्निवंशी होना नहीं पाया जाता। कवि सोढल के पूर्वज वल्लभी राजवंश के नाश पश्चात लाट देश में चले आये थे और वह अपने मातृक वंशमें आश्रित था। कवि का समय विक्रम की दशवी शताद्वि का प्रारंभ है। इस हेतु वल्लभी राजवंश की स्थापना और कवि सोढल के समय में लगभग ४४० वर्ष का अन्तर है। राजवंश के उच्छेद और कवि के समय में लगभग डेढ सौ वर्ष का अन्तर है।

कवि सोढल ने अपनी पुस्तक स्थानक (वर्तमान थाना) पति शिलाहार वंशी राजा मुंममुनि को अर्पण की थी। अतः कवि का आत्म परिचय के अन्तर्गत अपने को वल्लभी राज वंशोद्भूत—केवल इतना हीं नहीं शेष वंशधर–प्रकट करना ध्रुव सत्य है। यदि ऐसी बात न होती तो लाट के चौलुक्य और स्थानक के शिलाहार जिनके साथ उसका घनिष्ट संबध था, एवं अन्यान्य राजवंश तथा जन समुदाय और विद्वान प्रभृति उसके कथनका अवश्य हीं विरोध किए होते।

कवि के वंश परिचय के संबन्ध में हमारा विचार है कि कोईभी व्यक्ति अपने वंश परिचय को सौ डेढसौ वर्ष के अन्तर्गत नहीं भूल सकता, अतः उसका स्वदत्त परिचय निर्भ्रान्त है। हां उनकी बातें विलग हैं। जिनके वंशका कोई स्थान हीं नहो। यहां तो बातही दूसरी है, कवि का वंश, वल्लभी का प्रख्यात राजवंश है। जिसनें लगभग तीन शताब्दियों पर्यन्त बड़े गौरव के साथ कुशद्विप अर्थात वर्तमान काठियावाड़ और आनर्त वर्तमान खंभात और खेड़ा आदि प्रदेश में राज्य किया था। धर्म और न्याय परायणता में अद्वितीय था। विद्वानों को आश्रय प्रदान करने मे मुक्त हस्त था। दान धर्म में कर्ण का प्रतिद्वन्द्वी था। भट्टी ऐसे महाकवि जिसकी राजसभा के भूषण थे। जहां बौद्ध, जैन, और वेदानुयायी सम भाव से निवास करते थे। धार्मिक चर्चा नित्य प्रति हुआ करती थी। जो उत्तराधीश्वर श्री कंठ और कन्नौजाधिपति के वंश के साथ वैवाहिक संबन्ध सूत्र मे बंधा था। ऐसे प्रख्यात वंश का स्मृति चिन्ह शेष वंशधर के हृदय पट पर नहो यह कदापि माना नहीं जा सकता।

साधारण से साधारण वंश के वंशधर आज साभिमान अपने वंशका स्मृति चिन्ह अपने हृदयमें जीवित रखे हुए हैं। हजारों वर्ष व्यतीत होने के कारण कथानकमें यद्यपि नाना प्रकार की अनर्गल बातें घुसी हैं पर उसका चिन्ह लुप्त नहीं हुआ है। फिर कविको हम अपने वंश का स्मृति चिन्ह अन्यथा वर्णन करने वाला क्यों कर मान सकते हैं। अतः कविने जो अपना वंश परिचय दिया है, उसमें किन्तु परन्तु को स्थान प्राप्त होनेकी संभावना कालत्रय में भी नहीं है। इस हेतु कवि चित्र गुप्त वंशीय (वाल्मीकि) बालम कायस्थ था।

मैत्रक वंशकी जातीयता निश्चित होते हीं उसका मूल निवास कायस्थ जाति का केन्द्र स्थान सिद्ध होता है। कायस्थों का केन्द्र संयुक्त प्रान्त (अवध और काशी आदि) और विहार (मगध और मिथला आदि) था और है : जहां आज भी कैथी लिपी का प्रचार है।

आलोच्य शासन पत्र के लेखक और उसकी लिपी का निश्चय करने पश्चात हम पूर्व कथित साम्यतादि को लेते हैं। आलोच्य लेख की पंक्ति १० में दान दाता के पितृव्य को चित्रकंठ अश्व का स्वामी कहा गया है। विक्रमादित्य के शासन पत्र के पूर्वोद्धृत वाक्य में स्पष्ट रूपेण उसे उक्त घोडे का स्वामी माना गया है। प्रस्तुत लेख की पंक्ति १३ में दाता को नागवर्धनका पादानुध्यात कहा गया है। युवराज शिलादित्य के पूर्व प्रकाशित लेख की पंक्ति ७ में नागवर्धन पादानुध्यात बताया गया है।

इन साम्यता आदि तथा पूर्व कथित कारणों से हम शासन पत्र को यथार्थ घोषित करते है साथही शासन पत्र का पर्याप्त रूपेण विवेचन मान इतनेहीं से अलम् करते है।

लाटपति त्रिलोचनपाल

का

शासन पत्र।

ॐ नमो विनायकाय। स्वास्ति जयोऽभ्युदयश्च।

वाणंवीणाक्ष माले कमल महिमथो वीजपूरं त्रिशूलं
खट्वाङ्गं दान हस्त सहिताः पाणयो धारयन्तः॥
रक्षन्तु व्यंजयन्तः सकल रस मयं देव देवस्य चित्तं
नो चेदेवं कथं वा त्रिभुवन मखिलं पालितं दानवेभ्यः॥१॥

दधाति पद्ममथ चक्र कौस्तुभे गदामथो शंखमिहैव पंकजं।
हरिः स पातु त्रिदशाधिपो भुवं रसेषु सर्वेषु निशण्ण मानसः॥२॥

कमण्डलुं दण्ड मथ श्रुचं विभु
विभाति माला जपदत्त मानसः।
सृजत्यजोलोक मयोहितं रिपुं
रसैश्च सर्वैं रसितो विशेषतः॥ ३॥

कदाचिद्दैत्यै र्खेदोत्थ चिन्ता मंन्दर मन्थनात।
विरंचे श्चुलुकाम्भोधे राजरत्नं पुमान् भूत॥ ४॥

देव किं करवाणीति नत्वा प्राह तमेव सः।
समादिष्ठार्थ संसिद्धो तुष्ठः स्रष्टा ब्रवीच्चतं॥ ५॥

कान्यकुब्जे महाराज राष्ट्रकूटस्य कन्यकां।
लब्ध्वा सुखाय तस्यांत्वं चौलुक्याप्नु हि संततिं॥ ६॥

इत्थमत्र भवेत्त्वत्र संतति वितता किल।
चौलुक्यात्प्रथिता नद्याः स्रोतांसीव महीधरात्॥ ७॥

तत्रान्वये दपित कीर्तिरकीर्ति नारीं
संस्पर्श भीत इव वर्जितवान्परस्य।
बारप राज इति विश्रुत नामधेयो
राजा बभूव भुवि नाशित लोक शोकः॥ ८॥

श्री लाट देश माधिगम्य कृतानि येन
सत्यानि नीति वचनानि मुदे जनानाम् ।
तत्रानुरंज्य जनमाशु निहत्य शत्रून्
कोशस्य वृद्धि फलमार्थ निरन्तरं यः ॥ ९ ॥
तस्माज्जातो विजयवर्मतः गोगिराजः क्षितीशा
यस्मादन्ये मनु पतयः शिक्षता राजधर्मम् ।
यो गोत्रस्य प्रथम निलयो पालकोयः प्रजानां
यः शत्रूणामामित सहसो मूर्ध्नि पादं व्यधत्त ॥ १० ॥
आत्मभू रुद्धृता येन विष्णुनैव महाम्भसा ॥
वालिभिः सा समाक्रान्ता दान वैरिव वैरिभिः ॥ ११ ॥
प्रद्युम्न वन्मदन रूपधरोऽच्युतस्य
श्री कीर्तिराज नृपतिःस बभूव तस्मात् ।
यो लाट भूप पदवीमपि गम्यचक्रे
धर्मेण कीर्ति धवलानि दिगन्तराणि ॥ १२ ॥
सन्तान तन्तुषु प्रोताश्चौलुक्य मणयो नृपाः
तस्यां तु मणिमालायां नायकः कीर्तिभूपतिः ॥ १३ ॥
गो : पिण्डे भौतिकभूरि पदार्थायतने गुरौ ।
सूते क्षीरं शिशुकार्थं माना स्त्रीषु तथैव तम् ॥ १४ ॥
आजन्म दृष्टयाति मनोहरस्य
मुदा तथा पूर्वतः सर्वलोकः ॥
यथामृता पूर्ण घटीसमानं
नारिश्चताापि स्तुति विन्दुपातैः ॥ १५ ॥
समेऽपि स्पृहणीयत्वे पक्वान्नस्यैव योषिताम् ।
भोगस्तेन परस्त्रीणां मुच्छिष्टस्यैव वर्जितः ॥ १६ ॥
लग्नं तथा क्षमापति पाणि पादे स्थितं यथा वचसि रत्नहारैः
गौणं त्यजाद्भिः श्रुति कुण्डलाभ्यां कृत्वा पदं मुख्य मथास्थितैस्तै ॥ १७॥

आलम्बनीभूत महीधरास्तानुल्लंघ्य जुष्टं पतनं गुणौघैः ॥
कुतोऽन्यथा ते सहजा बभूवुः कथं च ते तत्सह वृद्धिमापुः ॥१८॥
स यौवनोन्मत्त गजेन्द्र पार्श्वाद्धावन्मनो मारय देव मेतत्
तस्मादृते हीन्द्रिय खेटकेन विलंघिता वैषयिकीन सीमा १९ ॥
कायेन गेहादि निभेन जीवो व्योमेव जन्तो व्यवधीयते स्म ॥
तस्मात्परास्मिन्न हमेव मत्वा लक्ष्मी समां योऽर्थि जनैरभुक्त २०॥
बाहुबलौ कोप गुरोश्च वासो वत्सस्तथा नम्र मवेक्ष्य चापं ।
दर्पोद्धतं मस्तक मेव येषां द्विषां छिनत्ति स्म रणे स वीरः २१ ।
पृष्ठं ददच्चाप मभिद्विषं यः प्रियं चकार द्विषति प्रयुक्तः ॥
लक्ष्यानुगा मार्गण पुंगवास्ते जाताः कृतार्थास्तत एव तस्मात् ॥ २२
तस्यासीद् विचार कीर्ति दयिता निस्त्रिंशहस्तस्य या
संग्रामे सभयेव हन्त महसा गच्छत्परेषाम् गृहम् ।
सा वाचापगमायतेन दधती दिव्यं प्रतापं पुरो
दृभ्रन्ता सप्त समुद्र मण्डल भुवं शुद्धेति गीता सुरैः ॥ २३ ॥
तस्माच्च वत्सराजो गुणरत्न महानिधि र्जातः ।
शूरो युद्ध महार्णवं मथनाय मन्दरः ख्यातः ॥ २४ ॥
आबाल्यादियमत्र मूर्त्ति भुवने भद्रैः समं श्रीः स्थिता
क्रीडाप्यत्र वधूरिव स्वविषयं प्रच्छादयन्ती सतीः ।
तामेवाधिकतां नपत्य विरता भर्तुः मनो जानती
सा विष्णोरिव वत्सराज नृपतेः सापत्न वर्जे स्थिता । २५ ।
सद्देकाम्बर दुस्थत्वे काश्चित्कोण श्रिता दिशः ।
इती वाच्छादयत्त्यागी वत्सेशः कीर्त्ति कर्पटैः ॥ २६ ॥
तस्याङ्ग संभवः श्रीमांस्त्रिलोचनपाति र्नृपः
भोक्ता श्री लाट देशस्य पाण्डवः कलि भूभुजां । २७ ।
हेमरत्न प्रभं छत्रं सोमनाथस्य भूषणम्
दीननाथ कृते सत्र मवारित मकारि च २८ ॥
त्यागेऽपि मार्गणा यस्य गुण ग्रहण गामिनः

सत्य धर्मो धवे वक्रः शौर्यगोपाल विक्रमः २९ ॥

अर्हो वृद्धस्य तस्यामन्शत्रवो विकलाः भृशम्
भोक्तु-स्तस्यैव ते चित्रं विहार बल शालिनः ३०

शत्रोः संगर भूषणस्य समरे तस्यासिना पातिते
मूर्धन्याशु गलत्सु कण्ठ वलया युक्तस्य पूर्ष्वलम्

तत्तेजोमय वन्हि तापित वपु स्तस्या सवर्णस्य तं
नूनं भाजन मुल्ललास सहसा खग्गोर्ध्वं हस्तं चलम् ॥ ३१ ॥

धर्म शीलेन तेनेदं चलं वीक्ष्य जगत्रयम् ।
गोभूहिरण्य दानानि दत्तानीह द्विजन्मनां ॥ ३२ ॥

शाके नव शतै युक्ते द्विसप्तत्यधिके तथा ।
विकृते वत्सरे पौषे मासे पक्षे च तामसे ॥ ३३ ॥

अमावास्या तिथौ सूर्य पर्वण्यंगार वारके ।
गत्वा प्रत्यगुदन्वंत्तं तीर्थे चागस्त्य सत्रके ॥३४ ॥

गोत्रेण कुशिकायात्रभार्गवाय द्विजन्मने ।
विश्वामित्र देवराता वादलः प्रवरास्त्रयः ॥ ३५ ॥

इमानुद्दहते ग्रामं माधवाय त्रिलोचनः ।
भिलीश्वर पथकान्त र्द्विचत्वारि संख्यके ॥ ३६ ॥

एरथाणा नव शत मदादुदक पुर्वकम् ।
समस्तायं ससीमान मघाटै स्तकाभि र्युतम् ॥ ३७ ॥

देव ब्राह्मणयोर्दायान्वर्जयित्वा क्रमागतान् ।
पूर्वस्यां दिशि नागाम्बा ग्राम स्तन्तिका तथा ॥ ३८ ॥

वटपद्रक माग्नेयां याम्यां लिङ्गवटः शिवः ॥
इन्द्रोन्थनतुनैऋत्यां बहुनादश्वा परे स्थित : ॥ ३९ ॥

वायव्यां टेम्बरूकं च सौम्यां तु तलपद्रकम् ।
ईशान्यां कुरूण ग्रामः सीमायां खेटकाष्टकम् ॥ ४० ॥

आघाटनानि चत्वारि आयैः सहसीमकैः
तस्मा द्विज वरस्य (अस्य) भुञ्जतो न विकल्पना ॥ ४१ ॥

कर्तव्या कैश्च न नरैः सार्धं साधु समाख्यकैः ।
अथैवं यदि लोप्तास्य स सदा पापभाजनम् ॥ ४२ ॥
पालनेही परो धर्मं हरणे पातकं महत् ॥ तथाचोक्तम् ॥
सामान्योऽयं धर्म सेतुं नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः ।
स्ववंशजो वा परवंशजो वा रामोवतः प्रार्थयते महीशाः ॥ ४३ ॥
कन्या मेकां गवामेकां भूमे रप्यार्ध मङ्गुलम् ॥
हरन्नरक माप्नोति यावदा भूत संप्लवम् ॥ ४४ ॥
यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रै धर्मार्थ कामादि यशस्कराणि ।
निर्माल्यवन्ति प्रति मानि तानि को नाम साधुः पुनराददीति४५॥
बहुभि र्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमि तस्य तस्य तदा फलम् ॥ ४६ ॥
लिखितंमयामहासान्धिविग्रहिकश्रीशंकरेण॥स्वहस्तोऽयंश्रीत्रिलोचनपालस्य

लाटपति श्री त्रिलोचनपाल

के

शासन पत्र

का

छायानुवाद।

भगवान विनायक को नमस्कार। कल्याण—जय और अभ्युदय हो।

भगवान देवाधि देव महादेव जिन के हाथों में— बाण, विणा, पद्म त्रिशूल खट्वाङ्ग वरदान और भयकी प्रचूर शक्ति है—अन्यथा वे किस प्रकार दानवो से संसारकी रक्षा कर सकते हे—रक्षा करे॥ १॥

भगवान हरि जिनके हाथों में शंख चक्र गदा और पद्म और गलेमें कौस्तुभ मणीकी माला है और जो समस्त संसार के मानस पर निवास करते हैं उक्त त्रिदशाधिप रक्षा करे २॥

भगवान चतुरानन ब्रह्मा जिनके हाथों में कमण्डलु दण्ड और श्रुवा है जो अपनी जप मालिकाकी दानाओ के संचार क्रमसे मंत्रो का उच्चारण तथा स्वयं अज होते हुए भी संसारकी हित कामनासे मानवी सृष्ठिकी रचना करते हैं—रक्षा करें ३॥

किसी समय ब्रह्मा के संध्या करते समय सूर्यार्धे प्रदान करने के लिये हाथके चुलुक में लिये हुए जल के दैत्यो के उपद्रव जन्य खेदात्मक रूप मन्दर के मन्थन से राज रत्नरूप पुरुष उत्पन्न हुआ ४॥

इस प्रकार भगवान ब्रह्मदेव के चुलुक से पैदा हुआ महा पुरुष ने हाथ जोड नमस्कार कर पूछा कि हे देव मुझे क्या करनेकी आज्ञा होती है। इसपर ब्रह्माने अपने समादिष्टार्थ अर्थात दैत्यो के उपद्रव समन को लक्ष कर आल्हादित हो आदेश दिया ५॥

हे चौलुक्य तुम सुखकी इच्छासे कान्यकुब्ज के राष्ट्रकूट वंशी महाराज की कन्या को प्राप्त करो और उससे यथेष्ट संतान तंतुका प्रसार करो। जिस प्रकार पर्वतसे निकली हुई नदिओं से पृथिवी परिपूर्ण है उसी प्रकार तुमसे उत्पन्न चौलुक्य वंशका संसार में विस्तार होगा॥ ६॥७॥

उक्त चौलुक्य वंशमे अतुल कीर्ति, परस्त्रिओं के संस्पर्श भय से भीत बारपराज नामक राजा हुआ। जिसने संसार के शोक को दूर किया॥ ८॥

उक्त बारप राज ने लाट देशमे जाकर अपनि निति निपुणता और भुजबलसे शत्रुओं का नाश कर प्रजा को आनंद दे राज कोशकी निरंतर वृद्धि की ॥६ ॥

उक्त विजयी बारप राज का पुत्र पृथिवी का पालक गोरगि राज हुआ। जिससे अन्यान्य राजाओंने राज नितिकी शिक्षा ग्रहण किया। उक्त गोरगिराज अपने वंशका प्रथम पृथिवी पालक हुआ और उसने अपने शत्रुओं के शिर पर पाद प्रहार किया ॥ १० ॥

पुनश्च गोरगिराज ने अपनी अधिकृता भूमि—जो बलवान दानव रूप बैरीओंसे आक्रान्त हुई थी-का बाराह रूप विष्णु के समान उद्धार किया ॥ ११ ॥

जिस प्रकार भगवान अच्युत (कृष्ण) के सकाशसे मदनने प्रद्युम्न रूपसे अवतार लिया था उसी प्रकार गोरगिराज से अतिरूपवान कीर्तिराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसने लाट देशका राज्य पाकर अपने सुन्दर कार्य रूप उज्वल कीर्ति के किरणों से दिशाओं को परिपूर्ण कर उज्वल बनाया ॥ १२ ॥

वंश तंतु में प्रोत चौलुक्य राजओं रूप मणिमाला के मध्य श्री कीर्तिराज नायकमाणी अर्थात सुमेरु मणि के समान हुथा ॥१३ ॥

कीर्तिराज के जन्म समय उसके मनोहर रूपको देख समस्त पुरजन और परिजन आनंदको प्राप्त हुए और जनता को उसके रूपकी प्रशंशा बारंबार करने परभी संतोष प्राप्त न होता था ॥१४ ॥

इस प्रकार अलौकिक रूप पाने परभी वह परस्त्रियों का संसर्ग उच्छीष्ट अन्नके समान परित्याग करने वाला हुआ ॥ १५ ॥

उसके पाणीपादो में धर्म इस प्रकार आश्रित था जिस प्रकार मनुष्य के हृदय पर रत्नहार आश्रय पाता है। एवं श्रुति अर्थात वेद उसके मुखसे निश्रित होकर कपोल मार्ग से श्रवण रन्ध्रमें प्रवेश करता था और उसका प्रवेश कर्णकुण्डलोंके कपोल पर संचार समान प्रतीत होता था॥१६॥

उसके गुणों से संतुष्ट हो धर्म महिधर के समान उसमें अचल रूप बनकर स्थित हुआ जिससे धर्मका उसमें सहज रूपसे आश्रित अर्थात स्वाभाविक रूपसे स्थित होता प्रतीत होना था इस कारण धर्मकी अधिक वृद्धि हुई अन्यथा धर्मका वृद्धि प्राप्त करना कैसे संभव हो सकता है ॥१७॥

उसने अपने यौवन उमंगोन्मत्त मनरूप बलवान गजेद्र को संयम रूप अंकुश से वसीभूत किया था अतः मनके वसीभूत होकर शान्त होने पश्चात उसके सहाय विना उसके आश्रित इन्द्रियोंको अपनी मर्यादा की सीमा का उलंघन करना असाध्य हो गया ॥१८॥

वह अपनी सर्व व्यापक आत्मको भौतिक शरीर रूप व्यवधान से आच्छन्न होते हुएभी अखन्ड मण्डल गगन के समान घटपट सर्व पदार्थों में अप्रतिबाधित रूपसे व्याप्त मान अपनी लक्ष्मी का अर्थीजनो के बीच सदा निशंक होकर विभाग करता था। १९ ॥

उसके बाहुबलमें कोपगुरु अर्थात भगवान शंकर का वास था अतः उसने संग्राममें धनुष्यकी प्रत्यंचाको वक्षःस्थल पर्यन्त खीच शत्रुओं के अभिमानी शीरका छेदन किया ॥ २० ॥

उसने भागते हुए शत्रुओं के पृष्ट प्रदेशमे बाण मार उनका हितचिंतन किया क्योंकि उसके ऐसा करने पर शत्रुगण कृतार्थ हो फिर गये। अर्थात जब उसने भागते शत्रुके पृष्ट प्रदेश पर बाणमारा तो वे व्याकुल हो फर कर पीछे देखने लगे और जब बाणा घात के कारण उनकी मृत्यु हुई तो रणक्षेत्रके प्रति मुख करनेके कारण रणमें सन्मुख मरनेका फल अर्थात स्वर्ग प्राप्त हुआ। अतः उनका हित साधन किया अर्थात उन्हें स्वर्ग दिलाया ॥ २१ ॥

उसकी जो अविचार कीर्ति नामक दयिता थी वह उसके संग्राममे जातेहीं अचानक दुसरे अर्थात शत्रुओंके घर चली गई॥ जब शत्रुओं ने वापस करना चाहा तो वह अपने प्रतापी पतिके नगरको लोटते समय भय विह्वल हो उन्मादिनी बन सागरमें प्रवेश कर गई। परन्तु डूबने के स्थान में परं पवित्र बन और देवताओं से वन्दित हो बाहर निकली ॥२२॥

उसका अर्थात कीर्तिराज का पुत्र सर्व गुण सागर तथा अत्यन्त शूर और युद्धरूप महार्णवका मन्थन करने वाला प्रसिद्ध मन्दर पर्वत समान हुआ ॥ २३ ॥

यहां पर इस मूर्ति भवनमे बाल्य कालमें ही श्री कल्याण सम बन कर निवास करती है और शक्ति नववधू के समान जहां पर अपने प्रिय के साथ आनन्द वर्धन करती हुई क्रीडा करती है। एवं वीरता अपने पतिके मनोभावको जानकर उसे विशेष रूपसे प्राप्त करती है और वत्सराज को विष्णु समान मान लक्ष्मी सापत्नी दाहको छोड निवास करती है ॥ २४ ॥

सारा संसार एक वस्त्र से ढांका नहीं जासकता ऐसा मान किसी एक कोण अर्थात स्थान का आश्रय लेना आवश्यक मान उसका आश्रय लिया तो उसने (वत्सराज) कीर्तिपटसे आच्छादन किया। ॥ २५ ॥

वत्सराज ने सोमनाथ महादेवको रत्नजडित सुवर्ण छत्र चढाया और दिन जनों के लिये एक अन्न सत्र बनाया ॥ २७ ॥

वत्सराज का पुत्र त्रिलोचनपाल हुआ जो कलियुग में पाण्डवों के समान लाट देशका भोग करने वाला हुआ ॥ २८ ॥

त्रिलोचनपाल सत्यवादितामें युधिष्ठिर-नाश करने में वक्र और शौर्य में कृष्ण के समान है। जिसके बाण त्यागन अर्थात सन्धान करने पर भी धर्मा धर्म विवेचन करने लगते हैं ॥२९॥

त्रिलोचनपालके वृद्ध शत्रुगण अत्यन्त भ्रममे पड़ गये थे। क्योंकि उसके मुखपर आनन्द चित्रित था कारण कि वह (त्रिलोचनपाल) आनन्द देने वाला था॥३०॥

रणक्षेत्र के भुषण रूप उसके शत्रुका शिर जब उसकी तलवारसे कट कर भूमि में गिर पडा और तो उनके शरीर निश्रित रुधिर प्रवाहसे प्रवाहित शरीर रक्त प्लावित हो चमक

उठा उस समय सहसा उसके समस्त बन्धुगण उसके शौर्य से आतप्त हो अपने खग पूण हांथको उपर उठाये अर्थात उसकी त्रिलोचनपालकी आधिनता स्वीकार किये ॥ ३१ ॥

धर्मात्मा त्रिलोचनपालने त्रयलोक को नश्वर मान ब्राम्हणों को गायें-भूमि और सुवर्ण दान दिया ॥ ३२ ॥

शक ६७२ विकृत संवत्सर के पौष कृष्ण अमावास्या तिथि मंगलवारको-सूर्यग्रहण के समय पश्चिम समुद्र तट के अगस्त्य तीर्थ में जाकर ॥ ३३-३४ ॥

कुशिक गोत्री विश्वामित्र-देवरात और यादव नामक तीन प्रवर वाले माधव नामक भार्गव ब्राम्हण को नवशत मण्डलके द्विचत्वारी नामक धिलीश्वर पथकान्तवर्ती एरथान ग्राम चतुराघाट युक्त समस्त आय के साथ त्रिलोचनपाल ने हाथमें जल लेकर दान दिया है ॥ ३५-३६-३७ ॥

प्रदत्त ग्राम का दान क्रमागत पूर्वदत्त देव ब्राम्हण दाय वर्जित है। इस प्रदत्त ग्रामकी पूर्व दिशा में नागस्था और नन्तिका-आग्नेय दिशा में वटपद्रक—याम्य दिशामें लिगंवट शिव—नैऋत्य दिशामें उन्दोत्थान- पश्चिम दिशा में बहुनदश्च-वायव्य दिशा में टेम्बरूक, सौम्य दिशामें नलपद्रक और इशान दिशा में करूण ग्रामादि आठ ग्राम हैं ॥३८-३९-४०॥

इन चारो आघाटो से आवेष्टित समस्त आयों के साथ इस ग्राम को—कथित द्विजवर माधव के—उपभोग में विकल्पना अर्थात बाधा न हो ॥४१॥

साधु समाज के किसी व्यक्तिको इसमें बाधा न करना चाहिए। यदि कोई बाध उपस्थित करेगा तो उसे पाप होगा ॥४२॥

पालनेमें पुन्य और अपहरणमे पातक होता है। कहा भी गया है ॥४३॥

श्री राम अपने तथा अन्य वंशोद्भूत भावी राजाओं से आदेश करते हैं कि राजाओं का यह सामान्य धर्म है कि वे अपने पूर्व भावी राजाओं चाहे वे अपने अथवा दुसरे वंशके हीं क्यों न हो—उनके धर्मदायकी रक्षा करें ॥४४॥

कन्या गाय तथा अर्ध अंगुली भूमिका भी अपहरण करने वाला चंद्र सूर्य स्थिति पर्यन्त नर्कमें वास करता है ॥४५॥

पूर्वभावी राजाओं के—धर्म अर्थ काम और मोक्षकी इच्छा वाले को—यशको फैलानेवाले धर्मदाय को निर्माल्यके समान मान कर उसका अपहरण कोइभी साधु व्यक्ति नहीं करता ॥४६॥

सगरादि बहुतसे राजाओं ने इस वसुधाका भोग किया है किन्तु भूमिदानका फल उसको हीं होता है जिसके अधिकारमें जब वसुधा होती है ॥ ४ ॥

महासन्धि विग्रहिक शंकरने लिखा। हस्ताक्षर श्री त्रिलोचनपाल।

लाटपति त्रिलोचनपाल

के

शासन पत्र ।

का

विवेचन.

प्रस्तुत लेख लाट देशके प्रख्यात नगर सूरत के एक कंसारा के पाससे श्री एच. एच. ध्रुव को निर्भय राम मनसुखराम के द्वारा प्राप्त हुआ था। जिसका प्रकाशन ध्रुव महोदयने इन्डीयन एन्टिक्वेरी वोल्युम १२ में किया था। कथित लेख लाट नंदिपुर पति चौलुक्यराज त्रिलोचनपाल कृत दानका प्रमाण पत्र है। यह तांबेके तीन पटोंपर उत्कीर्ण है। तीनों पटों के मध्य में दो छिद्र बने हैं। उक्त छिद्रों में कड़ियां लगी हैं। राजमुद्रा में राजवंशका राज्यचिन्ह भगवान शंकरकी मूर्ति बनाई गई है। लेखकी लिपी देव नागरी और भाषा संस्कृत है। प्रथम पंक्ति और मध्यकी पंक्ति का कुछ अंश और अंतकी पंक्ति गद्य और शेष लेख पद्यमें है। लेखके पद्य विविध वृत्तों के छंद हैं। लेखकी तिथि पौष कृष्ण अमावास्या विकृत संवत्सर और शक वर्ष ९७२ है। लेखका लेखक महा संधिविग्रहिक शंकर है।

लेखका प्रारंभ " ॐ नमः विनायकाय " से किया गया है। इसके पश्चात दूसरा वाक्य " स्वस्ति जयोऽभ्युदयश्च " है। इसके बाद लेखकी कविता का प्रारंभ होता है। प्रथम भावी तीन पद मंगलाचरण युक्त हैं। चार से सात पर्यन्त चार श्लोक चौलुक्य वंशकी उत्पत्ति वर्णन करते हैं। ८ और ९ श्लोक राज्यवंश संस्थापक बारप देवके गुणगान करते हैं। पश्चात श्लोक १० और ११ गोरगिराज का, १२-२२ कीर्तिराजका, २३-२६ वत्सराज का और २७-३० दान कर्ता त्रिलोचनपालके शौर्य आदि का वर्णन करते हैं।

श्लोक ३१ शासन कर्ता त्रिलोचनपालके विविध दानोंका, ३२-३३ शासन पत्र की तिथि तथा प्रदत्तग्राम और स्थानादि का अभिगुण्ठन करते हैं। ३४-४० श्लोकों में दान प्रतिग्रहीता ब्राह्मण और प्रदत्त ग्रामकी सीमादि का विवरण है। अन्ततोगत्वा श्लोक ४१-४६ भूदानका महत्व, पालन का फल और अपहरणका प्रायश्चित आदि बताता है। लेखके अन्तमें शासनकर्ता त्रिलोचनपाल का हस्ताक्षर " स्व हस्तोऽयं श्री त्रिलोचनपालस्य " रूपसे दिया गया है।

लेखका साधारण रूपेण भावार्थ देनेके पश्चात हम इसके विवेचन में प्रवृत्त होते हैं। और सर्व प्रथम लेख कथित चौलुक्य वंशकी उत्पत्तिको हस्तगत करते हैं। वंशावली वर्णन करने वाले कथित श्लोकों से प्रघट होता है कि " भगवान ब्रह्मा के चुलुक रूप समुद्र में उनके हृदय से दैत्यों के उपद्रव जन्य खेदात्मक मंदरके मथन से राजरत्नोंका मूल पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने उत्पन्न होते ही नमन कर ब्रह्मासे पूछा कि हे भगवान हम क्या करें। उसकी विनम्र वाणी सुनकर ब्रह्माने आदेश दिया कि हे चौलुक्य राष्ट्रकूट वंशी कान्यकुब्ज नरेशकी कन्या को प्राप्त कर-संतान उत्पन्न कर। चौलुक्य वंश जिस प्रकार पर्वत से निकली हुई नदिओं से पृथिवी परिपूर्ण है उसी प्रकार संसार में व्याप्त होगा "। चौलुक्य चंद्रिका वातापि खण्डके प्राक्कथन नामक शीर्षकके अन्तर्गत चौलुक्य वंश की उत्पत्ति आदि का हमने पूर्ण रूपेण विवेचन किया है। और अकाट्य रूपेण सिद्ध किया है कि प्रस्तुत लेखके कवि शंकर और उसके कुछ परकाल में होने वाले वातापि कल्याण के चौलुक्य राज विक्रमादित्य छठे के राज्य पण्डित बिल्हण एवं पाटणके चौलुक्यों के इतिहास लेखक जैन पण्डित गण में से किसीको चौलुक्यों के वास्तविक वंशवृत्तका ज्ञान नहीं था। उन्हों ने अपनी अज्ञानता अथवा निरंकुश कल्पनाशाली भावुकता के कारण चौलुक्य पदके यौगिक अर्थको लक्ष बना अभूतपूर्व कल्पना की है। अतः यहां पर पुनः विवेचन में प्रवृत्त होना पिष्ट पेषण और समयका दुरुपयोग मान आगे बढ़ते हैं। आशा है पाठक हमें क्षमा करेंगे और विशेष बातों को जानने के लिये उक्त स्थानको अवलोकन करने के लिये कष्ट उठावेंगे।

हम ऊपर बता चुके हैं कि प्रशस्ति के ८ से ६१ पर्यन्त में त्रिलोचनकी वंशावली और वंशावली गत पुरुषोंका कुछ ऐतिहासिक विवरण अलंकार के आवरण से ढक दिया गया है। इन श्लोकों के पर्यालोचन से वंशावली में बारपराज, गोरगिराज, कीर्तिराज वत्सराज और त्रिलोचनपाल आदि पांच नाम पाये जाते हैं। परन्तु त्रिलोचनपालके दादा और लाट देश प्राप्त करनेवाले बारपराज के पौत्र कीर्तिराजके शक ६४२ के शासन में वंशावली का प्रारंभ बारप के पिता निम्बारकसे किया गया है। अतः दोनों शासन पत्रोंके तारतम्य से निम्न वंशावली त्रिलोचनपाल पर्यन्त होती है।

वंशावली का विशुद्ध स्वरूप करने पश्चात हम प्रशस्ति कथित विवरण के विवेचन में प्रवृत्त होते हैं प्रशस्ति के श्लोक ८ और ९ से प्रकट होता है कि वारपराजने अपनी नीति निपुणता तथा सुप्रबंध से लाट देश प्राप्त किया और वहां जाकर शत्रुओंका नाश कर प्रजाका मनोरंजन करता हुआ कोषकी वृद्धि किया। इससे स्पष्ट है कि वारपराज ने लाट देश अपने भुजबल प्रतापसे नहीं प्राप्त किया था और न वह अपनी इच्छासे लाट देशमें आया था वरन वह किसीके आधीन और किसी देश विशेष का शासक था। उसके स्वामी ने उसके सुप्रबंध आदि से प्रसन्न हो उसे लाट देश का शासन भार दिया। जहां जाकर वारपने अपने स्वामी के शत्रुओं का नाश किया और सुन्दर शासन द्वारा लाट देशकी प्रजाको प्रसन्न करता हुआ राज्य कोषकी वृद्धि संपादन किया। अतः विचारना है कि वारपका स्वामी कौन था जिसने उसको लाट देशका सामन्त शासक बनाया और वारप ने अपने स्वामी के किस शत्रुका नाश किया।

कीर्तिराज के कथित शासन पत्र शक ९४२ वाले के विवेचन में वारपदेव के स्वामी और सामन्त बनाने वालेका नामादि प्रकट कर चुके हैं एवं यह भी बता चुके हैं कि लाट देशका शत्रु कौन था अतः यहां पर उसका पुनः विचार करना अनावश्यक मान आगे बढ़ते हैं। और सर्व प्रथम प्रशस्ति कारकी चातुरता संबंध में कुछ विचार करते हैं। प्रशस्तिकारने वारप राज को लाट देशका राज्य देनेवालेका नाम छिपाना जिस प्रकार उचित प्रतीत हुआ उसी प्रकार वारप को परास्त करनेवालेका मूल नाना युक्ति संगत प्रतीत हुआ। परन्तु प्रशस्तिकार हमारी समझमें अपने इन दोनों प्रयत्नों में विफलमनोरथ हुआ है। क्योंकि उसने वारपराजको अपनी निपुणता तथा सुप्रबंध के कारण लाट देश प्राप्त करना लिखा है। यदि वह ऐसा न लिख कर स्वतन्त्रया लिख देता कि वारपने अपने भुजबलसे लाटदेश प्राप्त किया तो वह अपने प्रयत्न में सफल होता। उसी प्रकार प्रशस्तिकार वारपराजके पुत्र और उत्तराधिकारी का वर्णन करते समय अपने छिपाए हुए भावका भण्डा फोर करता है। प्रशस्तिकार लिखता है कि "गोर्गिराज स्ववंशका भवन हुआ। इसने भगवान वाराह रूप विष्णु के समान शत्रु रूप समुद्र जलसे प्लावित लाटदेशका उद्धार किया"। इससे स्पष्ट है कि गोर्गिराज के राज्यारोहण समय के पूर्वही लाटके कुछ अंश पर शत्रुओं ने अधिकार कर लिया था। जिसको इसने अपने भुजबलसे उद्धार किया। पाटण के चौलुक्यों के इतिहास से हमें विदित है कि वारप को लाट देश प्राप्त करनेके पश्चात अपने जीवन पर्यन्त मूलराज और उसके पुत्र चामुण्डराज से लड़ना पड़ा था। और अन्तमें वारप चामुण्डके हाथ से मारा गया था। एवं उसके मरने के पश्चात लाट देशके कुछ भाग पर पाटणवालोंका अधिकार हो गया था। जिसका उद्धार गोर्गिराज ने किया।

अन्ततोगत्वा प्रशस्तिकारने वाराहकी उपमाद्वारा अवान्तर रूपसे वारपके स्वामी वातापिके चौलुक्य राज तैलपदेव द्वितीयका संकेत कर दिया है। जिसको छिपानेका प्रयत्न

प्रथम किया था क्यों कि वाराह लांछन वातापियोंका था। पुनश्च इससे यह भी प्रकट होता है कि गोग्गिराज वारपके मारे जाने के समय लाट देशमें उपस्थित नहीं था। परन्तु उसकी मृत्युका संवाद पाकर वातापिकी वाराह ध्वजकी छत्रछाया में सेना लेकर युद्धमें प्रवृत्त हो लाट देशकी अपहृत भूमि का उद्धार किया था। गोग्गिराजसे संबंध रखनेवाले प्रशस्तिके कथनका पूर्ण रूपेण विवेचन हो चुका। अतः गोग्गिराज के पुत्र और उत्तराधिकारी कीर्तिराजसे संबंध रखनेवाले कथनका विचार करें तो असंगत न होगा। परन्तु ऐसा न कर गोग्गिराजसे संबंध रखनेवाली अन्यान्य बातोंका विचार करते हैं। चांदोदमें द्वारावतिसे आकर शक संवत ७७२ में यादवों ने एक छोटेराज्यकी स्थापना की थी। इस वंशके सेवुनचंद्र द्वितीयका शासन पत्र शक ९९१ का हमें प्राप्त है। उक्त शासन पत्रके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि सेवुनचंद्र द्वितीयके पूर्वज तेसुकने गोग्गिराजकी कन्या नयीयालासे विवाह किया था। हमारी समझमें यह विवाह राजनैतिक दृष्टिसे हुआ था। क्यों कि इस विवाह द्वारा गोग्गिराज तथा उसके वंशजों को अपना बल बढ़ानेका अवसर प्राप्त हुआ। क्योंकि आगे चलकर देखनेमें आता है कि गोग्गिराजका दौहित्र भिल्लम वातापि पति चौलुक्यराज आहवमल से लड़ा था। किन्तु बड़े शोककी बात है कि प्रशस्ति कारने काल्पनिक उपमाओं के अभिगुण्ठन करने में तो कवितायोंकी भरमार किया है परन्तु इस महत्व पूर्ण घटना का वर्णन अनावश्यकमान छोड़ दिया है।

आगे चलकर प्रशस्ति गोग्गिराजके पुत्र और उत्तराधिकारी कीर्तिराजके संबंधमें चाटुकताकी अन्त कर देती है। प्रशस्ति उसे रूपमें कामदेव—चौलुक्यवंशी राजारूप मालामें सुमेरु मणि—जितेन्द्रिय—परमधार्मिक—वेदज्ञ—उदार—वीरशिरोमणि— विजेता और अपनी उज्वल कीर्ति से सूर्य समान दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला बताती है। परन्तु कीर्तिराजके सबसे उत्तम महत्व को उदरस्थ कर जाती है। हमारे पाठकोंको मालुम है कि कीर्तिराज नंदिपुरके चौलुक्यों में प्रथम था जिसने वातापिके आधीनता जूएको फेंककर राजापदको धारण किया था। और इसके इस कार्य में उसका फुफाभाई चांदोदका यादव राजा भिल्लम सहायक हुआ था।

पुनश्च प्रशस्ति कीर्तिराजका शत्रुओं पर विजय पाना वर्णन करती है, परन्तु उक्त शत्रु कौन था इत्यादि के संबंध में मौनावलंबन करती है। क्या प्रशस्ति अपने इस संकेत द्वारा वातापिवालों का उल्लेख नहीं करती है। संभव है कि वातापि वालेही हों क्यों कि जब कीर्तिराजने उनकी आधीनताका परित्याग कर स्वतंत्रताकी घोषणा किया होगा तो वे अवश्य उसे स्वाधीन करने के लिये प्रयत्नशील हुए होंगे। परन्तु वातापिका इतिहास इस संबंधमें चुप है। किन्तु मालवा धार के परमारों के इतिहास से हमें ज्ञात है कि उन्होंने चिरकालके विग्रह के पश्चात वातापि वाले जयसिंह का रणक्षेत्रमें वध कर विजय पाया था। जिसके प्रतिहारके लिये आहवमलने मालवा पर आक्रमण किया था।

हमारी समझमें वातापि वालों के मालवावालों से पराभव समय उनकी निर्बलताका लाभ उठा कर अपने निकट संबंधियों चांदोदके यादवों और स्थानकके शिल्हरोंकी सहायता से कीर्तिराज स्वतंत्र बन गया। अतः हम प्रशस्ति कथित उक्त संकेतको वातापिवालोंका द्योतक नहीं मान सकते।

प्रशस्ति सांकेतिक शत्रु जब वातापिवाले नहीं हैं तो वैसी दशामें कथित शत्रु कौन हो सकता है! पाटण के चौलुक्योंके इतिहाससे प्रकट होता है कि पाटणपति चौलुक्यराज दुर्लभराजने लाट देशपर विजय पाया था। दुर्लभराज के इस लाट देशके विजयका उल्लेख कुमारपाल भूपाल चरित्र में है और उससे प्रकट होता है कि दुर्लभराजने लाट नाथको मार कर उसके राज्य चिन्हको धारण किया था। इसका समर्थन कुमारपालके वडनगरकी प्रशस्तिके वाक्यः—

" यस्य क्रोध पराङ्मुखस्य किमपि भ्रूवल्लरी भंगुरा।
सद्यो दर्शयतिस्मलाट वसुधा भंग स्वरूपं फलं ॥ "

से समर्थन होता है। अतः हम कह सकते हैं कि संभवतः इस युधका प्रशस्तिमें संकेत किया गया हो, किन्तु हम ऐसाभी नहीं मान सकते, क्योंकि संकेतमें कीर्तिराजका विजयी होना प्रकट किया गया है। यदि इसका संकेत प्रशस्तिकार करता तो अपने स्वभाव वशात वह लाट देशपर आपत्तिका आना वर्णन करता। ऐसी दशामें हम कह सकते है कि उक्त संकेत वातापीवालों पर विजय पानेका संकेत करता है। और प्रशस्तिकारने कीर्तिराज के पराभवको--जिसमें उसको अपने दादा वारपराज के समान—प्राण गमाने पड़े थे—को पूर्ण रूपेण उदरस्थ कर लिया है।

कीर्तिराजके उत्तराधिकारी और वत्सराज के संबंधमें प्रशस्तिकार केवल इतनाही लिखता है कि उसने सोमनाथ महादेवके मन्दिरमें रत्नजड़ित सुवर्ण छत्र चढ़ाया था। और अनाथों के लिये अन्नसत्र बनवाया था। इसके अतिरिक्त उसके संबंधमें प्रशस्तिसे कुछभी प्रकट नहीं होता। पुनश्च यहभी नहीं प्रगट होता कि सोमनाथ मन्दिर सौराष्ट्रका मन्दिर है अथवा कोई अन्य मन्दिर। और यदि उक्त मन्दिर सौराष्ट्रका मन्दिर सोमनाथ है तो क्या वत्सराज वहां स्वयं गया अथवा किसीके द्वारा उक्त रत्नजडित सुवर्ण छत्रको भिजवा दिया था। अथवा नर्मदा समुद्र संगम के समीपवर्ती अम्मलेठा ग्रामवाला सोमनाथ मन्दिर है। हमारी समझमें सौराष्ट्रका सोमनाथ मन्दिर न होकर नर्मदा समुद्र के निकटवर्ती अम्मलेठा ग्रामकाही सोमनाथ मन्दिर है क्यों कि यह स्थान पवित्र माना जाता था और नंदिपुरके चौलुक्यों के राज्यमें था भी।

अन्ततोगत्वा प्रशस्ति वत्सराज के पुत्र और उत्तराधिकारी शासन कर्ता त्रिलोचनपालका वर्णन करती है और उसे धर्मराज युधिष्ठिरके समान सत्यवादी और भगवान कृष्णके समान शौर्यशाली और विजयी बताती है। एवं उसे अनेक प्रकारके दानादिका करनेवाला प्रकट करती है। प्रशस्तिसे प्रगट होता है कि त्रिलोचनपालने अगस्ततीर्थ

में समुद्र स्नान करके वर्णित एरथाण ग्राम दान दिया था। प्रदत्त ग्राम एरथान के अष्ट सीमावर्ती ग्रामोंका नाम नागम्बा, तन्तिका, बटपद्रक, लिङ्गवट शिव, इन्द्रोत्थान वहुणादश्वा, टेम्बरुक, तलपद्रक और करण ग्राम है। प्रदत्त ग्रामके विषय का नाम धीलिश्वर है अब विचारना है अगस्त तीर्थ और धीलिश्वर विषयका प्रदत्त ग्राम एरथाण तथा उसके सीमावर्ती कथित आठ ग्रामों का संप्रति अस्तित्व पाया जाता है या नहीं। मि० ध्रुव इन्डीयन एन्टिक्वेरी वोल्युम १२ पृष्ठ २०१-३ में इसके परिचय संबंधमें लिखते हैं।

"ERTHAN", the village granted is situated in the Olpad Taluka of the Surat District. Five Kosh from Erthan is the place called Karanj Pardi. Near Karanj Pardi there is a Hillock called Mahellaruno Tekro, and a tradition there goes that it was a place of resort of the Padshahs of old in the Padshahi Time. It contained once a Palacial Building which was a place of Takhat, meaning thereby the Metropolish of the country. At about a Kosh and a half from Karanj Pardi is Bhagwa Dandi. And they are separated by a creek running in land. Nagamba is Nagda, Vadantha is lying to the South-East of Erthan. Lingvat is Lingoda or Nagda in the South of Erthan or it may be Lingtharja in the Chorasi Taluka, belonging to the Sachin State. Shiv is Shiv still. Can Indothan be modern Earthan? Timbaruk is Taloda or Talda to the south of Erthan. The other places cannot be identified."

"प्रदत्त ग्राम एरथाण सूरत जिला के अलपाड तालुका में है। एरथाणसे पांच कोषकी दूरी पर करंजपारडी है। करंजपारडी के समीप महेलारुना टेकरा नामक एक टीला है। स्थानिक परं परा प्रगट करती है कि बादशाही जमाने में उक्त टेकरा बादशाहों का आरामस्थान था। वहां पर राजकी राज्यधानी थी। आजभी पुरातन भवनोंका अवशेष वहां पाया जाता है। करंजसे देढ कोषकी दूरी पर भगवा दांडी नामक दो ग्राम हैं। जिनको एक समुद्रकी छोर (क्रीक) विभाजित करती है। नागम्बा वर्तमान नागडा-वारंथा है। यह ग्राम एरथान के दक्षिणमें अब स्थित है। परन्तु संप्रति ऊजड़ है। वटपद्रक वर्तमान वडोदा है। जो एरथाण के दक्षिण पूर्व में अवस्थित है। लिंगोदा संभवतः एरथाण से दक्षिण अवस्थित लिंगोदा या नगदा है। यह भी संभव है कि प्रशस्ति कथित लिंगवट चोरासी तालुकाके अन्तर्गत सचीन राज्यके आधीन लिंगथरजा नामक ग्राम हो शिव वर्तमान शिवा है। क्या प्रशस्ति का इन्द्रोत्थान आधुनिक एरथाण हो सकता है। टेम्बरुक एरथाण से दक्षिणवाला तलोदा है। इसके अतिरिक्त प्रशस्ति कथित अन्य ग्रामोंका कुछ भी परिचय नहीं मिलता।

ध्रुव महोदय के इस कथनसे एरथाण ग्राम सूरत जिला के ओलपाड तालुका अन्तर्गत वर्तमान एरथाण सिद्ध होता है। परन्तु इनके कथनमें कितनी बातें ऐसी हैं कि इनके कथनको

माननेकी प्रवृत्ति हमारी नहीं होती। सबसे बड़ी बात तो यह है कि परथाणकी अष्ट सीमाओं वर्ती ग्रामों का अवस्थान का इनके कथनमें विरोध पड़ता है। क्योंकि इनके कथनानुसार परथाण की चारो तरफ वाले ग्रामों में से अधिकतर दक्षिणमें पाये जाते हैं। इनके कथनानुसार परथाण के चतुर्दिक वाले ग्रामोंका सीमाचक्र निम्न प्रकारसे है।

चक्र १.
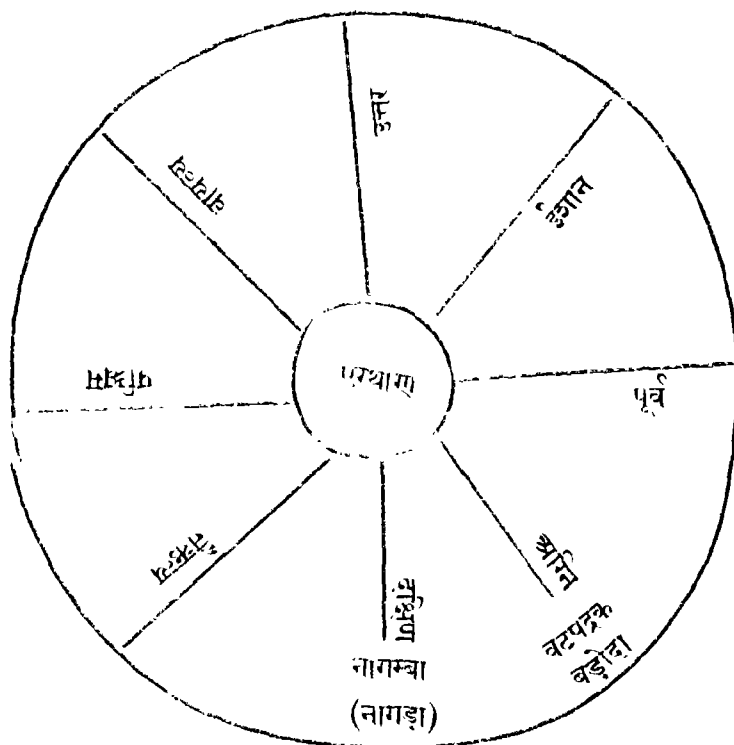
परन्तु प्रशस्ति अष्ट सीमावर्ती ग्रामोंका अवस्थान निम्न प्रकारसे बताती है। प्रशस्ति के कथित सीमाचक्र निम्न प्रकारसे हैं।

चक्र २.
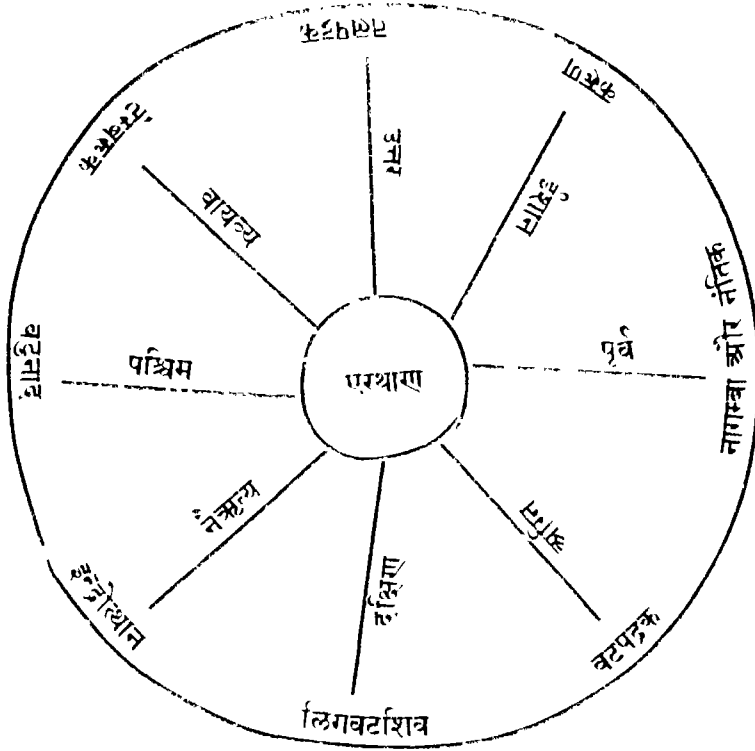
दोनों सीमाचक्रोंपर दृष्टिपात करतेही ध्रुव महोदय के कथनकी अनर्गलता अपने आप प्रकट हो जाती है। अतः इसके संबंध में कुछभी कहनेकी आवश्यकता नहीं है। ध्रुव महोदय लिंगवटको सर्चीन राज्यका लिंगथरजा बताते हैं। अब यदि हम लिंगवटको लिंगथरजा मानें तो यह मानना पड़ेगा कि प्रशस्ति कारने एरथाणकी चतुःसीमाका वर्णन करते समय उसकी सीमा पर २०-२५ मील की दूरी पर होने वाले ग्रामोंको बताया है। ऐसा विचार करना भी हास्यास्पद है। परन्तु ध्रुव महोदयने क्यों ऐसा लिख दिया है यह हमारी समझ में नहीं आता। परन्तु उनके लेखके पर्यालोचनसे हमारी यह धारणा होती है कि उन्होंने लेख लिखते समय मानचित्रका विवेचन नहीं किया था। वरना वह कदापि ऐसा न लिखते। हमारी समझमें उनके लेखकी पूर्ण रूपसे अनर्गलता प्रकट करने के लिये वर्तमान एरथाण की सीमा पर होने वाले ग्रामोंका सीमाचक्र देना असंगत न होगा। वर्तमान एरथाण का सीमाचक्र निम्न प्रकार से है।

चक्र ३.
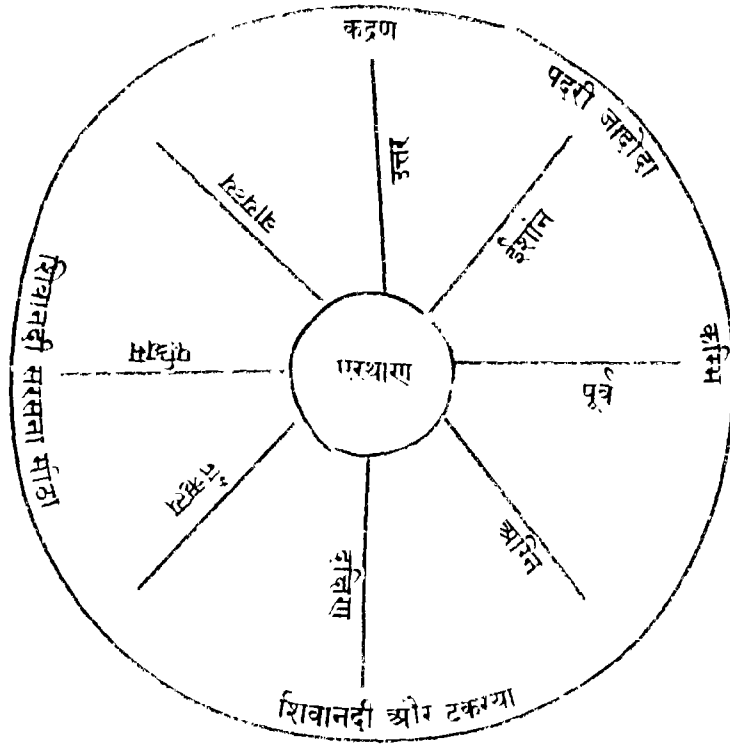
आशा है वर्तमान सीमाचक्र और ध्रुव महोदय कथित सीमाचक्रकी तुलना से हमारे पाठकों को हमारी बातोंमें कुछभी शंका करनेको अवकाश न मिलेगा।

एवं हम देखते हैं कि ध्रुव महोदय ने संभवतः प्रशस्ति के ऊपर पूर्ण विचार भी नहीं किया है। क्योंकि वे परथाण के दक्षिणमें शिवा नदीका होना प्रकट करते हैं। उनके इस कथनका वर्त मान परथाणकी दक्षिण सीमा में अवस्थित शिवा नदीसे तारतम्यभी मिल जाता है। परन्तु चाहे उनकेकथनका वर्तमान परथाण की दक्षिण सीमा पर अवस्थित शिवा नदी से तारतम्यभी मिल जाय तो भी उनके कथनको स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि प्रशस्ति में शिवा नदी का उल्लेख नहीं। संभवतः ध्रुव महोदय ने प्रशस्ति के वाक्य "याम्यां लिङ्गवटः शिवः" के शिव शब्दों को शिवा नदी मान लिया है। किन्तु यह उनकी भारी भूल है। क्योंकि यहांपर "लिङ्गवटः शिवः" वाक्य में शिवा नदी नहीं परन्तु शिवः पद है। इससे स्पष्ट है कि प्रशस्तिकार लिङ्गवट नामक शिवका उल्लेख करता है। पुनश्च उसे यदि शिवा नदी का संकेत करना होता तो "शिवः" न लिख "शिवा" लिखता।

ध्रुव महोदय द्वारा निश्चित अवस्थान को अस्वीकृत करने पश्चात प्रश्न उपस्थित होता है कि परथाण तथा उसके सींमावर्ती ग्रामो का संप्रति अस्तित्व क्या नहीं है। इस प्रश्नका उत्तर देने के पूर्व हमें मानचित्रका पर्यालोचन करना होगा। टौपोग्राफिकल मैप्स शीट नां. ३७ पर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि बडोदा राज्य के नवसारी मण्डल तालुका पलशाणा के अन्तर्गत परथाण नामक एक ग्राम है। उक्त ग्राम बी. बी. सी. आइ. रेल्वे के टी. वी. सेक्शन के चलथाण नामक स्टेशन से लगभग चारमील की दूरी पर है। कथित परथाण के चतुस्सीमावर्ती ग्राम का सीमा चक्र निम्न प्रकार से है।

चक्र ४.
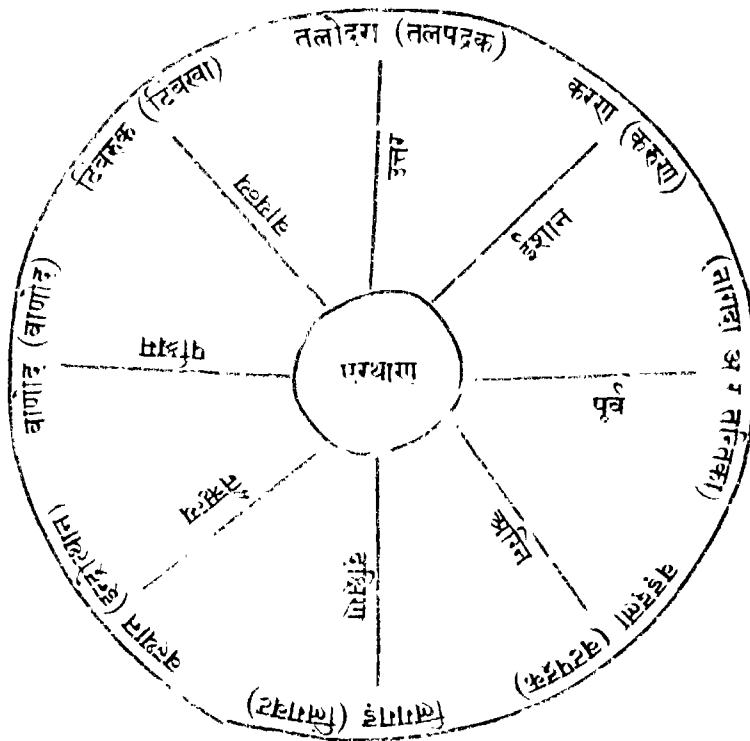
उद्धृत चक्र पर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि प्रशस्ति कथित परथाणकी सीमाका वर्तमान परथाणकी सीमासे अधिकांशमें तारतम्य मिलता है। उत्तरभावी तलपद्रक का तलोदरा, वायव्यभावी टिम्बरुक का टिम्बरवा, पश्चिमभावी बहुणादश्रा का बोणाद, नैऋत्यभावी इन्द्रोत्थान का वलथाण, दक्षिण भावी लिङ्गवट का लिङ्गवड, ईशानभावी

करुण का करण रूप परिवर्तित हुआ है । इस रूप परिवर्तनकी क्रिया में किसि प्रकारकी आशंका का समावेश नहीं हो सकता । हां पूर्व और आग्नेय दिशावर्ती ग्रामों के वर्तमान परिचय संबंध में हम सशंक हैं । तथापि आठ सीमावर्ती ग्रामों में से छै का निश्चय ज्ञान होने पश्चात हम निःशंक हो कर कह सकते हैं कि प्रशस्ति कथित परथाण ध्रुव महोदय कथित ओलपाड तालुकावाला परथाण न होकर बडोदा राज्य के नवसारी प्रान्त के तालुका पलशाणा का परथाण ग्राम है ।

हमारी समझमें प्रशस्ति कथित सब बातों का विवेचन हो चुका । अतः यदि हम इतने ही से अलं करें तो असंगत न होगा तथापि ध्रुव महोदय के पूर्व अवतरित कथन में एक बात ऐसी है जिसके संबंध में कुछ कहे बिना विवेचन को समाप्त करने का साहस हम नहीं कर सकते । ध्रुव महोदय ने अपने कथनमें महलेरुना टेकरा का उल्लेख कर अपनी पूर्व कथित संभावनाका समर्थन करनेका प्रयास किया है । और उद्धृत अवतरण के पूर्व शासन कर्ता के वंशकी राज्यधानी संबंधमें लिखते हैं ।

"Trilochanpal bathes in the western Sea at the Port of Agast Tirth and makes the grant from which I conclude that it or some place near it was most Probably the Capital of the Monarch."

"त्रिलोचन पश्चिम समुद्र तटवर्ती अगस्ततीर्थ में स्नान कर दान देता है । इससे हम परिणाम पर पहुंचते हैं कि कदाचित अगस्त तीर्थ अथवा उसके समीपवर्ती कोई ग्राममें इस राजा की राज्यधानी थी । "

अब यदि ध्रुव महोदय के कथनको, महेल्लेरुना टेकरा वाले कथनके साथ मिलाकर पढ़ें तो उनके आन्तरिक भावका परिचय अनायासही मिल जाता है । अन्यथा महल्लेरुना टेकरा का उल्लेख कथित विवरण में अप्रासंगिक तथा ' सिन्दूर बिन्दु विधवा ललाटे ' विधवा के ललाटमें सिन्दूर की टीका के समान असंगत प्रतीत होता है । हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि त्रिलोचनपालके पूर्वजोंके इतिहासको ध्रुव महोदयने पूर्ण रूपेण पटतर किया है । अन्यथा वे इनकी राज्यधानीको भगवा दांडी या उसके समीपवर्ती महेल्लुरुना टेकरा में निर्धारित करनेका दुःसाहस न करते । हां हम यह अस्वीकार नहीं कर सकते कि इनकी राज्यधानीके संबंधमें विद्वानोंमें घोर मतभेद नहीं है । परन्तु उक्त मतभेद कुछभी महत्व नहीं रखता क्यों कि राज्यधानीका नाम नन्दिपुर सर्वमान्य है । यदि मतभेद है तो वह यह है कि नन्दिपुर भरुच नगरका उपनगर अथवा राजपीपला स्टेटका नादोद है । परन्तु हमारी प्रवृती भरुच के उपनगरको नंदिपुर माननेके स्थानमें राजापीपलाके नादोदके नंदिपुर मानने के प्रति अधिक झुकती है ।

लाटपति चौलुक्यराज त्रिविक्रमपाल

का

शासन पत्र

१ ॥ ॐ स्वस्ति जयोऽभ्युदयश्च ॥ भगवते चंद्र चूड गंगाधर शिति कण्ठ भुजङ्गमाली व्याघ्राम्बर धारी त्रिशूल पाणये नमः॥ स्वस्ति संवत्सर शतेषु नवसु नवति नवाधिकेषु शक कालातीतेषु श्रावण शिते षष्ठ्यां यथा तिथि पक्ष मास संवत्सरेषु समस्त राजावली समलङ्कृत मद्येह नान्दिपुरे श्री मन्निम्बार्क कुल कमल दिवाकर देव सेनानि समस्तोपलब्धाधिपति श्री वारपदेव स्वतत्पादानुध्यात सारस्वातीय पाठन महोदधि मन्थन मन्दर मेरु कर कृपाण बलाप्त वसुधाधिपत्यं श्रीमन्महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री गोगिराज देव स्वतत्पादानुध्यात श्रीमन्महा-राजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक कीर्तिचन्द्रदेव स्वतत्पादानुध्यात् श्रीमन्महाराज परमेश्वर परम भट्टारक वत्सराजदेव स्वतत्पादानुध्यात श्रीमन्महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक त्रिभुवनपाल देवात्मजः कर्ण कुमुदाङ्कुर तुषारोऽपि चौलुक्याब्धि विवर्धनेन्दु श्रीमन्महा-राजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक त्रिविक्रमपालदेवः समस्त राज पुरुषा न्ब्राह्मणेतरा न्जनपदांश्च प्रतिबोधयत्यस्तु सुविदितमवः नूतन जलद पट सम पाटाम्बराच्छादिते वसुधरे स्वपितृव्य श्रीमन्महाराज जगत्पाल भुजाघात संचारित वायु विताडित शत्रु मेघान्धकार विनिर्मुक्ते नागसारिका मण्डले स्वभुज बलार्णव वाट पद्रक विषये वैश्वामित्री तटे दानवानी निमज्जिते ब्राह्मणेभ्यः स्वास्तिक मंत्रोच्चारेण समाहृते पुरजनै हर्षातिरेक मर्यादा विस्मृत सावृते वल्लभीस्थिता पुरवधू प्रोक्षित पुष्पधारा निमज्जिते परिपूर्ण जल पल्लवाच्छादिते कनक कुम्भ सिर स्थापितो दाहार्यां शत कोकिल रव मंगल गान शब्दाश्रव पूर्ण कर्णकूटे भेरी शंख मृदंग ताल झंझर रवपूर्ण दिगन्तले चैतादृशे परिवृते जनन्या लालिते रेवायां

स्नात्वा भूदेवान्विविध दानेन संतुष्य पितृभ्य वारितSपिपेतृभ्य श्रीमन्महाराज पद्म देवं नागसारिका मण्डलपाति पञ्चशत ग्राम विषयाष्टग्रामे सामन्त्याधिपत्ये संस्थापितश्चाति। ब्रह्मावर्तान्तर्गत पाञ्चाल जन पदस्य कम्पिलस्य नगर विनिर्गतवेद वेदान्त सकल सच्छास्त्र निष्णात सम दम उपरति तितिक्षादि साधन चतुष्टय संपन्न जप तप स्वाध्यायाग्निहोत्र निरत गौतम सगोत्र पंच प्रवराध्वर्यु काण्वशाखाध्यायी ब्रह्मदेव शर्मणा प्रचोदितः। जगत्गुरु भवानि पतिं समभ्यचर्य संसारस्या सारतां मनुवीक्ष्येति जगतो विनिश्वर स्वरूप माकलय्य शुक्लतीर्थे स्वापितामहेन संस्थापित सत्रे स्वापिता निर्मिता पाठशालायाः पंचशत विद्यार्थीणां भोजनादि निर्वाहार्थं नन्दिपुर विषयान्तर्गत हरिपुर ग्रामोSयं स्वसीमा तृणगोचर यूति पर्यन्तं सहिरण्य भाग भोग सपरिकर सर्वादायः समेत श्चास्माभिः प्रदत्तः। सामान्यं चैतत् पुण्य फलं ज्ञात्वाSस्मद्वंशजै रन्यै रपि भाविभोक्तृभि स्स्मत्प्रदत्ता धर्मदायोSय मनु मन्तव्यः पालितव्य श्च। उक्तं च।

> वहुभि र्वसुधा भुक्ता राजभि स्सगरादिभिः।
> यस्य यस्य यदा भूमि स्तस्य तस्य तदा फलं॥
>
> षष्टि वर्ष सहस्त्राणिस्वर्गे मोदाति भूमिदः।
> आच्छेता चानुमंतां च तान्येव नरके वसेत।

दूतकोSत्र महादण्डाधिपति भीमराजः। लिखित मिदं भूदेवेन सुवर्णकार विजय सुत अलटेनोत्कीर्णम्। इति स्वहस्तोयं श्री त्रिविक्रमपालस्य।

लाटपति चौलुक्यराज त्रिविक्रमपाल

के

शासन पत्रका

छायानुवाद ।

कल्याण हो । जय और अभ्युदय हो ।। भगवान जिनके ललाटपर चंद्र विराजमान, जिनने गंगाको अपनी जटाओंमें अटका रखा-जिनका कण्ठ नीला- जिनके गलेमें नाग माला और कटिमें व्याघ्राम्बर तथा हाथमें त्रिशूल है-को नमस्कार है। शक वर्ष ६६६ के श्रावण शुक्ल षष्ठीको समस्त राजा वलीसे अलंकृत नन्दिपुर में-श्रीमाञ्शिम्बार्क कुलरूप कमलको विकसित करनेवाला दिवाकर-देवसेनानी स्कंध के समान सेनापति श्री वारपदेव। और श्री वारपदेवका पादानुध्यात सारस्वतीय पाटण महोदधिका मन्थन करनेवाला मेरू और अपनी तलवारकी धारसे वसुधाका आधिपत्य प्राप्त करनेवाला श्रीमन्महाराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री गोरगिराज-और श्री गोरगिराजका पादानुध्यात श्री कीर्तिराज-और श्री कीर्तिराजका पादानुध्यात श्री वत्सराज-और श्री वत्सराजका पादानुध्यात श्री त्रिभुवनपाल-और श्री त्रिभुवनपालका पादानुध्यत कर्णरूप कुमुद अर्थात कमलके अंकुर का नाशक तुषार तथा चौलुक्य वंश अब्धि को आनंद देने वाला चंद्रमा श्री त्रिविक्रमपाल-आज समस्त राजपुरुषो-ब्राह्मणों तथा इतर प्रजावर्गको आदेश करता है कि-नवीन बादल रूप अम्बर से आच्छादित वसुंधरा के होने पर अपने चाचा श्रीमान्महाराजाधिराज जगत्पाल के भुजाघात से संचारित प्रचंड वायु से विताडित शत्रु रूप अन्धकारके नाश द्वारा नागसारिका मण्डलके बंधन मुक्त होने और वटपद्रक विषयके विश्वामित्री नदी तटपर अपने भुजबल रूप महार्णव में शत्रुरूप दानव सेनाके डूबने पश्चात ब्राह्मणोंके स्वस्ति वाचक मंत्रोच्चार ध्वनिसे समादृत, आनंद विभोर मर्यादा त्यागने वाली प्रजासे घिरा हुआ-नगरकी अटारिकाओंकी झरोखामे अवस्थित कुलवधुओंके फेंके हुए पुष्पोंकी धारा में निमज्जित-सिरपर जल परिपूर्ण सुवण कलस लिये सैकडों पानी भरनेवाली स्त्रिओं के मधुरगान से परिपूर्ण श्रवण रंध्र और भेरी शंख मृदंग ताल झांझ के गुञ्जार ध्वनि से परिपूर्ण दिगन्तर अवस्थामें अपनी माताके आदेशसे नर्मदामें स्नान के अनन्तर विविध प्रकारके दानोंसे ब्राह्मणों को संतुष्ट कर-अपने चचाके मना करने परभी-अपने चचेरे भाई श्रीमन्महाराजधिराज पद्मदेवको नागसारिका मण्डलके पांचसौ गाम वाले अष्टग्राम नामक विषयका सामन्तराजा बनाया और ।

ब्रह्मावर्त प्रदेशान्तर्गत पंचाल जनपदके काम्पिल्य नगरसे आनेवाले, वेदवेदान्तादि सकल शत शास्त्रोंमें प्रवीण, सम दम उपरति तितिक्षादि साधन चतुष्ट्य संपन्न, जप तप स्वाध्याय अग्निहोत्र निरत गौतम गोत्र संभूत पंच परवर काण्वशाखाध्यायि ब्रह्मदेव शर्माकी प्रेरणासे जगद्गुरू भवानीपति शंकरकी अभ्यर्चनाकर संसारकी असारता देख शुक्लतीर्थमें अपने पितामह द्वारा संस्थापित क्षेत्र के मध्य पिताद्वारा संचालित पाठशालामें अध्ययन करनेवाले ५० विद्यार्थिओं के भोजनादि निर्वाहके निमित्त नंदिपुर विषयके हरिपुर नामक ग्राम को सीमादि तथा सर्व प्रकारकी आयके साथ दान दिया। दानकी रक्षा का फल सामान रूपसे मान हमारे वंशजो तथा दूसरे होनेवाले भावी राजाओंको उचित है कि इसका पालन करे। कहा गया है।

सगरादि बहुतसे राजाओंने इस वसुधाका उपभोग किया है परन्तु वसुधा जिस समय जिसके अधिकारमें रहती है उस समय उसकोही पूर्वदत्त भूदानका फल मिलता है।

भूमिदान देनेवाला साठ हजार वर्ष पर्यन्त स्वर्गमें सुख भोग और अपहरण करने तथा अपहरणकी अनुमति देनेवाला उतनीही अवधि पर्यन्त नरकमें दुःख भोगना है।

इस शासन पत्र का दूतक महा दण्डाधिपति भीमराज, लेखक भूदेव और ताम्र पटों पर लिखने वाला सुवर्णकार वज्जल का बेटा अल्लट है। यह हस्ताक्षर श्री त्रिविक्रमपालका है। इति ॥

लाटपति चौलुक्यराज श्री त्रिविक्रमपाल

शासन पत्र।

का

विवेचन.

प्रस्तुत लेख लाट नन्दिपुर के चौलुक्यराच त्रिविक्रमपाल कृत शुक्ल तीर्थ अत्र स्थित सत्रवर्ती पाठशालाके विद्यार्थीओं के भोजनादि निर्वाहार्थ दानका प्रमाण पत्र है।- यह शासन पत्र तांब के दो पटों पर उत्कीर्ण है। पटों के। मध्य दो छीद्र हैं। उनमें कडीआं लगी हैं। कडीओं पर राजमुद्रा है। राजमुद्रा में राज्यचिन्ह रूप भगवान शंकरकी मूर्ति है। पटोंका आकार प्रकार १२×८ इंच है। लेखकी लिपी देवनागरी और भाषा संस्कृत है। लेख अयान्त-दान फलके दो श्लोकोंको छोड पद्यमय है। इसकी तिथि श्रावण शुक्ल षष्टि ९९९ शक है। इसका दूतक महादण्डाधिपति भीमराज-लेखक भूदेव और उत्कीर्णकार अल्लट है। अन्तमें शासन कर्ता त्रिकिक्रमपालका हस्ताक्षर है।

लेखका आरंभ "ॐ स्वस्ति जयोभ्युदयश्च" से किया गया है। पश्चात भगवान शंकरको नमस्कार और लेखकी तिथी शब्दो में है। अन्तमें शासन कर्ता का निवास नन्दिपुरमें बताने पश्चात वंशावली दी गई है। और वंशावली निम्न प्रकार से है।
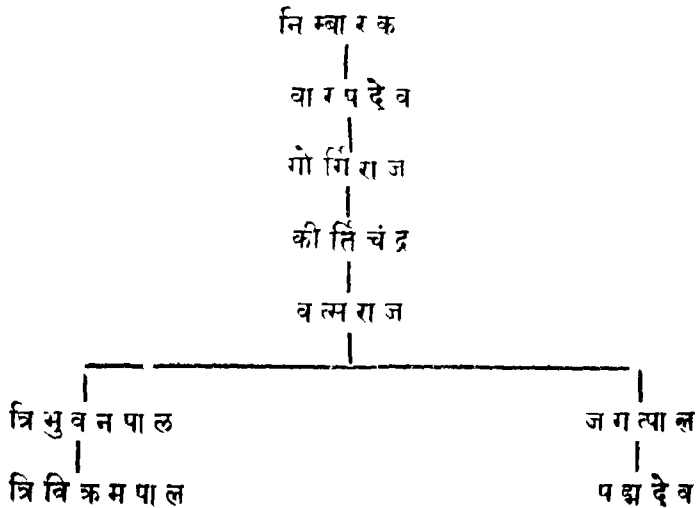
वंशावली पर दृष्टिपात करने से प्रकट होता है कि शक ६४२ और ६७२ वाले पूर्व उधृत वंशावली के नामों से इसके नामों में कुछ अन्तर पडता है। क्यों कि पूर्व वाले दो लेखों में लाट प्रदेश प्राप्त करनेवाले का नाम वारपराज और इसमें वारपदेव है। इसी प्रकार उनमें तीसरा नाम कीर्तिराज और पांचवा नाम त्रिलोचनापाल है। परन्तु इसमे कीर्तिचंद्र और त्रिभुवनपाल है। इस अन्तर के संबंधमें हमारा निवेदन है कि जिस प्रकार पाटन के चौलुक्य ऐतिहासिकोंने लाटके वारपका नामोल्लेख द्वारप नमासे–वारप शब्दको संस्कृतका आवर्ण देकर—किया है उसी प्रकार प्रस्तुत शासनमें वारपको वारपदेव बताया गया है। एवं कीर्तिराज और कीर्तिचंद्र तथा त्रिलोचनपाल और त्रिभुवनपाल के संबंधमें हमारा निवेदन है कि इनका अन्तरभी नामान्तर जन्य है।

नन्दिपुर के चौलुक्यों के पूर्व उधृत दोनो लेखोंमें वारपराजके संबंध कुछभी स्पष्ट रूपसे नहीं लिखा गया है। परन्तु पाटणके इतिहाससे हमें ज्ञात है कि वारपका परिचय लाट देशके सेनापति नामसे दिया गया है। किन्तु प्रस्तुत शासन पत्र के, " श्रीमन्निम्बार्क कुल कमल दिवाकर देव सेनानी समतोपलब्ध अनीपति श्री वारपदेव " वाक्य में वारपको केवल सेनापति कहा गया है। इससे प्रकट होता हैं कि प्रस्तुत शासन पत्र के लेखकने निर्भय होकर ऐतिहासिक सत्यको प्रकट किया है। इतनाही नही आगे चल कर वारप के पुत्र गोगिराजका वर्णन करते समय लिखता है " सारस्वतीय पाटन महोदधि मन्थन मन्दर मेरु कर कृपाण बलात वसुधाधिपत्यम " कि वारप देवके पुत्र गोगिराजने सारस्वतीय पाटन रुप महोदधिको मन्थन करनेवाला मन्दराचल पर्वत था जिसने अपनी तलवारके बलसे वसुधाधिपत्य पदको प्राप्त किया था। हमारे पाठकोंको ज्ञात है कि चौलुक्य चन्द्रिका पाटण खण्डमें उधृत मूलराजके लेखमे उसके राजका नामोल्लेख सारस्वत मण्डलके नामसे किया गया है। अतः इस लेखमें सारस्वतीय पदसे पाटणका ग्राहण है। अतः हम कह सकते हैं कि त्रिलोचनपालके लेखमें वारपकी मृत्यु पश्चात गोगिराजका दानवोसे लाटदेशके उद्धारका उल्लेख करते समय कथित दानवोंका नामोल्लेख नही किया गया है। जो शासन पत्र को त्रुठी पूर्ण तथा संदिग्ध बनाता है परन्तु उसकी पूर्ति प्रस्तुत शासन पत्र करता है।

इतना होते हुए भी प्रस्तुत शासन पत्र में कीर्तिराजके संबंध में कुछ भी नही लिखा गया है। परन्तु अन्यान्य ऐतिहासिक सुत्रसे हमें ज्ञात है कि उसकोभी संभवतः अपने दादाके समान पाटणके दुर्लभराजके हाथसे प्राण गवाना पडा था। पुनश्च कीर्तिराजके उत्तराधिकारीका नाम मात्र परिचय के अतिरिक्त कुछ भी नहीं लिया गया है तथापि प्रस्तुत शासन पत्रके वाक्य ' शुक्लतीर्थे स्वपितामहेन संस्थापित सत्रे " में उसकी कीर्तिको स्वीकार किया गया है।

अनन्तर शासन पत्र त्रिलोचनपाल के पुत्र और शासन कर्ताका वर्णन निम्न वाक्य " कर्ण कुमुदाङ्कुर तुपारोऽपि चौलुक्याब्धि विवर्धनेन्दु " में करता है और बताता है

कि वह कर्ण रूप कुमुद नामक कमलके मूलको नाश करने वाला तुषार और चौलुक्य वंश रूप समुद्रको आनन्द देनेवाला चन्द्र था। अब यदि इस वाक्यको शासन पत्र कथित अधोभाग वर्ती वाक्य "नूतन जलद पट समपाटनाम्बराच्छादिते वसुन्धरे स्वपितृव्य श्रीमन्महाराज जगत्पाल भुजाघात संचारित वायु विताडित शत्रुमेघान्धकार विनिर्मुक्त नागसारिका मण्डले स्वभुजबलार्णवे वाटपद्रक विषये वैश्वामित्री तटे दानवानी निमज्जिते" को एक साथ रखकर विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि कथित "कर्ण कुमुदाङ्कर तुषार:" का वास्तविक तात्पर्य क्या है। इससे स्पष्ट है कि त्रिलोचनपाल के समय पाटन के चौलुक्यराज कर्णदेवने अपनी सत्ता का विस्तार कर दक्षिण में लाटदेशकी सीमा मही नदीका उल्लंघन कर वर्तमान बरोदा के पास बहने वाली विश्वामित्री नदीसे आगे बढकर अधिकार जमा लिया था। इतनाही नहीं संभवत: स्तंभतीर्थ "वर्तमान केम्बे" से समुद्र मार्गद्वारा नवसारी प्रान्तकोभी अपनी सत्ता के आधिन किया था। जहां से पाटण वालोंको प्रस्तुत शासन पत्र के अनुसार त्रिभुवनका भाई जगत्पाल-भतीजा पद्मदेव और पुत्र त्रिविक्रमपालने ठोकपीटकर निकाल बहार किया था।

पाटणके कर्णदेवका नागसारिका मण्डलपर अधिकार होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण-शक संवत ९९६ का धमलाछामें प्राप्त शासन पत्र है। उक्त शासन पत्र द्वारा कर्णने धमलाछा ग्राम दान दिया है। अत: हम कह सकते हैं कि कर्णदेवने कथित दान नागसारिका विजयके उपलक्षमें दिया होगा। परन्तु पाटण वालोंका अधिकार नागसारिका मण्डलपर क्षणिक था। क्योंकि इस समय के बाद बहुत दिनों पर्यन्त उनके अधिकारका परिचय नहीं मिलता। और यह शासन पत्रतो रही सही शंकाको भी नष्ट करता है। क्योंकि दोनों शासन पत्रोंमें केवल ३ वर्षका अन्तर है।

शासन पत्रके ऐतिहासिक कथनोंका विवेचन करने के पश्चात इसके अन्तर विवेचनमें हम प्रवृत्त होते हैं। शासन पत्र से प्रकट होता है कि शासन कर्ताके चचा जगत्पालने शत्रुओंका मान मर्दन कर नागसारिका मण्डलका उद्धार किया था। और त्रिविक्रमपालने अपने कथित चचाके लडके पद्मदेवको नागसारिका मण्डलके अष्टग्राम नामक विषयका सामन्त बनाया था। अब विचारना है कि अष्टग्राम नामक नगर का संप्रति अस्तीत्व पाया जाता है या नहीं। टोपोग्राफीकल मान चित्रपर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि नवसारीसे लगभग ४-५ मीलकी दूरीपर दक्षिण सूरत जिला के जलालपुर तालुकामें "आठ" और उसी तालुकामें नवसारी से लगभग ७-८ मीलकी दूरीपर अष्टग्राम है। संभवत: इन दोनो गांवोंमेंसे कोइभी एक प्रशस्ति कथित अष्टग्राम हो सकता है। हमारी समझमें अष्टग्रामही प्रशस्तिका अष्टग्राम है। क्यों कि वहांपर पुरातन अवशेष पाये जाते हैं

अष्टग्राम विषयके अतिरिक्त शासन पत्रमे शुक्लतीर्थ, नन्दिपुर विषय और प्रदत्त ग्राम हरिपुरका उल्लेख है। अब विचारना है कि इनका संप्रति अस्तित्व है या

नहीं। इनमें शुक्ल तीर्थ नर्मदा तटका प्रसिद्ध तीर्थस्थान है और आजभी शुक्लतीर्थके नामसे हीं प्रख्यात है। इसका अवस्थान नर्मदाके दक्षिण तठपर भरूचसे लगभग १०-१२ मीलकी दूरीपर है। एवं अकलेश्वर राज्य पिपला लाइनके झघडीआ नामक स्टेशनसे ठीक उत्तरमे १-१॥ मीलकी दूरीपर नर्मदा वहती है। नर्मदाके बाम तठपर लिंबोद्रा नामक ग्राम है। अतः शुक्लतीर्थ और झघडीआके मध्य लिंबोद्रा और नर्मदाका व्यवधान हैं। नन्दिपुरका शासन पत्रमें दोवार उल्लेख है। प्रथमवार शासन कर्ताके निवासके रूपमे और द्वितीयवार नन्दिपुर विपयके रूपमे। नन्दिपुर स्थानमें शासनकर्ताके पूर्वजोंकी राज्यधानी थी। नन्दिपुरमें राज्यधानी होनेके संबंधमें हम पुर्वमें पूर्ण रूपेण विवेचन कर चुके हैं। नन्दिपुर ग्राम वर्तमान समय नांदोद नामसे प्रख्यात है और यह शुक्लतीर्थसे पूर्वदिशामें कुछ उत्तर हठा हुआ लगभग १७-१८ मीलकी दूरीपर हैं। नादोंदसे नर्मदा पुर्व दिशामें लगभग ६-७ मील और उत्तर दिशामें उतनीही दूरीपर बहती हैं। शुक्लतीर्थ झघडीआ और नांदोदके मध्यमे दोवती नदीमे पुर्व हरिपुर नामक ग्राम है। हरिपुर ग्राम नांदोद और झघडीयाआके मध्यवर्ती उमाला स्टेशनके निकट है। हरिपुर शुक्लतीर्थमें लगभग ७-८ मील पूर्व और नांदोदसे लगभग १०-११ मील पश्चिम है। हमारी समजमें हरिपुरका उल्लेख शासन पत्रमे नन्दिपुर विपयके अन्तर्गत किया गया है। वह संभवतः वर्तमान हरिपुरही पुरातन हरिपुर है क्योंकि विपयके अन्तर्गत १०-११ मीलकी दूरीपर होनेवाले गावोंका होना असंभव नहीं इस हेतु वर्तमान हरिपुरकेहीं पुरातन हरिपूर होनेकी संभवना है। पुनश्च पाठशालाके निमित्त दिया हुआ गाव पाठशालाके स्थानसे दूर देशमें नही हो सकता।

तीसरे स्थानका नाम काम्पिल्य है। काम्पिल्यके विपयमें शासन पत्रसे प्रकट होना है कि ब्रह्मावर्तके पांचाल जनपदका वह नगर था जहां के रहेने वाला ब्रह्मदेव ब्राह्मण था। जिसने शासन कर्ताको अपने उपदेश द्वारा कथित दान देनेके लिये अनुकुल बनाया था। ब्रह्मवर्त और पांचाल नाम पुराण प्रसिद्ध है। पांचाल नामसेभी पुराने ब्रह्मावर्त का ग्रहण होता है। ब्रह्मावर्त की भूरी भूरी प्रशंसा मनुस्मृतिमें पाई जाती है। प्रयाग से पश्चिम और दिल्हीसे पूर्व गंगा और यमुनाके मध्यवर्ती देशको ब्रह्मावर्त कहते है। इसी ब्रह्मावर्त के मध्य अलिगडसे पूर्व और कानपुरसे पश्चिम गंगा यमुनाके मध्यवर्ती स्थानको दक्षिण पांचाल कहते थे। दक्षिण पांचलकी राजधानीका नाम कम्पिल्य था। और गंगाके तटपर बसा था। आजभी फरूखाबाद जिलामें कपिला नामक ग्राम है। जिसके चारो तरफ पुरातन नगरका अवशेप पाया जाता है। हमारी समजमें शासन पत्र का बाह्य और आभ्यान्तर विवेचन हो चुका। अतः अब इतनेही से अलम् करते है।

अराकिरी-नागेश्वर मन्दिर (होनाली)

की

शिला प्रशास्ति

श्री स्वास्ति सकल जगति संस्तुयमान चरित्र महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलकं चौलुक्य वंशोद्‌भव श्रीमत् त्रयलोक्यमल्ल देवार राज्य प्रवर्धमान चन्द्रार्क तारा वरं सालुतं इरे। स्वास्ति समधिगत पंच महाशब्द पल्लवान्वय श्री पृथिवी वल्लभ पल्लवकुल तिलकं अमोघ वाक्यं कांचीपुर—त्रयलोक्यमल्ल नवि नोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंहदेवर कोगली अयनुरु—पलपतु का ग्रामं आलुतं इरे। शक वर्ष ९६९ नेमे सर्वजित संवत्सराय पुष्य शुद्ध पंचमी बृहस्पति वारं उत्तरायण संक्रान्ति यन्दु अरकेरेय अरदेय केशीमय——भो——वज पण्डितारा कालं कलर्चीधारा पूर्वकं नागेश्वर देवरिगे देगुलद यन्दु काम ४१-२ मतक्के तेङ्गनके —कामं ४१-२ अतु गलदे मत्त १ अरिम होर वेदले मत्त—रा हृदवर्ग परे केरेगे तेन्कन कोडियाली नलदे मत्तर १ वेदले मत्तर ५ इ धर्म चन्द्रार्क तारावरं सलवद

———

अराकिरी प्रशस्ति

का

छायानुवाद ।

कल्याणहो । जब के समस्त संसारमे संस्तुयमान चरित्र महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौ क्य वंशोद्भव श्रीमन त्रयलोक मल्ल देव का राज्य वर्तमान था उस समय पंच महाशब्द अधिकार प्राप्त पल्लववंशी पल्लवकुल के तिलक पृथिवी वल्लभ पवित्र वाणी (सत्यसंघ) त्रयलोक्यमल्ल ननिनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंहदेव कोगली प्रान्त का महासामन्त था। उस समय सर्वजित संवत्सर शक ९६९ पौष्य मास शुक्ल पक्ष पंचमी तिथि गुरुवार उत्तरायण संकान्ति के शुभ अवसर पर अराकिरी निवासी ओदियार केशीमाया ने पण्डितोंका पाद प्रक्षालन पूर्वक भगवान नागेश्वर देव के भोग राग नित नैमित्तिक पूजार्चन के निर्वाहार्थ अराकिरी ग्राममें निम्न प्रकारसे भूमिदान दिया।

(१)	देगुलद के लिये	मत्त १
(२)................		,, ४ १ २
(३)	गलदे	,, १
(४)	ओदिम हरि वेहल्ले	......
(५)	कोदियाली	,, १
(६)	वेहल्ले	१
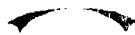
अराकिरी प्रशस्ति
का
विवेचन ।

प्रस्तुत शिला लेख मयसूर राज्य के सिमोगा जिला के होन्नाली तालुका अन्तर्गत अराकिरी नामक ग्रामके नागेश्वर मंदिर में लगा है। यह लेख अराकिरी ग्राम निवासी आरदेया केशीमाया के दानकी प्रशस्ति है। प्रशस्ति कथित दान अराकिरी ग्रामस्थ नागेश्वर देवके भोग राग निर्वाहार्थ किसी पण्डितका पाद प्रक्षालन पूर्वक दिया गया है। प्रशस्तिका कुछ अंश टूट जाने से यह प्रकट नहीं होता कि कथित पण्डित, जिसका पाद प्रक्षालन पूर्वक दान दिया गया है, का नाम क्या था और उसका नागेश्वर देव के साथ क्या संबंध था। परन्तु नागेश्वर देवके भोगरागार्थ प्रदत्त भूमिदान होने से उक्त पण्डित को हम नागेश्वर मंदिरका पूजारी कह सकते हैं।

प्रशस्ति की तिथि शक संवत ९६९ और सर्वजित नामक संवत्सरकी पुष्प शुक्ल पचमी तथा दिन बृहस्पति वार है। प्रशस्ति लिखे जाते समय चौलुक्य कुल तिलक त्रैलोक्य मल्लका राज्य काल था और उस समय पंच महा शब्द अधिकार प्राप्त पल्लवान्वय श्री पृथिवी वल्लभ पल्लव कुल तिलक अमोघ वाक्य कांचीपुर--त्रयलोकमल्ल ननिनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह कोगली पंच शत तथा कतीपय अन्यान्य प्रदेशोंका सामन्त था।

प्रशस्ति में राजाका नाम त्रयलोक्यमल्ल दिया गया है। हमें अन्यान्य शिला लेखों तथा शासन पत्रों और एतिहासिक लेखोंसे ज्ञात है। कि वातापि के चौलुक्य राज्य सिंहासन पर शक ६६२ से ६६० पर्यन्त आहवमल्लका अधिकार था। आहमल्लका विरुद्ध त्रैलोक्यमल्ल और नामान्तर सोमेश्वर था। अतः प्रस्तुत लेख आहवमल्ल त्रयलोकमल्लके राज्य कालिन है और उसके राज्य के सातवे वर्षका है। आहवमल्ल त्रयलोकमल्लको सोमेश्वर, विक्रमादित्य और जयसिंह नामक तीन पुत्र थे, इनमें तीसरे जयसिंहका नामान्तर सिंहन या सींगी और विरुद वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि त्रयलोक मल्ल था। अतः प्रस्तुत प्रशस्ति कथित कोगली पंच शत प्रभृतिका सामन्त पल्लव परमनादि जयसिंह आहबमल्ल त्रयलोकमल्ल का कनिष्ठ पुत्र है।

प्रशस्ति से प्रकट होता है कि आहवमल्ल ने जिस प्रकार अपने ज्येष्ठ पुत्र सोमेश्वरको केशुवलाल प्रदेश और विक्रमादित्यको वनवासी प्रदेशकी जागीर दिया था उसी प्रकार जयसिंहको कोगली पंच शत तथा अन्यान्य प्रदेशों का सामन्तराज बना शासनभार दे रखा था। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि 'आहवमल्लकी आयु राज्य पाने समय और प्रस्तुत प्रशस्ति लिखे जाते समय शक ६६६ मे उसके तीसरे पुत्र जयसिंहकी आयु क्या थी।

बिल्हण कवि कृत " विक्रमांक देव चरित्र " के पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि आहवमल्ल को राज्य पाने पश्चात बहुत दिनों पर्यन्त कोई पुत्र नहीं हुआ था। परन्तु बिल्हणके ही दुसरे स्थलके कथनसे प्रकट होता है कि अहवमल्ल के सोमेश्वर विक्रम और जयसिंह तीन पुत्र उसके स्वर्गवास समय शक ९९० मे पूर्ण वयस्क थे। आहवमल्लका राज्यकाल ९६२ से ९९० पर्यन्त २८ वर्ष है। अब यदि हम बिल्हण का पूर्व कथन "आहवमल्लको राज्य पाने पश्चात बहुत दिनों पर्यन्त कोई पुत्र नहीं हुआ था" मान लेवे तो वैसी दशा में उसकी मृत्यु समय सोमेश्वर आदि को अल्प वयस्क बालक होना चाहिये। परन्तु इसके विपरीत शक ९९१ से लगभग २३ वर्ष पूर्व शक ९६८ मे विक्रमादित्यका अपने पिता के साथ युध्ध में आना और चोल पति राजाधिराज प्रथम के साथ लडना पाया जाता है। इस युध्धका राज्याधिराज के राज वर्ष के २९ वें वाले अर्थात शक ९६८ के लेखमें वर्णन है। एवं चोल के राजा वीर राजेन्द्र के राज्य काल के चोथे वर्ष अर्थात शक ९८८ के लेखमें उसके कुण्डल संगम नामक स्थान पर आथवमल के साथ लडने का वर्णन है। उक्त युध्धमें आहवमल्ल के दो पुत्र विक्की [विक्रमादित्य] और सिंगन [जयसिंह] सामिल थे।

विक्रमादित्य की प्रथम युध्ध यात्रा शक ९६८ और द्वितीय युध्ध यात्रा शक ९८८ में २० वर्षका अंतर है। अब यदि हम प्रथम युद्ध यात्रा के समय विक्रमकी आयु १४ वर्षकी भी मान लेवें तो उसका जन्म अपने पिता के राज्य प्राप्त करने के ८ वर्ष पूर्व अर्थात शक ९५३ से पुर्व सिद्ध होता है। अतः यदि हम विक्रम और उसके वडेभाई सोमेश्वर के जन्म कालका अंतर २ वर्षभी मान लेवे तो आहवमल्ल के वडे पुत्रका जन्म शक ९५१ में ठहरता है। परन्तु जयसिंह अपने पिताका तीसरा पुत्र और विक्रम से कनिष्ठ था। अब यदि हम इन दोनों के जन्मका अन्तर दो वर्ष भी माने तो इसका जन्म शक ९५५-५६ में ठहरता है। अथवा संभव है कि जयसिंहका जन्म शक ९५५-५६ से कुछ पूर्व हुआ हो। क्यों कि आहवमल्ल को कई रानिया थी। ऐसी दशामें सोमेश्वर, विक्रम और जयसिंह का जन्मकाल अंतर दो वर्ष को कौन बतावे। उससे बहुत कम अर्थात केवल महिना, दिनों या घडी पल का हो सकता है। इन तीनो भाईओं का एक माता से जन्म नहीं हुआ था। यह ध्रुव सिध्धांत है। और इनके जन्मकाल का निश्चित ज्ञान न होने से इनकी आयु पिता के रज्यरोहन समय क्या थी कहना कठिन है। परन्तु इनका जन्म पिता के राज्यारोहन के समयसे बहुत पहले हो चुका था' इन प्रमाणो के सामने बिल्हण कवि का कथन भावुक और निरंकुश कविओंके कथनके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त बिल्हण के कथनकी उपेक्षा करानवाली उसके कथनमें अनेक प्रकारकी निराधार बातों की संप्राप्ती है

हां बिल्हणके " जयसिंहका शक ९६८ के युध्धमें सामिल न होना " प्रकट करनेवाले कथनमें कुछ सत्यांशको स्वीकार करने के लिये मनोवृत्तिका झुकाव होता है। और हम थोडी देरके लिये उसमें कुच सत्यांश मान लेवे तो भी कहना पडेगा कि उसका जन्म ९६९ के पूर्वही

हुआ था। क्योंकि उस वर्ष उसको कोगली आदि प्रदेशोंकी जागीर मिल चुकी थी। हां इसके अतिरिक्त यदि हम थोडी देरके लिये यहभी मान लेवें कि जयसिंहका जन्म शक ६६६ में ही हुआ था और जन्मके पश्चात हो उसे जागीर दे दी गई थी। क्योंकि ऐसा प्रायः देखनेमें भी आता है कि राजा लोग भावी विग्रह से बचने के बिचारसे अपने प्रत्येक पुत्रके जन्म पश्चात उसे जागीर आदि दे कर दृढ प्रबंध कर देते हैं। एवं जब तक वह अल्प वयस्क रहता है तब तक उसकी जागीर का प्रबंध उसके नामसे कोई कर्मचारी करता है। इस प्रकार के दृष्टांत का अभाव भी नहीं है। आहवमल्ल के द्वितीय पुत्र विक्रम की अल्पवयस्कता समय उसकी जागीर वनवासी का प्रबंध उसकी माता करती थी।

चाहे हम बिल्हण के कथनको अवकाश देने के लिये पूर्व कथित रूपसे मान लेवें चाहे उसे अधिकांशमें अन्यथा होने (अर्थात विक्रमादित्य और सोमेश्वर का अपने पिता आहवमल्ल के राज्यारोहन समय से पूर्व जन्म न होने प्रभृतिकथन) के कारण उसे त्याग देवें तोभी हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि शक ६६८ वाले युध्ध समय जयसिंह युध्धमें जाने योग्य नहीं था; वरना उसके समान वीर प्रकृती बालक यदि उसकी आयु युध्धमें जानेकी आज्ञा देती तो कदापि राज्य महल में क्रिडा करने के लिये पिता और भ्राता को रणक्षेत्र में जाता देखकर भी पीछे न ठहरता। अतः हम निशंक होकर कह सकते हैं कि इस शासन पत्र के लिखे जाते समय जयसिंह अल्प वयस्क बालक था और उसे कोगली पंच शत और अन्यान्य प्रदेशोंकी जागीर मील चुकी थी। परन्तु हमारी इस धारणा का मूलोच्छेद प्रस्तुत प्रशस्ती का वाक्य अमोघ वाक्यं करता है। क्योंकि अमोघ वाक्यं का अर्थ है। जिसका कथन कालत्रयमें अन्यथा न हो, जो अपनी बातो का धनी अथवा पूरा करनेवाला हो। हमारी समझमें ऐसे वाक्य का प्रयोग अल्प वयस्क अबोध बालक के लिये नहीं हो सकता। अतः कहना पडेगा कि जयसिंह प्रशस्ति लिखे जाते समय अल्प वयस्क नहीं वरण पूर्ण वयस्क था। और अपनी सत्य प्रियता, वचन बध्धता तथा प्रतिपालनता आदि गुणों के कारण ख्याति प्राप्त कर चुका था। किन्तु इस भावना का विमर्दक उसका शक ६६८ के युध्ध में सामिल न होना है।

हमारी समझमें युध्धमें सामिल न होना किसीका किसी युध्ध समय न तो उसके अस्तीत्व का विमर्दक हो सकता है और न उसकी अल्प वयस्कता सिद्ध कर सकता है। क्योंकि शक ६६८ और ६८८ वाले युध्धो में जयसिंह के ज्येष्ठ भ्राता सोमेश्वर का हम उल्लेख नहीं पाते हैं। परंतु वह उस समय जिता जागता और अनेक प्रदेशो का शासन करता था। पुनश्च प्रशस्ति कथित वाक्य "अमोघ वाक्यं"के आगे (कांचीपुर आदि) वाक्य है। यदि दुर्भाग्यसे अमोघ वाक्यं कांचीपुर और त्रयलोकमल आदि के मध्य कुछ अक्षर नष्ट न हुए होते तो स्पष्ट रूपसे ज्ञात हो जाता कि कांचीपुर के साथ जयसिंहका क्या संबंध था। परन्तु अमोघ वाक्यं कांचीपुर और त्रयलोकमल्ल ननिनोलम्ब के मध्यवर्ती प्रशस्ति के टुटे हुए अंश को दृष्टि

कोण में लातेही स्पष्ट हो जाता है कि उक्त स्थानमें चार अक्षरोवाला कोई शब्द होना चाहिए संस्कृत साहित्यमें सौहार्द्र तथा मनो मालिन्य भाव प्रदर्शक चार अक्षरवाले अनेक शब्द पाये जाते हैं। परन्तु वातापि के चौलुक्यों और कांचीपुर वालो वंशगत विग्रहको दृष्टिकोण में लाते ही हम कह सकते है कि उक्त स्थान में सौहार्द्र भाववाले शब्दोका होना सर्वथा असंभव है। पुनश्च अमोघ वाक्यं के पश्चात कांचीपुर आने से स्पष्ट है कि उसके कांचीपुर विजय अथवा संहारादि भाव द्योतन करने वाला पद होना चाहिए।

अतः हम सुगमता के साथ कह सकते हैं कि अमोघ वाक्यं कांचीपुर और त्रयलोक्यमल्ल ननिनोलम्ब के मध्य टुटे हुए स्थान पर चार अक्षर वाला विग्रह भाव प्रदर्शक "शब्द कालानल दावानल, संहारक, विध्वंशक तथा विमर्दक" आदि कोई पद होना चाहिए। हमारी समझमें अमोघ वाक्यं के पश्चात त्रयलोक्यमल्ल और कांचीपुर के मध्य कालानल पद उपयुक्त प्रतीत होता है। हम देखतेभी है कि जयसिंहके शौर्यकी उपमा तुम्बुरू होसुरु वाली प्रशस्ति में दाहलके संबंध में इसी प्रकार के पदका प्रयोग किया गया है। अतः कथित वाक्य "अमोघ वाक्यं कांचीपुर कालानलं त्रयलोक्यमल्ल ननिनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंहदेव" ज्ञात होता है। क्योंकि इसका अर्थ होगा कि अमोघ वाक्य त्रयलोक्यमल्ल ननिनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देव कांचीपुरीका कालानल अर्थात जलानेवाला। जिसका भावार्थ यह है कि शक ९६८ वाले अपने पिता और भ्राता के पराभव का बदला कांचीपुर के मान मर्दन द्वारा लेनेकी प्रतिज्ञाको पुरा करनेवाला जयसिंह। इस वाक्यका इस प्रकार सुन्दर मनोग्राह्य तारतम्य संमेलन हो जाता है।

इन बातों और अन्यान्य बातो को लक्ष कर हम कह सकते हैं कि शक ९९९ में इस प्रशस्ति के लिखे जाते समय जयसिंह पूर्ण वयस्यक और अपने पिता और भ्राताओं के शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाला था। प्रस्तुत प्रशस्ति में जो उसके पिताको राजा और उसे सामन्त रूपमें वर्णित है इसके संबंध में इतनाही कहना पर्याप्त है कि जयसिंहका पिता राजा और वह अपने पिता का सामन्त था।

प्रशस्ति में जयसिंहको पल्लव कुल तिलक प्रभृति लिखनेका उद्देश्य यह है कि उसकी माता पल्लव देशकी राज्य कुमारी थी। अथवा हम यह भी कह सकते है कि जयसिंह अपने नानाके यहा दत्तक रूपसे चला गया था। अतः उसके नामके साथ पल्लव वंशोद्भव भाव द्योतक विरुद्ध लगे है। परन्तु ऐसा मानने से एक बडी भारी आपत्ति का सामना करना पडेगा। उक्त आपत्ति यह है कि जयसिंह के बडे भाईओं विक्रम और सोमेश्वर के नाम के साथ भी हम उक्त प्रकारकी उपाधिओं को पाते हैं। और यदि कथित उपाधि अपने नाना के यहां चले जानेका भाव दिखाने वाली हैं तब तो तीनो भाइओं का अपने नाना के यहां जाना सिध्ध होता है। जो किसीभी दशा में माना नही जा सकता। अतः उक्त उपाधियां जयसिंहकी माता के वंशका द्योतन करने वाली है।

नेरल गुण्डी-होनाली तालुका

[ईश्वर मन्दिर] वाली

वीरनोलम्ब जयसिंह परमनादि की

शिला प्रशस्ति ।

स्वस्ति समस्त भुवनाश्रय पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलकं चौलुक्याभरणं श्रीमत् त्रयलोकमल्ल देवरु चतु स्समुद्र पर्यन्तं वर सुख सत्कथा विनोदि राज्यं गेयुत्तं इरे । तत्पद पाद्मोपजीवी समधि गत पंच महाशब्द पल्लवान्वय श्री पृथिवी वल्लभ पल्लककुल तिलकं एकवाक्यं श्रीमत् त्रयलोकमल्ल नोलम्ब पल्लव परमनादि देवार दादिरवलिगे शशिरवं वल्लकुण्डे मुनुरं कोनादियु रुमं सुख सत्कथा विनोदि राज्यं गेयुत्तं इरे । तत्पद पाद्मोपजीवी समस्त राजकुमार निरुपित महामात्य पदवी विराजमान मानोन्नत प्रभु मन्त्रोत्साह शक्तित्रय संपन्न शिवपाद शेखर यतिदित गरुड नामादि समस्त प्रशस्तिसहित श्रीमत् त्रयलोकमल्ल नोलम्ब परमनादि राज्य मनु विष्ठं इरे । शके वरीस ९८६ जय संवत्सरान्त-द्वेय नेरिलु गुन्डीय कर आदेय दितमाय सूर्य ग्रहणदोलु मल्लीकार्जुन देवरगे गद्देक ४०० वेदलेय ४ मम-लिकावेय काल कचिधारा पूर्वकं आदि कोट गो-शासनं ।

नेरलगुन्डी प्रशस्ति

का

छायानुवाद ।

कल्याण हो जब के सकल संसार के आश्रय, पृथिवी के स्वामी महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्य वंश विभूषण श्रीमत त्रैलोक्यमल्लदेव का राज्य चारो समुद्रकी अवधि पर्यन्त सुख और शान्ति से लहरा रहा था और श्रीमान महाराजाधिराज त्रयलोक्यमल्ल के पादपद्म आश्रित पंच महा शब्द अधिकार प्राप्त पल्लवान्वय श्री पृथवी वल्लभ कुल तिलक एक वाक्य श्री त्रैलोकमल्ल नोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंहदेव दक्षिवर्लीग शशिरव (सहस्र) बलकुन्डे सुनुरु (त्रयशति) और कोन्डीयरुम प्रदेशका शासन सुख और शान्ति के साथ करते थे।

एवं श्री जयसिंहदेव का चरणरत-समस्त राज्यभार अधिकार प्राप्त सकल मान संभ्रम युक्त स्वामी कार्य निपुण-शक्ति त्रय संपन्न-गरुड समान स्वामी कार्य सम्पादक महामात्य कथित प्रदेशोंका राज्य भार संचालन करता था।

उस समय जय संवत्सर शक ९८६ के सूर्य ग्रहण पर्वके अवसर पर नेरलगुन्डी के ओदियार हितमाय ने मल्लिकार्जुन देवके नित नैमित्तिक भोग राग पूजन अर्चन निर्वाहार्थ शासन पत्र द्वारा जल पूर्वक भूमि दान दिया।

१–गदेक निमित्त ४००

२–बेहलेय निमित्त ५

इस शासन का उल्लंघन कोई न करे।
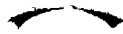
नेरल गुन्डी होनाली प्रशस्ति

का

विवेचन.

प्रस्तुत शिला प्रशस्ति मैसूर राज्य के सिमोगा जिला के होनाली तालुके नेरल गुन्डी ग्रामस्थ ईश्वर मन्दिर में लगी है। प्रशस्ति नेरल गुन्डी ग्राम के ओरदेया हिनमाया के सूर्य ग्रहण के समय मल्लिकार्जुन नाम मन्दिर को दिये हुए दान का वर्णन करती है प्रशस्ति की तिथि जयनामक संवत्सर शक ६८६ है। प्रशस्ति लिखे जाने के समय चौलुक्य नरेश त्रैयलोक्यमल्ल का शासन काल था। और प्रशस्ति वाला ग्राम नेरल गुन्डी त्रैलोक्यमल्ल के द्वितीय पुत्र जयसिंह वीरलोलम्ब पल्लव परमार्नादि के शासनाधीन प्रदेश के अन्तर्गत था। जयसिंह के शासनाधीन प्रशस्ति के अनुसार ददिर वलीगसहस्र वलकुण्डा त्रयशत और कुण्डीयार प्रदेश थे। प्रशस्ति से वह प्रकट नहीं होता है कि कथित तीनो प्रदेशो में से नेरलगुण्डी ग्राम किस प्रदेश में था।

पुनश्च प्रशस्ति के पर्यालोचन से प्रकट होता है कि जयसिंह के प्रतिनिधि रूपमें उसका महामंत्रि उसके शासनाधीन प्रदेशोंका शासन करता था, उक्त मंत्रि को शासन संबंधी पूर्ण अधिकार प्राप्त था क्योंकि प्रशस्ति के वाक्य " समस्त राज्यभार निरूपित " शासन संबंधी पूर्ण अधिकार प्राप्ति का भाव प्रकट करता है।

अगाकिंग पूर्वोधृत प्रशस्ति वाली प्रशस्ति से हमें प्रकट है कि जयसिंह को कोगली पंचशत तथा अन्यन्य प्रदेशों की जागीर शक ६६६ में मिली थी। परन्तु उक्त प्रशस्ति के कुछ अंश नष्ट हो जाने से अन्य प्रदेशोंका नाम ज्ञात नहीं हो सकता था। वर्तमान प्रशस्तिमें ददिर वलीग, वलकुण्डा और कुण्यार प्रभृति तीन प्रदेशोंका नाम स्पष्ट तया उल्लिखित है परन्तु कोगली पंचशत का पूर्णतया अभाव है, यद्यपि कोगली पंचशतका इसमे उल्लेख नहीं है तथापि इसका समावेश इत्यादि में हो जाता है और जयसिंहके शासनाधीन प्रदेशों में चारका नाम स्पष्ट मालुम हो जाता है।

प्रशस्ति में जयसिहके अन्यान्य विरुदों और विशेषणों के साथ एक वाक्य विरुद दृष्टिगोचर होता है। एक वाक्यपद पूर्व प्रशस्तिका अमोघ वाक्यका पर्यायबाचक वाक्य है। इससे प्रकट होता है कि जयसिंह बाल्यकाल से ही अपने वाक्य का धनी अथवा अपने वचनको पूरा करने वाला था। वह सामान्य राजा और राजकुमारों के समान अपने वचनको गौरव और महत्व शून्य उपेक्षनीय नहीं मानताथा वरण जो कुछ कहता था उसे अपने लिये प्रतिबंधरूप मान उसे पूरा करता था। कितने महानुभावों के विचारसे जयसिंह समान के लिये "एक वाक्य और अमोघ वाक्य" पदक।

प्रयोग कविकी भावुकता मात्र है। परन्तु हमारी समझमें वह भावुकता नहीं वरण यथार्थ है, क्योंकि मानव स्वभाव जो बाल्यकाल में पडजाता है वह मरते दम तक नहीं छूटता चाहे वह असत्य भाषण आदि कुछभी क्यों न हो, मानव जीवनमें किसी प्रकार के वचनका पूरा करना महत्वका प्रदर्शक है जो मनुष्य अपने वाक्य का धनी होता है उसमें किसी प्रकार के दुर्गुणका समावेश नहीं होता।

हमारी इस धारणाका देदीप्यमान उज्वल प्रमाण जयसिंह के पूर्ण यौवनकालीन शक ६६६ के चितलदुर्ग जिला के हुलगुण्डी ग्राम वाली प्रशस्ति में पाया जाता है। उधृत प्रशस्ति कथित जयसिंह के गुणोंका आस्वादन हमारे पाठकों को विवेचन में अवश्य मिलेगा, इस हेतु यहां पर हम उसका उल्लेख नहीं करते हैं।

प्रस्तुत प्रशस्ति के विवेचन को समाप्त करनेके पूर्व हम इसकी तिथि सम्बन्धमें कुछ विचार प्रकट करते हैं। इसकी तिथि जय संवत्सर शक ६८६ है। परन्तु संवत्सर केसाठ नाम वाले चक्र पर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि शक ६८६ में जय नहीं वरण क्रोध संवत्सर था एवं शक ६८६ से ठीक दश वर्ष पूर्व शक ६७६ में जय संवत्सर था। ऐसी दशामें हम कह सकते हैं कि शक ६७६ के स्थान में भूल से ६८६ उत्कीर्ण हो गया है। हमारी इस धारणा के प्रतिकुल कहा जा सकता है कि वर्ष लिखने में भूल नहीं वरण संवत्सर के नाम में भूल हुई है। विनम्र समाधान यह है कि प्रस्तुत प्रशस्तिके संवत्सरका निश्चय करने के लिये हमारे पास दो साधन हैं। प्रथम साधन तो यह है कि पूर्व भावी किसी भी विक्रम अथवा शक संवतों के संवत्सरों का यथार्थ नाम जानने की प्रक्रिया जो हमारे ज्योतिषशास्त्रके आचार्योंने निर्धारित किये हैं और दूसरा साधन यह है कि प्रस्तुत प्रशस्ति के पूर्वभावी निर्भ्रान्त संवत्सर वाले लेखों और प्रशस्तियों के समय से संवत्सरोंके चक्रकी परिगणनाकी जाय।

प्रथम साधन के संबंध में हमारा इतनाही कहना है कि उक्त गणना के अनुसार शक ६८६ में नही वरण शक ९७६ में जय संवत्सर पडता है। अब रहा द्वितीय साधन उसके संबंधमें भी हमारा निवेदन है कि इसके अनुसार भी जय संवत्सर शक ६८६ में नही वरण ६७६ में पडता है हमारे पाठकों को ज्ञात है कि जयसिंह के पिता और पितामह प्रभृतिके अनेक लेख हम चौलुक्य चंद्रिका के वातापि खंडमें पूर्व उधृत कर चुके हैं एवं जयसिंहका आराकिरीवाला लेख पूर्व उद्धृत किया है उक्त अराकिरीवाले लेखका संवतसर्वजीत है एवं चौलुक्य राज्य उद्धारक तैलपदेव द्वितीय के निगुण्डवाले लेखका संवत्सर चित्रभानु और शक वर्ष ६०४ है। इस लेखकी तिथि और संवत निर्भ्रान्त है। अतः हम अपने दूसरे साधनका आधार स्तंभ उसीको बताते हैं।

हमें यह ज्ञात हो गया कि शक ६०४ चित्रभानु संवत्सर था, अतः संवत्सर चक्र पर दृष्टि पात कर ज्ञात करना होगा कि चित्रभानु संवत्सर ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र की वीसीओं में से किस वीसी में है और इसकी संख्या क्या है। चित्रभानु संवत्सर ब्रह्मा की वीसी में है और इसकी संख्या १६ है। एवं वीसियोंकी सम्मिलिति संख्या वाले चक्रमें भी इसकी संख्या १६ पड़ती है।

शक ६०४ और विवेचनीय शक ६८६ में ८२ वर्षका अन्तर है। इधर संवत्सरोंकी संख्या केवल ६० हैं। पुनश्च उनमेंसे भी १६ व्यतीत हो गये हैं। अत: संवत्सरकी संख्या ४८ हैं। इस ४८ को ८२ बनाने के लिये हमे संवत्सर चक्रका पूर्ण परिभ्रमण कर पुनरावर्तन करना पड़ेगा और ३८ संख्या वाले चक्रवर्ती संवत्सर पर्यन्त पहुंचना होगा।

संवत्सर चक्र वीं ३८ की संख्या विष्णु की है। वह १८ वे नामको लेकर पुरा होता है। अब देखना है कि विष्णु की वीसी वाले १८ वें संवत्सरका क्या नाम है। उक्त वीशी के नामचक्र पर दृष्टिपात करने से १८ वी संख्यावाला संवत्सर क्रोधी संवत्सर प्राप्त होता है। अतः इस प्रकारभी हमारा पूर्व कथन कि, शक ६८६ में क्रोधी संवत्सर था सिद्ध हो गया। अब केवल मात्र शक ६७६ में जय संवत्सरका होना निश्चित करना मात्र रह गया है। यह अत्यन्त सहज है, क्योंकि शक ६८६ से पूर्व शक ६७६ पडता है। जब ६८६ में विष्णुकी वीशीका १८ वां संवत्सर क्रोधी है तो उसे १० वर्ष पूर्व अर्थात विष्णुकी वीशीका ८ वां संवत्सर पड़ेगा। विष्णुकी वीशीका आठवा संवत्सरका जय नाम है। इस प्रकार भी हमारा पूर्व कथन, कि जय संवत्सर शक ६८६ में नहीं वरन् शक ६७६ में था सिद्ध हो गया। अत: हम निशंक होकर प्रकट करते हैं कि प्रस्तुत प्रशस्ति का शक वर्ष ६८६ के स्थान ६७६ में भूल से उत्कीर्ण हो गया।

श्री वीर लोलम्ब जयसिंह

का

जातिग रामेश्वर गिरी

वाली

शिला प्रशस्ति।

१ ॐ स्वस्ति समस्त भुवन संस्तुत महा महिम
२ श्रीदमोदय श्रोलासित पल्लवानवयं श्री
३ पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वरं
४ परम महेश्वरं विदग्धी विलासनी विलोचन चकोर चन्द्रं
५ प्रत्यक्ष देवेन्द्रं राज [illegible] भुजंग अन्नन सिंग
६ श्रीमत् त्रैलोक्यमल्ल लोलम्ब पल्लव परमनादि जय
७ सिंह देवर गोयदवादाय पारिविदिनल सुखादिं राज्यं
८ गेयुतं इरे। शक वर्ष ९९३ नेम विरोधिकृत संवत्सराय
९ फालगुनद अमावासे बुधवारं वलगोति तीर्थ स्थान
१० द रामेश्वर देवरगे कार्नायकल मुनूरी वलीय
११ वारं वन्नेकलं सर्वनमस्य आगी अमृतराशी
१२ जीयर्गे धारा पूर्वकं माडी कोत्तार। ई धर्मान
१३ आवबोर्व किदीमिदवं वानराशी वाल गोतियल
१४ कावलुयुं ब्राह्मण रप आलीद पात्तकन अक्कु।
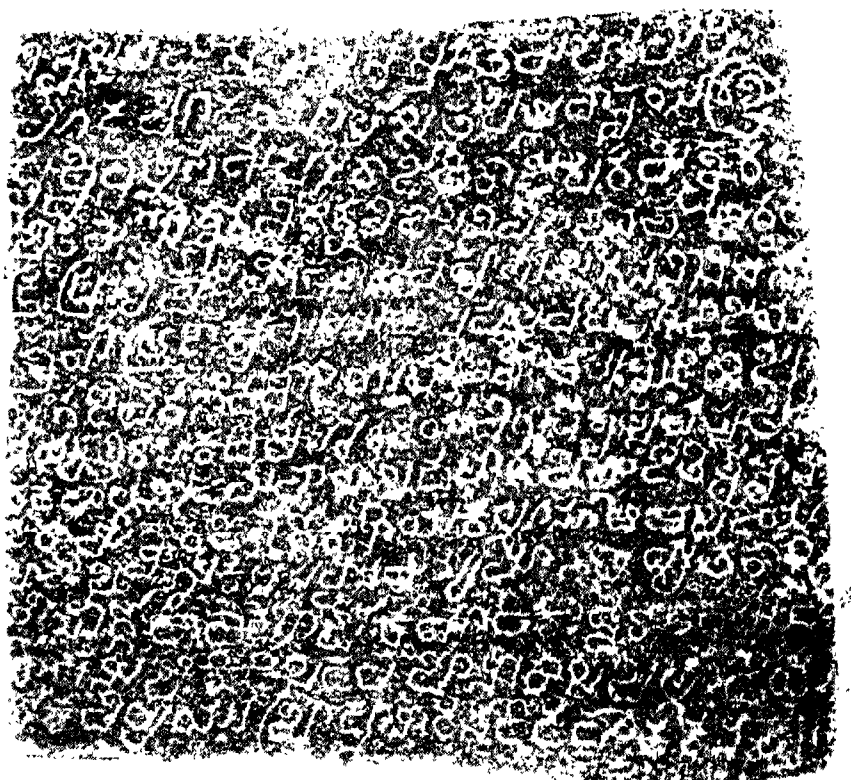
उर्नाग गमेश्वर का शिलालेख।

श्री वीर नोलम्ब जयसिंह
की
जतिंग रामेश्वर प्रशस्ति
का
छायानुवाद ।

कल्याण हो । जब के समस्त संसारका स्तुतिपात्र—महासोदय—पल्लवान्वय पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर—परं माहेश्वर—विदग्ध विलासिनी विलोचन चकोर चंद्र साक्षात देवेन्द्र राजविद्या भुजंग—अनन सिंग—श्रीमान त्रैलोक्यमल्ल नोलम्ब पल्लव परमनादी जयसिंह देव गोन्दावाडी सिबिर के बहिर्भूत स्थित होकर शासन करते थे ।

उस समय विरोधि संवत्सर शक ९९३ के फालगुण अमावस्या बुधवारको बलगोती तीर्थके श्री रामेश्वर देव के भोगराग पूजन अर्चन निर्वाहार्थ कनेयकाल शत विषयान्तवर्ती वानेकाल नामक अमृत राशी को जलधारा पूर्वक प्रदान दिया ।

श्री वीर नोलब जयसिंह
की
जतिग रामेश्वर प्रशस्ति
का
विवेचन ।

प्रस्तुत लेख वीरनोलम्ब पल्लव परममनादि त्रैलोक्यमल्ल जयसिंह के दानका शासन है। यह लेख २ १/२ X २ १/३ फीट प्रस्तर पर उत्कीर्ण है। उक्त प्रस्तर जतिग रामेश्वर मन्दिर के पृष्ट प्रदेश में है। अर्थात जतिग रामेश्वर मन्दिर एक प्राचीन मन्दिर है जो शक ८८४ में बनाया गया था। मन्दिर जतिग गिरि नामक पर्वत पर बना है। उक्त गिरि समुद्र तलसे ३४६६ फीट उंचा है। और चितलदुर्ग जिला (मयसूर राज्य) के सिदापुर ग्राम के समीप है।

प्रशस्तिकी लेख पंक्तिया १४ हैं। लेखकी लिपि हाले कनाडी और भाषा संस्कृत तथा कनाडी मिश्रित है। प्रशस्तिके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि जयसिंह जब नोलम्बवाडी का शासन करता था तो गोदावाड़ी ग्रामके बाहर अपनी चमुमें निवास करते समय बालगोती तीर्थके रामेश्वर नामक शिव मन्दिरके भोगाराग निर्वाहार्थ कानीयाकल तीन सौ विषयके वानेकल ग्रामको चढ़ाया था।

कथित दानकी तिथि नव चंद्र बुधवार फाल्गुण मास विरोधिकृत संवत्सर शक ९९३ है। उक्त तिथि बुधवार ३१ मार्च सन १०७२ के बराबर है। यह समय सोमेश्वर द्वितीय के राज्य काल में है। क्योंकि उसका समय शक ९९० से ९९८ तदनुसार ईस्वी सन १०६८ से १०७६ पर्यन्त है।

प्रशस्तिके पर्यालोचनसे जयसिंह के अन्यान्य विरुद के साथ "अनन सिंह" विरुद् पकट होता है। अनन सिंह कनाडी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ अपने बडे भाइका सिंह होता है। अतः हम कह सकते है कि जयसिंह अपने बडे भाई सोमेश्वर द्वितीयके आधीन था।

प्रशस्ति में जयसिंहको परम महेश्वर कहा है इससे प्रकट होता है कि वह शिवका अनन्य भक्त था। एवं प्रशस्ति कथित "पल्लवान्वय" का विचार पूर्वोक्त प्रशस्ति में पूर्ण रूपेण कर चुके है। अतः यहां पर इसके संबंध में कुछ भी लिखना पिष्टपेषण मात्र है।

प्रशस्ति से प्रकट होता है कि जयसिंह ने प्रशस्ति कथित दान उस समय दिया था जब वह गोन्दावाडी शिबीर के समीप में निवास करता था। शिबीर अथवा उसके समीप निवास

करने का अभिप्राय शान्ति का नहीं वरण युद्धकाल का ज्ञापक है। अतः यह निश्चित है कि जयसिंह या तो उस समय किसी युद्ध के लिए जा रहा था अथवा किसी युद्ध में विजय प्राप्त कर लौट रहा था। अब विचारना है कि विवेचनीय युद्ध किस और किसके साथ युद्धका संकेत करता है। जयसिंहने स्वतंत्र रूपसे किसीके साथ युध्ध नहीं किया था क्योंकि प्रशस्तिमे उसके लिये "अननसिगम" अर्थात अपने बडे भाईका सिंह लिखा गया है। इस विरूदका भावार्थ यह है कि जयसिंह अपने बडे भाई सोमेश्वरका सिंह अर्थात सिंह समान प्राक्रमी अद्वितीय वीर था। अतः स्पष्ट है कि जयसिंह सोमेश्वर पर आक्रमण करनेवालों का पराभव करके अथवा उसकी आज्ञासे उसके शत्रुओंके देशको विजय कर कथित गोन्दावाडी शिवीर के बाहर निवास कर रहा था और अपनी विजय के उपलक्षमे अपने आराध्य देव भगवान शंकर के रामेश्वर नामक मन्दिरको उक्त दान दिया था।

शक ९९१ में सोमेश्वर के राज्यरोहन पश्चात चौलुक्य राज्यका अपहरण करने के विचारसे वीर चोल ने आक्रमण किया था और उसे सोमेश्वर विक्रम और जयसिह के सामने लेनेके देने पडे थे। उक्त युध्ध वर्तमान प्रशस्तिकी तिथि से लगभग दो वर्ष पूर्व हुआ था। अतः उस विजय के उपलक्षमें यह दान नही हो सकता। अब विचारना है कि इस प्रशस्तिमे सांकेतिक कौनसा युध्ध है।

कांचीपति वीर राजेन्द्र चोल के राज वर्ष सातवें के—मदर्न इन्डीया इन्स्क्रीप्शन जिल्द ३ पृष्ठ २९३ में प्रकाशित-लेखमें प्रकट होता है कि उसके और सोमेश्वर भुवनमल्ल के बीच एक युध्ध हुआ था। उक्त लेखसे यह भी प्रकट होता है कि कथित युध्धमें सोमेश्वर का मझला भाई विक्रम राजेन्द्र चोलसे मिल गया था और सोमेश्वरको हारना पडा था। एवं राजेन्द्र चोलने सोमेश्वर से कन्नड और रट्टवाडी प्रदेश छीन लिया था तथा रट्टवाडी विक्रमको उसके देशद्रोहके पुरस्कारमें दिया था। अब यदि हम इस युध्धको प्रस्तुत प्रशस्तिमें सांकेतिक युध्ध मान लेवें तो वैसी दशा में दो विपत्तियां विकराल रूप धारण कर सामने आती हैं। प्रथम विपत्ति यह है कि वीर राजेन्द्र चोल के कथित लेखमें शक आदि संवत का उल्लेख नहीं है और दुसरी विपत्ति यह है कि विक्रमाङ्कदेव चरित्र के कर्ता बिल्हण के अनुसार विक्रम सोमेश्वर का साथ छोडकर कल्याण से आते समय जयसिंहको अपने साथ लेता आया था।

प्रथम विपत्ति के संबंध में यह कह सकते है कि वीर राजेन्द्र चोल का राज्यारोहन अन्यान्य ऐतिहासिक लेखों के आधार पर शक ९८६ का प्रारंभ माना जाता है। अतः उसका सात वां राज्य वर्ष शक ९९३ का प्रारंभ अर्थात कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा हुआ। अतः उसके सातवें वर्ष वाला युध्ध शक ९९३ के कार्तिक मासके बाद होना चाहिए। संभव है कि कथित युध्ध कार्तिक और फालगुण के मध्य किसी समयमें हुआ हो। हम उक्त युध्धको ही प्रस्तुत प्रशस्ति सांकेतिक युध्ध मानते है।

अब रहा द्वितीय विपत्ति के संबंधका साजमंस्य संमेलन। इस संबंधमे हम बिल्हण के कथनको अस्वीकार करते हैं। क्योंकि बिल्हणने अपने आश्रयदाता विक्रमादित्यके चरित्रको निर्दोष और सोमेश्वरके चरित्रको दोषपूर्ण चित्रित किया है। बिल्हण के कथन और कांचीपति वीर राजेन्द्र चोलके लेखको समानान्तर पर रख तुलना करतेही बिल्हणकी पोल खुल जाती है क्योंकि उसने विक्रमदित्यके युध्ध समय अपने जातीय शत्रुसे मिल जानेका उल्लेख नहीं किया है। अपने बडे भाई और राजाका साथ युद्ध समय छोड शत्रुसे मिल जाना यदि निर्दोष और प्रशंसनीय चरित्र है तो निर्दोष चरित्रको शब्द सागर और साहित्य क्षेत्र से निकाल बहार करना पडेगा।

पुनश्च हम बिल्हण के कथनको निम्न कारणोंसे भी नहीं मान सकते। वीर राजेन्द्र चोलकी प्रशस्ति कथित युद्ध के पश्चात भाविनी प्रस्तुत प्रशस्ति और इससे दो वर्ष पश्चात वाली हुले गुण्डी सिद्धेश्वर प्रशस्ति जयसिंहको स्पष्ट रूपसे सोमेश्वर के आधिपत्य को स्वीकार करनेवाला बताती है।

अतः हम अन्तमें निशंक हो प्रस्तुत प्रशस्ति कथित जयसिंहका गोवुन्द शिवीरके बाहर निवास करने प्रभृति से यही परिणाम निकालते हैं कि विक्रमादित्य जब युद्ध क्षेत्र से निकल कर शत्रु से जा मिलाना और सोमेश्वर को भागना पडा उस समय जयसिंह अपने स्थान पर डटा रहा और शत्रुको प्रचुर लाभ नहीं उठाने दिया।

हुले गुन्डी प्रशस्ति

स्वस्ति समस्त भुवनाश्रयं पृथिवी वल्लभं महाराधिराज परमेश्वरं परम भट्टारकं सत्याश्रय कुल तिलकं चौलुक्या भरणं श्री भुवनमल देवर राज्यं उत्तरोत्तराभि प्रवृद्धि वर्धमानं आचंद्रार्क तारा वर सलुत्तं इरे। स्वस्ति समस्त भुवनस्तुतं अप्प महामहि मोदयोल्लसित पल्लवान्वय श्री पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर वीर महेश्वरं निदग्ध विलासिनि विलोचन चकोर चंद्रं प्रत्यक्ष देवन्द्रं विक्रान्त कराठीरवं मण्डलीक भैरवं शरणागत वज्र पंजरं चालुक्य दिक्क कुंजरं साहसालंकारं कीर्तिवल्लरी कल्पित त्रिलोकं राज विद्यानगरा भुजंग अन्न लिशिम श्रीमत त्र्यलोक्यमल्ल न लम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देवर दिव्य पाद पद्मोपजीवीय अप्य। स्वस्ति समस्त दुष्ट शानि मानेय महान्ध गन्ध गजसिंह सहसोतुंग रणरंग राक्षसं दिगालभंक भानांकुशं चपल मानेय गान्डल चतुर्मुखं मच्छरिव वैरी घट भुभुंक अंकितु गन्द कडन प्रचण्ड कायावर भीम जलद अंक राम पगेयं बेङ्कोलवं कलीय मार कलवंवाभि दसेरे मलभम भिनरे कोलम-रक्तगि इर्ब सरेवर कालनरं कवं अहित जन कदलीबन कुंजरं सुभट ललाट पट वैरी वृत नपं नपुगं वीरिदिन्द अपुं पर मण्डल सुरेकारं वैरीवङ्कारं अखिल करि चुराकं वीराग्रणराम इावितन कोलाहलं कविगमक वाद वाग्मी समबरणं नामादि समस्त प्रशस्ति सहितं श्रीमन्महासामन्तं केयूर मण्डलीय पच्छागं सूलगाल पल्ल तुमान आलुतं इलदु स्वस्ति शक ९९७ नेय प्रमादि संवत्सरान पुष्य बहुलाष्टमी सोमवारद अनद उत्तरायण संक्रान्ति निध्याल स्वास्ति यम नियम स्वाध्याय ध्यान धारणा मौणानुष्ठान जप समाधि सम्पन्नार अप्प श्रीमन केयूर ज्ञानशिव देव भोगी मुनिवर कालं केरच्छी धारा पुर्वकं मादी सुरगल तिथाद भोमेश्वर त्रिडम्बेश्वर वादीय आगलधि उल्लदेवाण पल कोनेयी पश्चिम दिशा वर दोल वित्त केत मयी अरुवत्तु श्रीमान महा सामन्तं जगयन गाकुदं

वीम्मगावुदं केरेयुग तन्न केरेय केरेगोदन गेयलु भीमेश्वर देवरगे विसा गलदे कम्मम १०० इन्तु भूमिदान माडिदरगे फल ॥

श्लोक ॥

यावद्दण्ड भवेदभूमिः सामन्तो दयसादिता ।
तावत्युग सहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
इन्त इ धर्मम प्रतिपालिसिद वरगे ।

श्लोक ॥

चतुरसागर पर्यन्तं पृथ्वी दत्तस्य भूपिते ॥
यद्भेद र्थ द्विजेन्द्राणां राहु ग्रहस्ते दिवाकर ॥
तस्य तत्फल माप्नोति शिवलोके महीयते ।

इन्त इ धर्मं अलीदं महा पात्तकान अक्कु ।
अलिसाहिते श्लोक । भ्रमन्ति सुचिरं कालं क्षुत्पिपासादि पिडीताः ।
आघोर नरकं यान्ति यावचन्द्रदिवाकरं ॥
न विष विषमित्याहुः देव स्वंविष मुच्यते ।
विष मकाकिनं हन्ति देवस्वं पुत्र पौत्रकं ॥

३ शिला लेखकं वरेदं श्रीमन्महा सामन्त मगीय चायत सान्धि विग्रही वम्मयान ।
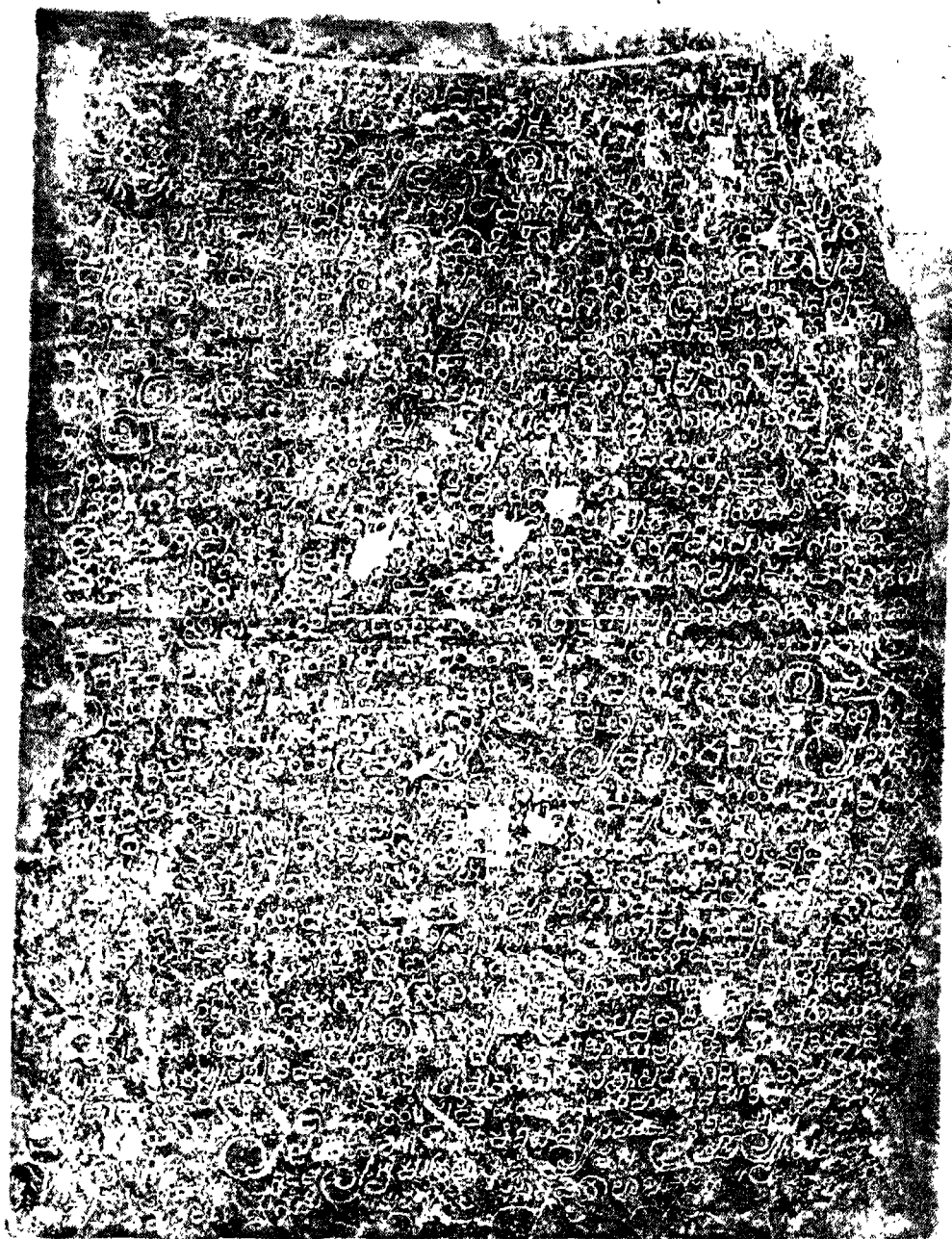
हुलेगुन्ड (चितल दुर्ग) सिद्धेश्वर मन्दिर का शिलालेख ।

हुले गुण्डी प्रशस्ति

का

छायानुवाद.

स्वस्ति । समस्त संसार के आश्रय पृथ्वी पति महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चालुक्य वंश विभूषण श्री भुवनमल्ल देव का राज्य लहरा रहा था । [illegible] पल्लवान्वय पृथ्वी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर वीर महेश्वर - [illegible] का चंद्रमा—साक्षात इन्द्र विक्रान्त [illegible] - [illegible] कुंजर - सहसालंकार कीर्ति [illegible] श्री त्रयलोक्यमल्ल नोलम्बा पल्लवादि [illegible] देव था :-

[illegible] गजसिंह साहस चूड़ामणि युद्धमें राक्षस समान [illegible] वंशकर्ता अंकुश - परम प्रचण्ड, भीमाकार [illegible] बड़े बड़े योद्धाओंके ललाट पटका विदारक शत्रु रूप घृतका तापक [illegible] - [illegible] कवियोंकी कविता प्रवाह का निरोधक, केरेयुर निवासी महा सामन्त [illegible] द्वारा [illegible] प्रदेशका शासन करता था ।

[illegible] समय शक [illegible] प्रमादि संवत्सर के पुण्य बहुलाष्टमी तिथि सोमवार उत्तरायण संक्रान्ति के अवसर पर केरेयुर निवासीने यम नियम स्वध्याय ध्यान धारणा मौणानुष्ठान जप समाधि संपन्न ज्ञान शिव देव मुनीको मुरगाल तीर्थ के भीमेश्वर और हिडम्बेश्वर तथा अन्यान्य देवताओं के नित्त नैमित्तिक भोगराग [illegible] जीर्ण निवाहार्थ १०० मत्तल भूमिदान दिया ।

संसारमें जबतक सूर्य चंद्र और तारागणों की स्थिती है । भूमिदान देनेवाला रुद्रलोकमें सहस्र युग पर्यन्त वास करता है ।

वेदार्थ वित्त ब्राह्मणों को सूर्य ग्रहण के अवसर पर जो समस्त संसारके दानका पुण्य प्राप्त होता है वही पुण्य परदत्त दानके संरक्षण का होता है ।

भूदान का अपहरण करने वाला क्षुत्पीपासापिडीत प्रलय काल पर्यन्त घोर रौरव नरकमें वास करता है ।

विष वास्तवमें विष नहीं वरण देवस्व विष है । क्यों कि विषतो केवल विषपान करने वाले को प्राण हरता है परन्तु देवस्व पुत्र पौत्र आदि सब को नरक देने वाला है ।

इस शासन का लिखने वाला महासन्धि विग्रहिक महा सामन्त मंगीय पल्लायन और उत्कीर्ण करने वाला बम्मायान है ।

हुले गुन्डी प्रशस्ति

का

विवेचन.

प्रस्तुत प्रशस्ति मयसूर राज्य के चितलदुर्ग जिलाके चितलदुर्ग होवेली के ग्राम हुले गुण्डी के सिध्धेश्वर मन्दिर में लगी है। प्रशस्ति लिखे जाने के समय चौलुक्य राज भुवनमल्लका शासन था। भुवनैकमल्ल विरुद जयसिंह के ज्येष्ठ भ्राता सोमेश्वरका था। सोमेश्वरका राज्यारोहण अपने पिता आहवमल्ल - त्रयलोक्यमल्लकी मृत्यु होने के १६ दिवस पश्चात हुआ था। आहवमल्लने चैत्र कृष्ण अष्टमी रविवार शक ९९० तदनुसार रविवार २९ मार्च १०६८ को जल समाधि ली थी। और सोमेश्वरका राज्याभिषेक वैशाख शुक्ल सप्तमी शुक्रवार तदनुसार ११ एप्रील सन १०६८ को हुआ। इस हेतु प्रस्तुत प्रशस्ति सोमेश्वर के राज्य कालके पांचवे वर्षकी है।

प्रशस्तिमें जयसिंहके वीरनोलम्ब आदि विरुदोंके साथ "श्री पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर वीर विदग्ध विलासिनी विलोचन चकोर चंद्रम प्रत्यक्ष देवेन्द्र विक्रान्त कन्ठीरवं माण्डलीक भैरवं शरणागत वज्र पंजर चौलुक्य दिककुंजर साहसालंकार किर्तीवल्लरी वलापीत" प्रभृति दिये गये है। इन विरुदोंमें श्री पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज "परमेश्वर" स्वातंत्र्य प्रदर्शक विरुद हैं। परन्तु हम जयसिंहको स्वतंत्र नही मान सकते क्योंकि प्रशस्ति के प्रारंभ में स्पष्ट रूपसे भुवनैकमल्ल सोमेश्वर का अधिपत्य स्वीकार किया गया है। किन्तु उत्तर भावी विरुदों 'प्रत्यक्ष देवेन्द्र विक्रान्त कन्ठीरव माण्डलीक भैरव साहसालंकार चौलुक्य दिकक्कुंजर" को लक्षकर हम इतना अवश्य माननेको कटिबध्ध हैं, कि जयसिंह अद्वितीय वीर परम साहसी और चौलुक्य राज्यका संरक्षक था। अत: महाराजाधिराज आदि विरुद सर्वथा उसके उपयुक्त थे। संभव है, उसने सोमेश्वरकी आधीनता नाम मात्रके लिये स्वीकार किया हो पर वास्तवमें स्वतंत्र हो गया हो।

इसके अतिरिक्त प्रशस्ति उसके विरुदों में महेश्वर और शरणागत वज्र पंजर बताती है। इन दोनोंमें महेश्वर विरुद उसका शैव होना और शरणागत वज्र पंजर—आश्रित जनोंकी रक्षा करनेवाला प्रकट करता है। हमारे पाठकों को स्मरण होगा कि जयसिंह के शक ९९९ वाली प्रशस्ति का वाक्य "अमोघ वाक्यं" और शक ९७६ वाली प्रशस्ति का वाक्य "एक वाक्य" को लेकर हमने बहुत जोर दिया है और जयसिंहको अपने वाक्य का धनी आदि लिखा है। और यह भी लिखा है कि एकवाक्यता मनुष्य के उत्कृष्ट और महत्वशाली जीवनका प्रथम सोपान है। एवं यहभी प्रकट किया है कि हमारी इस धारणाका समर्थन प्रस्तुत प्रशस्ति से होता है। अब हम अपने पाठकोंका ध्यान वर्तमान प्रशस्ति के वाक्य "शरणागत वज्र पंजर" प्रति आकृष्ट करते हैं। कथित वाक्य का भावार्थ है कि अपने आश्रित के प्रति किये गये घात के

लिये ढाल। मनुष्यमें जब तक एकवाक्यता न होगी वह अपने शरणागतकी रक्षा कदापि नहीं कर सकता। उक्त गुणोंसे वांछित मनुष्यको शरणागत मनुष्यकी रक्षा करनेमें जहां कुछभी आपत्तिकी भनक मिली नहीं की उसने उसको उसके शत्रुओंके आधीन किया। यह मानी हुई बात है कि शरणागतकी रक्षा करने में अपने प्राणों बाजी लगानी पड़ती है।

प्रशस्ति जयसिंहका वर्णन करने पश्चात उसके सामन्त मंगीया इच्छाया कोदयुर निवासी का उल्लेख करती है। मंगीय इच्छाया मृलगल संप्रति का शासक और उसका महा सामन्त था। प्रशस्तिकारने मंगीय इच्छाया के विशेषणों के वर्णन करनेमें पाण्डित्यका प्रचूर रूपेण परिचय दिया है। उसके विरुद के संबंधमें लिखना अनावश्यक मान हम आगे बढ़ते हैं। प्रशस्ति का उद्देश्य मंगीय इच्छाया कृतदानका वर्णन है। मंगीयाने मृलगलके भीमेश्वर और हिडम्बेश्वर नामक मन्दिरोंके लिये जप नियम स्वध्याय निरत ज्ञानशिवको १०० मातरभूमि दिया है। प्रस्तुत भूमिकी सीमा प्रभृतिका वर्णन करने पश्चात प्रशस्ति भूमिदान के फल और अपहरण जन्य पापादि का वर्णन करती है। परन्तु अन्यान्य शासन पत्र और शिला लेखों समान प्रचलित फलाफल कथन करनेवाले व्यास के नामसे प्रचलित श्लोक के स्थान मे नवीन श्लोकोंको प्रशस्ति ने अपने गोद में स्थान दिया है। यद्यपि ये श्लोक भिन्न हैं तथापि इनके भाव प्रचलित श्लोकों के समानही है।
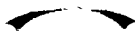
आचपुर तीर्थ
की
शिला प्रशस्ति।

नमस्तुङ्ग

स्वस्ति समस्त भुवनाश्रय श्री पृथिवी वल्लभं महाराजाधिराज राज परमेश्वर परम भट्टारकं सत्याश्रय कुल तिलकं चौलुक्या भरणं श्रीमत् त्रिभुवनमल्ल देवर विजय राज्यं उत्तरोत्तरा भि वृद्धि प्रवर्धमानं यावचन्द्रार्कतारा वरं सालुतं इरे कल्याण नेलेविडि दोलु सुख सत्कथा विनोद दिं राज्य गेयुतं इरे तदनुजं स्वस्ति समस्त भुवन संस्तूयमानं लोक विख्यातं पल्लवान्वय श्री महि वल्लभं युवराज राजा परमेश्वरं वीर महेश्वरं विक्रमाभरणं जयलक्ष्मी रमणं चौलुक्य चूडामणि कडन त्रिनेत्रं क्षत्रिय पवित्रं मत्तगजाङ्गारामं सहज मनोज रिपुराय कड़ सुरेकारं अननाङ्कारं श्रीमत् त्रय लोक्य मल्ल वीर नोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देवर वनवासे पनीरचर्धासिरामुम् सन्ताळिगे सासीरामुम् एरदी एनुरुम् कदुर शासिरामुम् नलड सुख सत्कथा विनोददिं राज्यं गेयुत्तं इरे तत् पाद पद्मोपजीवी समधिगत पंच महाशब्द महा सामन्ताधिपति महा प्रचण्ड दण्ड नायकं विबुध वर सुख दायकं गोत्र पवित्रं जगदेक मित्रं निज वंशाम्बुज दिवाकरं सत्य रत्नाकरं विवेक बृहस्पति शौच महाव्रति परनारि सहोदरा विदग्ध विद्याधर्म सकल गुण निवासं उभय राज संतोषं श्रीमत् त्रैलोक्यमल्ल वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देव पादाराध्यकं पर बलसाधकं नामादि समस्त प्रशस्ति सहितं श्रीमत् महा प्रधान दिरि सन्धि विग्रही दण्ड नायकं ताम्बरसार सन्ताळिग ससीरा मुम् नग्राहारङ्गलमम दुष्ट निग्रह शिष्ट प्रतिपाल नादिदं आलुमम् आनदिराज्या भ्यच्चाद वेसानं माची राजांगे दाये गेयदु दुदे।

नाल ददु सिन्धवादि सकलोर्वियोल उत्तनेनिसं तदुवारा।
नोल कादोल अग्रहार तिलकं सागोगि युद्ध कंचाग्रा।
बेल गली परिशोभे वर्तनं अदरोल द्विजभूषणं आत्रिगोत्रान।
उज्वल कीर्ति वाजी तिलकं प्रभु माचो सुधामरीचयोल ॥

आ शहा पु ष सोत्रनाथार्यागं अन्वाक वेनम युक्ति मम गुण सम्पन्नं गोत्र पवित्रं बुधजन मित्रं श्री मांचा राज राजाध्यक्षाद वेभादोल नादे युत्ताम इलद श्री राजधानी अन्तसुरद इपान तीर्थद इथान्याद देसियालु श्री मलेश्वर देवारूमम आदित्यदेवारूमम विष्णुदेवरूमम प्रतिष्ठि-ते गेयदु श्रीमच्चालुक्य विक्रम वर्षाद ३ रेनेय सिध्धार्थी संवत्सराद उत्तारायण संक्रान्ति निमित्तादि म

यम नियम स्वाध्याय ध्यान धारणा मौनानुष्ठान जप समाधि सम्पन्नार अदग श्रीमत अनन्तशिव पारिहार कालं करच्छी धारा पू।

कालु कुतिरा चेमोजना मल पनोज कन्दरी रूवा देगुलमम मर्दाद कामोजं श्री।

आचपुर प्रशस्ति

का

छायानुवाद ।

कल्याण हो । सकल संसार के आधार श्री पृथिवी पति महाराजाधिराज परमेश्वर परं भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्य वंश भूषण श्रीमान त्रिभुवनमल्लदेव के राज्य काल में उसका छोटाभाई सकल संसार में संस्तुत - लोक विख्यात - पल्लवान्वय - पृथिवीपति युवराज राजा परमेश्वर वीर महेश्वर विक्रमाभरण जयलक्ष्मी वल्लभ चौलुक्य चूडामणि - युद्धमे त्रिनेत्र - पवित्र क्षत्रिय - मदमस्त हस्ती समान बलशाली - धर्म्म धुरीन - शत्रु सेनाका यम श्रीमान त्रैयलोक्यमल्ल वीरनोलम्ब पल्लव पग्मनादि श्री जयसिंह देव सुख और शान्ति के साथ वनवासी द्वादश सहस्र प्रदेशका शासन करता था ।

और जयसिंहदेवका चरण सेवक पंच महाशब्द अधिकार प्राप्त - सामन्तोका स्वामी महाधिकरा… दण्ड नायक - विद्वानो का मित्र - स्ववंशउजागर - संसारका एकाधार - सत्य संन्ध - बृहस्पति समान विचक्षण - अन्य स्त्रियों को पुत्र समान - सद्गुणागार दोनों राजाओंको आनन्द दायक - परन्तु त्रयलोक्यमल्ल वीरनोलम्ब जयसिंहका चरण किंकर - शत्रु मान मर्दकप्रभृति विरुदोपेत - महा प्रधान - प्रधान दण्ड नायक - सन्धि विग्रही ताम्बरस मन्तालिग सहस्र पदेश और अग्राहारो का शासन और दुष्टोंका निग्रह तथा शिष्टोंका पालन करता था । उक्त नाडके राज प्रतिनिधि ने अपनी आज्ञा को मान्ची राजा पर प्रकट किया -

संसारकी कली रूप सिन्दवाडी है । और उसके अग्रहारो में परम रमणीय तथा आकर्षक वेलगली है । इसका रत्न परम प्रख्यात अत्री गोत्र में माची उत्पन्न हुआ । उक्त महापुरुष सोमथाप और अग्वीकाली का पुत्र सकल सद्गुणों का आगार स्ववंश उजागर विद्वानोका आश्रय माची राजाके राज प्रतिनिधि की आज्ञा अनुसार राजधानी अदासुर के उत्तर दिशावर्त्ती तीर्थके पूर्वोत्तरमें भगवान महेश्वर, आदित्य और विष्णु मन्दिर चौलुक्य विक्रम वर्ष ३ सिध्धार्थी संवत्सरमें निर्माण कराया और उत्तरायण संक्रान्ति के समय यम नियम आदि साधन चतुष्टय संपन्न तथा स्वध्याय रत्त अनन्त शिब पण्डितको पाद प्रक्षालण पूर्बक कथित मन्दिरों के नित्य नैमित्तिक पूजा अर्चा आदि निबाहार्थ संकल्प करके दान दिया ।

आचपुर प्रशस्ति

का

विवेचन.

प्रस्तुत प्रशस्ति मयसूर राज्य के सिमोगा जिला के सागर नामक तालुकाके अनन्तपुर नामक ग्राम के समीप लगभग तीन माईलकी दूरीपर अवस्थित आचपुर नामक तीर्थमें लगी है। अनन्तपुर ग्राम अनन्तपुर नामक होवलीका प्रधान नगर है। अनन्तपुर ग्राम सागरसे १५ मील की दूरी पर सिमोगा-गेरसोपा रोडपर है। अनन्तपुर का मध्यकालीन नाम आनन्दपुर और पुरकालीन अदासुर है। अदासुर नाम अदासुर नामक हुमचापति के नामानुसार पड़ा है। अदासुर जिनदत्तका विरोधी था। और उसका समय आठवी शताब्दीका मध्यकालीन है। अदासुर अपने प्रारम्भ से लेकर वर्तमान समय पर्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यहांतक कि सन १८३० में भी हैदरअली और टिपु के समय अनेक युद्धका क्षेत्र बना है।

अदासुर-अनन्तपुर का महत्व इससे भी प्रकट होता है कि अनन्तपुर और उसके आस-पासमें चौलुक्यों के अनेक लेख पाये जाते हैं। उन्हीं अनेक लेखोंमें से एक प्रस्तुत प्रशस्ति है। यह कथित आचपुर तीर्थमें ३.५ २ X २.३ ४ आकारके शिला खंड पर उत्कीर्ण है। इस लेख की पंक्तिओंकी संख्या ४० है। इसकी लिपि प्राचीन हाले कनाडी और भाषा संस्कृत और कनाडी मिश्रित है।

प्रशस्ति में चौलुक्य राज विक्रमादित्यको अधिराजा और वीरनोलम्ब पल्लव परमानाडि जयसिंह को युवराज तथा बनवसीका राजा रूपसे उल्लेख किया गया है। एवं युवराज जयसिंह देवके सामन्त और महा प्रधान दण्ड नायक सन्धि विग्रही माची राजा का उल्लेख सन्तालीग सहस्र प्रदेश के शासक रूपसे करके उसे आदासुर तीर्थ क्षेत्र में राज प्रतिनिधि अर्थात युवराज जयसिंह देवकी आज्ञासे भगवान महेश्वर, आदित्य और विष्णुके मन्दिरका निर्माण करने तथा उनके भोगरागादि के निर्वाहार्थ ग्राम दान करनेवाला वर्णन किया है। प्रशस्ति कथित अदासुर तीर्थ वर्तमान अनन्तुपुर ग्राम और आचपुर तीर्थ है। पुरातन अदासुर ग्राम और वर्तमान अनन्तपुर से पुरातन वनवासी द्वादस सहस्र उत्तर और सन्तलिग सहस्र दक्षिण था। वनवासी नगर आजभी वनवासी नामसे ख्यात है और अनन्तपुरके उत्तरमें कुछ पश्चिम झुका हुआ लगभग ५० मील पर अवस्थित है।

प्रशस्ति की तिथि चौलुक्य विक्रम संवत् में दी गई है। चौलुक्य विक्रम संवत चलानेवाला विक्रमादित्य छठा अर्थात् विरनोलम्बका मझलाभाई और प्रशस्ति कथित त्रिभुननमल्ल है

पूर्वमें हम जयसिंह की शक ९९५ वालीहुलेगुन्डी सिध्धेश्वर प्रशस्ति उधृत कर चुके हैं। उक्त प्रशस्ति में जयसिंहने अपने सबसे बडेभाई सोमेश्वर भुवनमल्ल को अधिराजा स्वीकार किया है। अत: यह प्रशस्ति शक ९९५ के बादकी है। सोमेश्वर भुवनमल्ल का अन्तिम लेख शक ९९८ भाद्रपद का है। उधर विक्रमादित्य के लेखमें उसके राज्य वर्ष प्रथमका चौलुक्य विक्रम संवत्सर के नामसे उल्लेख किया गया है। साथहीं उसके प्रथम वर्ष के लेख में बार्हस्पत्य नामक संवत्सरका वर्णन है। सोमेश्वर के अन्तिम लेख में संवत्सरका उल्लेख यद्यपि नहीं है तथापि बार्हस्पत्य संवतसरका अनयासही हम परिचय प्राप्त कर सकते हैं। जयसिंहकी शक ९९३ वाली प्रशस्ति में विरोधिकृत और शक ९९५ वाली प्रशस्ति में प्रमादि संवतरका उल्लेख है। संवतसरके ६० नामवाले चक्र पर दृष्टिपात करनेसे ज्ञात होता है कि विरोधी संवतसरसे पांचवा और प्रमादि संवतरसे तीसरा स्थान निम्नभाग में बार्हस्पत्य संवतसरका है। एवं ९९३ से पचंवी और ९९५ से तीसरी संख्या ९९८ है। अत: सिद्ध हुआ कि विक्रमादित्य शक ९९८ के भाद्रपद के पश्चात किसी समय सोमेश्वरको हटाकर गद्दी पर बैठा था। इस लिये प्रस्तुत लेखकी तिथि शक ९९८+३=१००१ है।

जयसिंह के शक ९९३ वाली प्रशस्ति से हमें ज्ञात है कि विक्रमादित्य के सोमेश्वर के शत्रु कांचीपति वीर राजेन्द्र चोल से मिलजाने परभी उसने युद्धक्षेत्र में अपने स्थानको नहीं छोड़ा था और सोमेश्वरकी रक्षा की थी। एवं शक ९९५ वाली प्रशस्ति से भी जयसिंहका सोमेश्वर पर अनन्य प्रेम प्रकट होता है। अत: विचारनीय है कि शक ९९५ और ९९८ के मध्य विक्रमादित्यने जयसिंह को किस प्रकार सोमेश्वर से विमुख कर अपना साथी बना लिया।

बिल्हण के विक्रमाङ्कदेव चरित्रकी पर्यालोचनसे हमें ज्ञात है कि विक्रमादित्य ने सर्व प्रथम सोमेश्वर के विश्वास पात्र सामन्त गोपपठन गोकर्णपति कदम्बवंशी जयकेशी प्रथमको अपना मित्र बनाया और वहांसे आगे बढ़ कर कुछदिनो बनवासी में रहा। बादको वह चोल देशके प्रति युध्ध करनेको चला तो चोल राज ने सुलह कर विक्रम के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

परन्तु हमारी समझमें बिल्हणने यहांपर केवल डींग मारी है। राजेन्द्र चोलके लेखका अवतरण देकर जयसिंहकी शक ९९३ वाली प्रशस्ति में हम विक्रमादित्य का युद्धक्षेत्र में सोमेश्वर का साथ छोड राजेन्द्र चोल से मिल जाना दिखा चुके हैं। यहां पर हम बिल्हण कथित कोंकन पति जयकेशी के लेख का अवतरण देकर चोल नरेशकी मैत्री संबंधी बिल्हण के पोलका भण्डा फोड करते हैं। बोम्बे रायल एसिआटिक सोसाएटि के जर्नल जिल्द ९ पृष्ठ २४२ में प्रकाशित जयकेशी के लेखके वाक्य "तत: प्रादुर्भूत श्रीमान जयकेशी महीपति चौलुक्य चौल भुपालो कांच्यां मित्रे विधायय:"से प्रकट होता है कि जयकेशी ने वीर राजेन्द्र चोल और विक्रम के मध्य मैत्री कराया था। यद्यपि बिल्हणका भण्डा

फोड़ उधृत अवतरणसे पर्याप्त रूपेण हो जाता है, तथापि कोकण पति जयकेशी और विक्रमकी मैत्री पर प्रकाश नहीं पड़ता । अतः जयकेशी के बोम्बे व. ग. ए. जो. जि ६ पृष्ठ २४२ मे प्रकाशित लेखका अवतरण देते हैं।

" त्रियदाप्राप्त कीर्तिः श्री जयकेशी नृपोऽभवत ।
भूभृत त्राण परायणःपृथुयशा गंभीर्य रत्नाकरः
श्री [illegible]र्माडि नृपः पयोनिधिनिभः सोमानुजां कन्यकां ।
[illegible]र्म विस्मयकारी भूरी विभवैः दैवेन कोषादिभिः
[illegible]आत: श्री पतये स मैमल महादेवीं कृतार्थोऽभवत ॥ "

उधृत अवतरणका अभिप्राय यह है कि विक्रमादित्यने अपनी मैमल महादेवी नामक कन्याका जयकेशी प्रथम के साथ विवाह कर दहेज में प्रचुर धनराशी तथा हाथी घोडे आदि दिये ।

इस लेखका समर्थन जयकेशीके उत्तराधिकारी तथा पुत्र शिवचित्तके उक्त जर्नल के पृष्ठ २६७ में प्रकाशित लेख से होता है।

" स कोंकणक्ष्मातल रत्नदीप रतस्मा दभूसी ज्जयकेशि भूपः ।
साहित्य लीला ललिता भिलापः संभावितानेक सुधी कलापः ॥
चौलुक्य वंशोऽथ जगत्प्रकाश. प्रादु र्बभूवो जित कोणदेशः ।
दिशांपतीनामपि चित्तवर्ती पराक्रमी विक्रम चक्रवर्ती ॥
उपयेमे सुतां तस्य जयकेशी महीपतिः ।
स ममल महादेवीं जानकी मिव राघवः ॥ "

इससे स्पष्ट है कि विक्रम ने जयकेशीको अपनी कन्या और दहेज के बहाने प्रचुर धनराशी देकर अपना मित्र बनाया था। इनकी मैत्री ने विवाह संबंधमें परिमार्जित होकर दोनोंको एक उद्देश्य बना दिया था। दोनों एक मत होकर सोमेश्वर के विनाश साधन में संलग्न थे। अतः इन दोनोंको अपना कार्य साधन करनेके लिये सोमेश्वर के शत्रु—नहीं चौलुक्योंके के वंशगत शत्रु, को मित्र बनाना लाभदायक प्रतीत हुआ। और जयकेशी ने मध्यस्थ बन मैत्री स्थापित कराया था।

अतः यह निर्विवाद है कि जयकेशी ने कांची पति वीर राजेन्द्र और विक्रम के मध्य मैत्री करायी थी। और जब सोमेश्वर और वीर राजेन्द्र के मध्य युद्ध उपस्थित हुआ तो विक्रम पूर्व निश्चयके अनुसार बनवासीसे युद्धके लिये आया परन्तु युद्ध प्रारंभ होते ही युद्धक्षेत्र छोड़कर वीर राजेन्द्र के पास चला गया। जिसने विक्रमका बहुतही आदर सत्कार किया और अपने युवराज के समान उसके गले में कन्ठी बांधी। एवं उसे अपना चिर सहचर बनाने तथा सोमेश्वर का नाश संपादन करने के विचार से अपनी कन्याका विवाह करके सोमेश्वरसे छीने हुए रट्टपाटी प्रदेश दहेजमें दिया।

विक्रम कोकण के सामन्त जयकेशी को मिला और वीर राजेन्द्र चोड से मैत्री तथा संबंध स्थापित कर चुप नहीं रहा। वरण उसने सेउन देशके यादव बंशी राजा से भी मैत्री स्थापित कर के सोमेश्वर को गद्दी से उतराने में उससे सहाय प्राप्त किया। इस मैत्री का उल्लेख हेमाद्री पण्डित ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ चतुर्वर्ग चिंतामणि के व्रत खण्ड में लगी हुई राज प्रशस्ति में किया है।

समुद्धृतो येन महाभुजेन दिशां विमर्दा त्परमर्दि देव।
संस्थापि चौलुक्य कुल प्रदीपः कल्याणराज्येपि स एव येन

जिसका भाव यह है कि सेउन देश के राजा ने अपने बाहुबलसे चौलुक्य कुल प्रदीप परमर्दि देव अर्थात विक्रमादित्यको शत्रुरूपी समुद्रसे बचाकर कल्याणके राज्य सिंहसन पर बैठाया था

इससे स्पष्ट है कि विक्रमादित्य क्रमशः मैत्री आदि द्वारा अपना बल बढ़ा रहा था। और सोमेश्वर के सामन्तो को अपना मित्र बनाता था एवं वह उसके शत्रुओं सेभी मैत्री स्थापित कर रहा था। परन्तु उसके मार्ग में जयसिंह, जो सोमेश्वर का परम भक्त एवं अद्वितीय वीर था दुर्गम तथा अल्लंघ्य हिमालयवन बाधा स्वरूप खड़ा हो रहा था। अतः विक्रमने किसी प्रकार जयसिंह रूपी बाधाको सोमेश्वर से लडने के पूर्व हटाना उचित माना। जयसिंह को हटाने का केवल दोही मार्ग युद्ध या मैत्री था। युध्यमें जयसिंहको पराभूत करना सहज नही वरण टेढ़ी खीर थी। इस लिये विक्रमने उससे नचलकर द्वितीय मार्गका अवलंबन किया क्योंकि जयसिंह से लडने जाते समय उसे सोमेश्वर और जयसिंह के संमिलित सैनका सामना करना पडता। जिसमे पराजय अथवा शक्ति के हरास का भय था। इन्हीं सब बातोको लक्षकर विक्रमने बल के स्थान में कौशल से काम लेना उत्तम माना और अपने कपट रूप महा शस्त्रको काम में लाया। यह मानी हुई बात है कि साधारण अर्थ लोभ भी मनुष्यके मनको चलायमान करने में समर्थ होता है। फिर राज्य लोभकी क्या बात है। राज्य लोभ में पडकर पिता पुत्रभी एक दुसरे का घातक देखने में आये हैं। और बन्धु विरोध तो साधारणसी बात है। इस हेतु विक्रम ने जयसिंह पर चौलुक्य साम्राज्य के भावी साम्राट पद रूप अमोघ अस्त्रका प्रयोग किया। अपने बाद चौलुक्य साम्राज्यका जयसिंह को उत्तराधिकारी स्वीकार कर उसे अपना साथी बनाया!

हमारी इस धारणा का समर्थन प्रस्तुत प्रशस्ति के वाक्य युवराज राजा महाराधिराजा परमेश्वर से होता है। युवराज का अर्थ वर्तमान राजा का उत्तराधिकारी है। यदि जयसिंहका विक्रम के बाद चौलुक्य सिंहासनको सुशोभित करना निश्चित न हुआ होता तो वह कदापि अपने लिये युवराज पद का प्रयोग न करता और न विक्रम हीं उसे युवराज पद को धारण करने देता। अतः निश्चित है कि विक्रम ने जयसिंहको भावी राज्य पदका लोभ दिखा अपना साथी बनाया था।

———
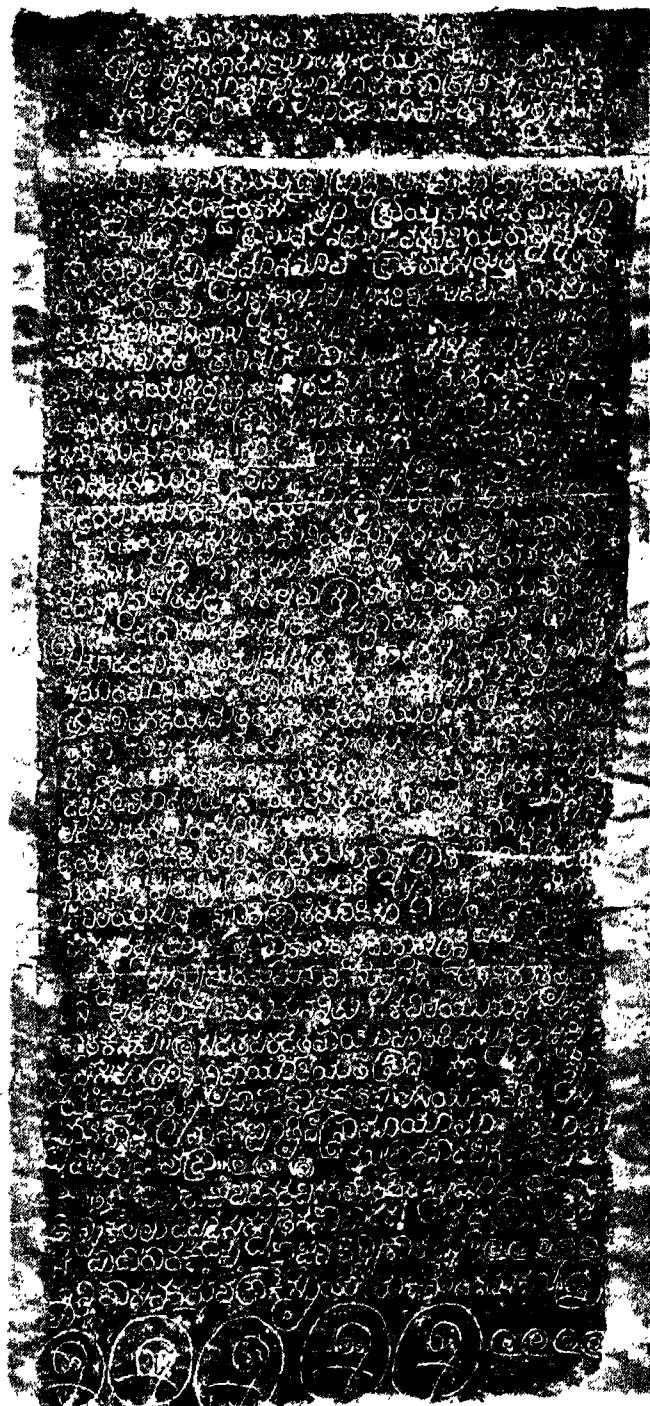
तुम्बर होमरु रामेश्वर मन्दिर का शिलालेख।

तुम्बर होसरू रामेश्वर मन्दिर

शिला प्रशस्ति।

ॐ नमः शिवाय। पान्तु वो जलद श्यामः सारङ्ग जयाघात् कर्कशः। त्रैलोक्य मण्डप स्तम्भाः चत्वारो.हरि बाहवः॥ गणपतये नमः। स्वस्ति भुवनाश्र‌ं श्री पृथिवी वल्लभ महाराजा परमेश्वर परम भट्टारकं सत्याश्रय कुल तिलकं चौलुक्या भरणं श्रीमत् त्रिभुवनमल्ल देवर विजय राज्यं उत्तरोत्तराभि वृद्धि प्रवर्धमानं आचन्द्राकं तारकं सलुत्तं इरे। युवराजं चौलुक्य पल्लव परमनादि वीर नोलम्ब जयसिंह देवार वनवासे पनि सहस्रमुम् (बनीछ्‌सिरमु) सन्तालिगे सासिरमुमन एरद असनुरूपम सुख सत्कथा विनोदादि आलुत्ताम इरे स्वस्ति चौलुक्य विक्रम कालाद ४ नेय सिद्धार्थी संवत्सरात् माघ शुद्ध १ आदित्य वार उत्तरायण संक्रान्ति व्यतिपातं सूर्यग्रहण दन्दु स्वस्ति यम नियम स्वाध्यायध्यान धारणा मौनानुष्ठान जप समाधि शील सम्पन्नार अय श्रीमद् अग्रहारं महा पोस्यबुरा उद उलेय पर सुख महाजनं ससिरारा कार्यालु स्वस्ति यम नियम स्वाध्यायध्यान धारणा मौनानुष्ठान जप समाधि शील सम्पन्नारू चतुर्वेद वेदान्त सिद्धान्त तन तर्क सकल शास्त्र पारावार परायणार अय श्रीमद् अग्रहार ईशा बुरदा परवारुवं भारद्वाज गोत्री मादद गार्नामाय न पुत्र दिवाकरं सर्वा निध्याक होसाबुरा भूमिगं क्रय दानं गोण्ड धारा पूर्वकं मादि सत्रके वित्ता गलेय मत्तल एरादु मनर बयाल नदवे वीरनाड वायकोलिम बदगदल अलरीमिं ते न कलुं। मत्तं क्रय दानं गोण्डु पिरिये केरेगे धारा मुखे मिलकोपि पिरिवेकेरपिं सिन्दगत्ताके परिवरच्छल मोदललु गलेय मत्तल एरयु इन्त इ धर्म मालय कालदलु इशाबुरद शशिवगम भूतिलाद भुवात्ति रच्छाशिरमं अरिये मदिद धर्मम। मुदरावनाद परगये गोविन्द राज नम्मम कोमराजं वरेवर बदगय भारत करणपुर। शिल्पीक ललाट पदम सरस्वति गण्ड पाद पंकज भमरं जिन पादाराधकं पद्योगम शिल्पीकिंकर। इन्त इ शासन धर्मम चन्द्राख्य स्थापियके मंगलमहा श्री।

तुम्बर होसरु रामेश्वर प्रशस्ति

का

छायानुवाद ।

भगवान शिवको नमस्कार ।

भगवान घनश्याम जिनके हाथों में सारंग नाम धनुष की गेदाका आघात होता है और जिनके चारो हाथ संसार रूपी मण्डपको आश्रय देनेवाले विशाल स्तम्भ है, कल्याण करे। भगवान गणपतिको नमस्कार। कल्याण हो। जब के सकल संसारके आश्रय भूत पृथिवी पति महाराजाधि राज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्य वंश भूषण श्रीमान त्रिभुवनमल्ल देव; का उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करने वाला साम्राज्य पौर्णीमाके समुद्र समान लहरा रहा था।

और चौलुक्य युवराज पल्लव परमनादि वीर नोलम्ब श्री जयसिंह देव बनवासी द्वादश सहस्र, सन्तालिग सहस्र और षट सहस्र नामक दो प्रदेशों का शासन सुख और शान्तिके साथ करते थे।

उस समय सिध्धार्थी नामक संवत्सर तदनुसार चौलुक्य विक्रम वर्ष के ४ वर्ष माघ शुक्ल प्रदिपदा रविवारको उत्तरायण संक्रान्ति व्यतिपात सूर्यग्रहण महा पर्वके समय यम नियम स्वाध्याय ध्यान धारणा समाधि युक्त १००० ब्राह्मणो के अग्रहार के अधिपति यम नियम स्वाध्याय ध्यान धारणा समाधि शील सम्पन्न चतुर्वेद ज्ञाता सकल शास्त्र विशारद भारद्वाज गोत्री भटार पोंशावारको ननी-माया का पुत्र दिवाकरने होशावुर ग्राम में भूमि क्रय करके सत्र निमित्त दान दिया।

इस धर्म्मादाका कोई अपहरण न करे। अपहरण करनेवालों को पंच महापातक होगा। इस शासन को मुन्द्रावन पूगदे गोविन्द राजा का छोटाभाई लेखकोंका अनुचर और सरस्वति का कर्णभूषण कामराज ने लिखा।

शिल्पिओंका अग्रणी सरस्वति गणके पदपंकजका भ्रमर जनैन्द्रका अनन्य भक्त शिल्प-कार पद्मजाने इस शासन को शिला खड पर उत्कीर्ण किया।

यह धर्म शासन संसार में सूर्य चंद्र की स्थिति पर्यन्त कायम रहे।

तुम्बर होसरू रामेश्वर प्रशस्ति

का

विवेचन :-

प्रस्तुत प्रशस्ति मयसूर राज्य के सिमोगा जिल्ला के शिकारपुर तालुका के होसरू होबली के प्रधान ग्राम होसरू के समीप तुम्बर नामक स्थान के रामेश्वर मन्दिर मे लगी है। प्रशस्ति का शिला खंड ३. १ २X२. १४ आकार का है। इसकी लिपि हाले कनाडा और भाषा संस्कृत तथा प्राचीन कनाडी मिश्रित है। इसकी लेख पंक्तिओं की संख्या ४६ है। इसका उद्देश्य ननीमाया के पुत्र दिवाकर कृत भूमिदानका वर्णन है। प्रति ग्रहिता चतुर्वेदज्ञ, सकल शास्त्र वेत्ता, यम नियम साधन चतुष्ट संपन्न स्वध्यायरत्त भारद्वाज गोत्रीं पोशावर है। कथित दान उसे मत्र संचालनार्थ दिया गया है। इसका लेखक कामराज और उत्कीर्ण करने वाला शिल्पकार पद्मजा है। इसकी तिथि विक्रम चौलुक्य वर्ष का चतुर्थ वर्ष है।

हम पूर्वोद्धृत प्रशस्ति के विवेचनमें विक्रम चौलुक्य वर्षका प्रारंभ शक ६६८ में बता चुके हैं। अत: इस प्रशस्तिका समय १००२ है। प्रदत्त भूमि वीरलोलम्ब जयसिंहदेवके राज्यान्तर्गतथी जयसिंहका विरुद युवराज महाराजा था। और उसका अधिराज उसका मझला बड़ा भाई विक्रमादित्य था। इस प्रशस्ति से जयसिंह के अधिकारमें वनवासी आदि प्रदेशों के अतिरिक्त पट सहस्त्र द्वय नामक प्रदेशका भी होना पाया जाता है। पुनश्च जयसिंह के चौलुक्य साम्राज्यका युवराज होनेका स्पष्ट रूपेण समर्थन होता है। इसके अतिरिक्त प्रशस्ति में जयसिंह संबंधी कोई अन्य नवीन बात नहीं प्रकट होती।

तुम्बर होसरु ग्राम में इमली के नीचे वाली

शिला प्रशस्ति

नमस्तुग स्वास्ति समस्त भुवनाश्रय श्री पृथिवी वल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलकं चौलुक्याभरणं श्रीमत् त्रिभुनमल्ल देवर विजय राज्यं उत्तरोत्तराभि वृद्धि प्रवर्द्धमान आचन्द्रार्क तारावरं सातुत्तमिरे । तस्यानुज वृत्त ॥

विनायक आसपदं आदविक्रमं नोलम्ब विक्रमादित्य दे ।
वन चिराक्क अवलम्बं आद कालेयं चौलुक्य राम क्षिति ।
शान कोंड एरिद कूरम्मे वेत अनुग दम्मं राय कन्दर्प दे ।
वन सम्मोहन पूर्व्वानं एनल इन्न एवनियं वर्न्नियं ।
यो युत इलदायुद इनं दहले हिम नगरारण्यमं लाहन इन्नम् ।
पुग्गली एन्द इलदायं इन्नं नेलसादे नीवुलं लंकेयं तेन्कल ओदल ।
वाजेयुग इलदायं इननं मुलीदायन एनुतुं कोन्कनं सन्केर्पी गुन ।
वु गोलुत्त इलदायुद एवल्लीदनो चकित विद्रुत कदम्बं नोलम्बं ॥

वचन ॥ एनिसिदा समस्त भुवन संस्तूयमान लोक विख्यात पल्लवान्वय श्री मही वल्लभं युवराज राज परमेश्वरं वीर महेश्वरं विक्रमाभरणं जयलक्ष्मी रमण शरणागत रत्नमणि चौलुक्यचूडामणि कडन त्रिनेत्रं क्षत्रिय पवित्रं मत्तगजाङ्कुराजं सहज मनोजं रिपुराय कटक सूरेकारण अन्नन अङ्कार श्रीमत् त्रयलोक्यमल्ल वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देवर ॥

वृत्त ॥ पुलिगेरी के—रेय्युमले कासवलं वनवासे नाडुवेल ।
वलं ओलगागी दक्षिण पयोधि नरं नेलन आवुद एल्लमम ।
खलरण इदिरोय सन्तोषदिन अल्द अधिकं युवराज लक्ष्मीयन् ।
सले नेल नालदि सन्तं इरे विरनोलम्ब महामही भुजम् ॥

का ॥ तत्पदज योप सेवा ।

तत्परान् अकलङ्क चरितान् उद्धतरीपु भु ।
भूतपति दण्डाधिप रम् ।
पद्मावति पतिकार्य साधकं वाळदेवं ॥

वृत्त ॥ जिननाथं स्वामी देवं पति सकल मही वल्लभं सिङ्गीदेवं ।
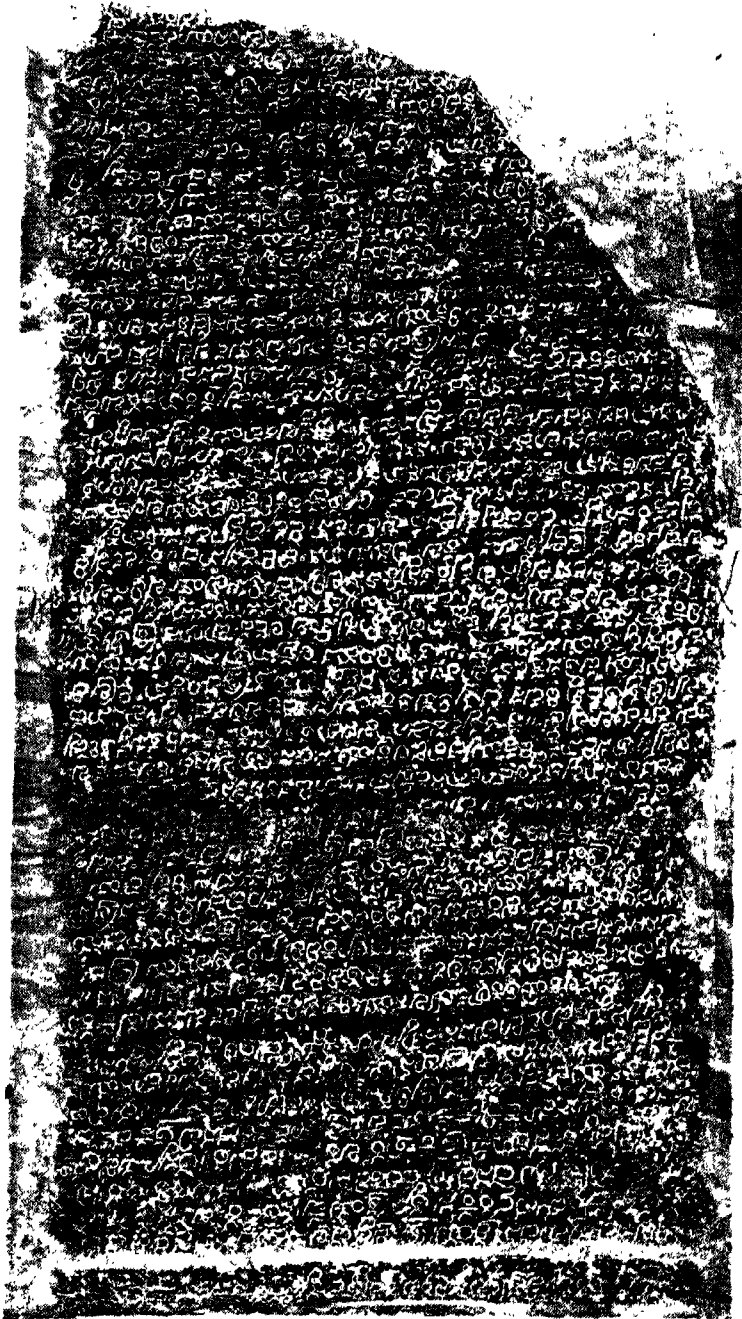
तुम्बर होसरु (इमली वृक्षवाला) शिलालेख।

विनुतं श्री माकनन्दी प्रतिपालि गुरुताय शान्ति याकं सुतनी।
ति निधनं लक्ष्मण आत्माङ्कणं सले नेलद आमालिका कानेय एन्दाद।
अन्वाय्यं दण्डनाथाग्रणी गुणी वालदेवं म्बोल आवंकृतार्थम्॥
अरिदाग एम्वलीतां वल्लिगं असदलं इत्कार्थ्य एम्वली गंसं।
ग्राम अम्मुन एन्दद एम्वालिगं परदेगदरु वीदिग एम्वालिगं वेल।
पर तन्डक्क ईवेन एम्वल्लिगं अतिशूचियं एम्वलिगं वालिगं वाग।
उरे पार्थेन्द्रेज्य भीमान्तक वली मनुतान् एन्दोद इम धान्यं अवं॥
का॥ उदावुत्तिरवुदे करं आर।

पय उदावेलादुवु जैन धर्म ओदन आदिवुद आलय।
ओदने सल वोकुद उन्त एन।
एदेवोल कलतने गुणाऽग्रवं वालदेवं॥
आरैयवादे कालां काल दोल।
आरुम् वालदेवान् ओरेगे वन्दपरे गुणं।
दारतयोल अरिविनोलवाक्।
सरितेयोल दान धर्मदोल पराहित दोल॥

वा। एनीय महोमीन्नर्तीयां नेगलए समधिगत पंच महा ६,६६ महा सामन्ताधिपति महा प्रचण्ड दण्ड नायकं शिष्टेश फलदायकं प्रतिपन्न मण्ड—विभव पुरन्दरं जिन चरण कमल भृङ्गं साहसो-तुग सम्यक्त्वा रत्नाकरं बुध कुमुद सुद्धाकरं पद्मवनी लब्धवरं प्रसाद धम विनोद सुजन जन नमस्सरा जनी--हन्सं सरस्वनिकर्णा वतंसं श्रीमत् त्रयलोकयमल्ल वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंहदेव पादाराधकं पति कार्या साधकं नामादि समस्त प्रशस्ति सहितं श्रीदोदण्ड नायक वालदेवयं वनवासे पन्नीरे चल्लरसिरामुमं पडीनेत अग्राहारमुमं — मदद सुन्कावुं दुष्ट निग्रह शिष्ट प्रतिपालनादि आलद् अनुभुवी सुत्तं राजधानी वान इरे चैलुक्य विक्रमकालादू ४ नेय सिद्धार्थ संवत्सरात् पुष्यादु अमावास्ये आदि--संक्रान्ति सूर्य ग्रहण दान्दु पन्ना लेय कोटेय नेलेविदि नोल—वोनापदी समस्त प्रधानारा पेलिकेर्यां चौधारे वादेयारं वासुदेवं—पन्नीरछासीरदा कम्पनं एदेवासे एल पात्तरा वलीय अग्रहारं तेम—कादिव धारम्मके वाहश वुलमुम परे गुन्कामुम एरदं-नलकु लकने अदकेगे पुत्तादुद एलमन आचन्द्रार्क-धर्ममन।

तुम्बर होसरु इमली प्रशस्ति

का

छायानुवाद।

भगवान शंकर कल्याण करें। कल्याण हो। जब सकल संसार के आधारभूत पृथ्वी पति महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सत्याश्रय कुल तिलक चौलुक्य वंश विभूषण श्रीमान त्रीभुवनमल्ल देवका उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करनेवाला साम्राज्य पूर्णिमा के समुद्र समान लहरा रहा था और त्रिभवनमल्लका सद्गुणागार छोटा भाई, उसके हृदयको प्रफुल्ल करनेवाला, एवं परम प्रिय अनग—हृदयको जीतने वाला-अपने सद्गुणों से विक्रमका स्नेह भाजन-काम समान और प्रेम पात्र था इससे अधिक और क्या गुण हो सकता है। जिसके [जयसिंहके] भुजबल प्रताप और शौर्य अग्नि से दग्ध दहल राज्य आज भी निर्भय नहीं हुआ है—लाटपति आज भी उसके शौर्यका स्मरण कर हिमालयके कन्दराओंका आश्रय लेनेके लिये गमनोन्मुख होता है। तेवलआश्रय प्राप्त करनेके लिये लंकासे भी दक्षिण पलायन करता है। कोंकणपति उसके क्रोधित होनेकी आशंका से चिंतित हो रहा है। वीरनोलम्बकीशक्ति कितनी बड़ी है, अहा! जिसके नाम श्रवण मात्रसे शत्रुओंका हृदय दहल जाता है। इस प्रकार आराति समुदायको चिन्तित करने वाला—समस्त संसारमेंस्तुति प्राप्त और प्रख्यात-पल्लवान्वय-पृथिवी पति-युवराजा परमेश्वर वीर महेश्वर-विजयेन्द्र लक्ष्मी प्रिय-शरणागत वत्सल-चौलुक्य चूड़ामणि-युद्धमें त्रिनेत्र-क्षत्रियोंमें पवित्र-क्षात्र वंश उजागर -मद मस्त कुन्जर-स्वभावतः कामदेव-शत्रु समूह कदली बन वीदारक-अपने बड़े भाईका परम प्रख्यात तथा प्रचण्ड दौर्दान्ति अद्वितीय योद्धा-श्रीमान त्रयलोकमल्ल वीरनोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देव दुष्ट निग्रह और शिष्ट पालन पूर्वक-सुख और शान्ति के साथ दक्षिण समुद्र से लेकर पुलगिरि-रेवु-भाले-केरुवालं-बनवासी-नाड और वेल वालप्रदेशोंकी "युवराज वीरनोलम्ब जयसिंह देव" लक्ष्मीको दृढतासे अंकशायिनी बना शासन करता था। जयसिंहके पादपद्मका भ्रमर सद्-गुणागार शत्रु-नाशक दण्डाधिप अपने स्वामीके कार्यसाधक बलदेव था। जिसका पारलौकिक स्वामी जिनेन्द्रनाथ था। और लौकिक स्वामी पृथ्वीपति सीगीदेव अर्थात जयसिंह एवं गुरुव्रत पति मार्कन्डेय मुनी-माता शान्तियाक-पत्नी मल्लिका और पुत्र लक्ष्म था। दण्ड नायक बलदेव के समान संसारमें कौन भाग्यशाली है। इस पकार महिमा प्राप्त-पञ्च महा शब्दका अधिकारी-महा सामन्ताधिपति-महा प्रचन्ड—दण्ड नायक—सरस्वति कर्ण भूषण—त्रिलोकमल्ल वीर नोलम्ब पल्लव परमनादि जयसिंह देव का चरण किंकर—स्वामी कार्य साधक महा सामन्त बलदेव बनवासी द्वादश सहस्र और अठारह अग्रहारोंका शासन करता था और उसके अधिकार में राज्यधानी बलिपुरका मार्ग शुल्क था। महासामन्त दण्ड नायक बलदेव-जब पानली काननमें निवास कर रहा था-उससमय चौलुक्य विक्रम वर्ष ४ के पुण्य अमावास्या तिथि उत्तरायण संक्रान्ति सूर्य ग्रहण के समय समस्त मंत्रियों के आग्रह से तेवल्वे सहस्र के कम्पन्न एरवादि सप्तती अन्तर्पाती कठ अग्रहार का कर माफ किया।

तुम्बर होसरु इमली शिला प्रशस्ति

विवेचन :-

प्रस्तुत प्रशस्ति तुम्बर होसरु ग्राम की उत्तर दिशा में एक इमली के वृक्ष के नीचे उत्कीर्ण है। तुम्बर होसरु ग्राम के संबंध में हम पूर्वोद्धृत प्रशस्ति की विवेचना में विचार कर चुके है। प्रशस्ति का शिला खंड [illegible] है। और लेख पंक्तियों की संख्या [illegible] है। इसकी लिपि हाले कानाडा और भाषा संस्कृत और कनाडी मिश्रित है। प्रशस्ति में प्रोक्त विक्रमको अधिराज और वीरनोलम्ब जयसिंह को युवराज वर्णन किया गया है। इन दोनों के अतिरिक्त जयसिंह के सामन्त तथा दण्डाधिप बलदेव का उसके प्रतिनिधि रूपसे वनवासी प्रदेशका शासन राज्यधानी बलीपुर में रह कर करना लिखा गया है। प्रशस्ति का [illegible] अन्यान्य मंत्रिओं और सामन्तों के आग्रहसे कर माफ करने का वर्णन है।

प्रशस्ति के पर्यालोचनसे विक्रम और जयसिंह में परम सौहार्द प्रकट होने के साथ ही जयसिंह के प्रचण्ड शौर्य का दिग्दर्शन होता है। प्रशस्ति से प्रकट होता है कि उसने दाहल; लाट और अन्यान्य नरेशोंको विजय किया था और उससे कोकण पति सशंकित था। प्रशस्ति में जयसिंह से पराभूत किसीभी राजा का नाम नहीं दिया गया है। अतः यह निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता कि कथित देशों के किस राजा को उसने पराभूत किया था।

जयसिंह के समय कोकण में अनेक छोटे मोटे राजवंश राज्य करते थे। गोवा के कदमवंशी, कोल्हापुर और करहाट के शिलहरा एवं उत्तर कोकण (स्थानक) के शिल्हरा। इनके अतिरिक्त अन्यान्य वंश संभूत अनेक छोटे मोटे माण्डलिक सामन्तों का आधिपत्य था। तथापि हम कोकण पति से गोवा के कदमवंशी जयकेशी का उल्लेख मानते है। हमारे इस प्रकार माननेका कारण यह है कि विक्रमादित्य के साम्राज्य में उसका प्राबल्य था और वह अपना एकाधिपत्य स्थापित करने में प्रवृत्त था। अपने इस मनोरथको सफल करने के लिये आकाश पाताल के कुलावे मिला रहा था। उसके इस विचार का बाधक यदि कोई था तो वह जयसिंह था। पुनश्च इन दोनों में मनोमालिन्य पूर्व से चला आ रहा था। अत. जयसिंह की शक्ति वृद्धि और शौर्य का समुद्भवन प्रबल प्रचण्ड प्रवाह देख उसका सशंक होना स्वभाविक है।

आगे चल कर प्रशस्ति जयसिंह के कोपाग्नि में दाहल राज्य का भस्म होना प्रकट करती है। दाहल चेदी राज्य का नामान्तर है। चेदीकी राज्यधानी उस समय त्रिपुरी नामक नगरी थी। संप्रति त्रिपुरी को तेवर कहते हैं और यह मध्य प्रदेश के जबलपुर नामक जिला के अन्तर्गत है। दाहल नरेशों के साथ चौलुक्यों के सन्धि विग्रह का परिचय हमें अनेक बार मिल चुका है। सर्व

प्रथम दाहल और वातापि अर्थात कलचुरिओं और चौलुक्यों के दो दो हाथ होनेका परिचय हमे मंगलीश के राज्य समय में मिला था । पश्चात तैलप द्वितीय को भी कलचूरीओ के साथ भीड़ते देखते हैं । अनन्तर जयसिंह के पिता आहवमल्ल और दहल-चेदी पति करणको रणाङ्गणमें हाथ मिलाते पाते हैं । जिसमें करण पराजित और आहवमल्ल विजयी हुआ था । करण और आहवमल्ल के इस युद्ध का वर्णन कवि बिल्हण ने बडे विस्तार के साथ किया है । बिल्हण के कथनमें यद्यपि अतिशयोक्ति आपाततः पाई जाती है तथापि एवुर की शिला प्रशस्ति से उसका अशतः समर्थन होता है । पुनश्च सोमेवर द्वितीय के राज्यकालीन वेलगांव से प्राप्त लेख से भी आहवमल्ल के मध्य प्रदेश पर आक्रमण करनेका समर्थन होता है । इतनाही नहीं चेदि पति करण को आहवमल्ल के साथ मालवा के परमार राज पर आक्रमण करते पाते है ।

अतः हम कह सकते हैं कि आहवमल्ल की मृत्यु पश्चात और सोमेश्वर द्वितीय तथा विक्रमादित्य के विग्रह समय चेदि पति करण के पुत्र और उत्तराधिकारी यशस्करण ने कुछ उत्पात मचाया हो जिसे जयसिंहने अपने शौर्य का परिचय दे पूर्ण रूपेण दाहल राज्यको अपने कोपाग्नि का ग्रास बनाया हो । जयसिंह और यशस्करण के युद्धका प्रस्तुत प्रशस्तिमें उल्लेख होने और आच-पुर वाली में न होनेसे प्रकट होतां है कि उक्त युद्ध शक १००१ और १००३ के मध्य हुआ था ।

पुनश्च प्रशस्ति हमें लाट पति को जयसिंह के शौर्यसे भयभीत होने वाला और छिपनेके लिये पलायन करने को सदा कटिबद्ध रहना बताती है । अब विचारना है कि प्रशस्ति कथित लाटपति कौन है । लाटपति की उपाधि बारपके वंशजों की थी । बारप को लाट देशका सामन्तराज चौलुक्य राज्योद्धारक तैलप देव द्वितीय ने बनाया था । बारप के पौत्र कीर्तिराज वातापि की आधीनता यूपको फेंक स्वतंत्र बन गया था । कीर्तिराज का शासन पत्र शक ६४२ का हमे प्राप्त है । कीर्तिराज के बाद उसका पुत्र वत्सराज लाटकी गद्दी पर बैठा और उसके बाद त्रिलोचनपाल लाट देशका स्वामी बना । त्रिलोचनपाल का शासन पत्र शक ६७२ का हमें प्राप्त है । त्रिलोचनपाल के पश्चात हमें त्रिविक्रमपालका शासन पत्र शक ६६६ का उपलब्ध है । कथित तीनों लेख चौलुक्य चंद्रिका लाट नन्दिपुर खण्ड में हम अविकल रूपसे उधृत कर चुके हैं । शक ६६६ के लेख से प्रकट होता है कि उक्त शक में त्रिविक्रमपाल लाटकी गद्दी पर पाटनवालोंको पराभूत कर बैठा था । उक्त शासन पत्र और प्रस्तुत प्रशस्ति के मध्य केवल तीन वर्षका अन्तर है । अतः प्रस्तुत प्रशस्ति कथित लाटपति बारपका वंशज त्रिविक्रमपाल है ।

संभव है, चेदिपति यशस्करणको शिक्षा देने के लिये जाते समय जयसिंह ने लाट-पति त्रिविक्रमपालको भी कुछ अपने शौर्यका परिचय दिया हो और लाठ, उत्तर कोकण और मालवा की सीमा पर कुछ अपने सैनिकरख छोडा हो जिनकी उपस्थिति त्रिविक्रमपालको सदा सशंकित किये हो । बहुत संभव है कि प्रस्तुत प्रशस्ति कथित कोकण पति उत्तर कोकण का शिल्हरा राजा हो । यद्यपि हमने पूर्व में कोकण पति से गोवापति कदमवंशी जयकेशि का ग्रहण करनेका विचार प्रकट किया है परन्तु उत्तर कोकण के शिल्हरों का माण्डलिक होते हुए

भी अभिमान भरे विरुदों का अपने नाम के साथ लगाना और स्वातंत्र्य प्रदर्शक उपाधिका यदा कदा धारण करना देख उनकाही कल्याण के चौलुक्य वंश के गृह कलह से लाभ उठाने में प्रवृत होना अधिकतर संभव है। यदि जयसिंह ने लाट और दाहल वालों के समान उत्तर कोकण के शिल्हराओंको भी कुछ शिक्षा दी हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। यदि ऐसी बात हो तो विचारना होगा कि उत्तर कोकण का शिल्हरा राजा कौन हो सकता है।

उत्तर कोकण अर्थात स्थानक के शिल्हरोंकी वंशावली पर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि मुममुनिका राज्यकाल शक ९८२ से १००२ पर्यन्त है। मुममुनिके उत्तराधिकारी का राज्य शक १००२-१००३ से प्रारंभ होता है। मुममुनिका उत्तराधिकारी अनन्तदेव है। अतः प्रस्तुत प्रशस्ति कथित युद्धकी समकालीनता मुममुनी और अनन्तदेव के साथ निर्भ्रान्तरूपेण ठहरती है। इनमें से एक के राज्य के अन्त और दूसरे के प्रारंभ काल में हीं जयसिंह ने लाट और दाहल विजय किया था। अतः हम कह सकते हैं कि इनमें से किसी एक को जयसिंहके प्रचण्ड शौर्यका परिचय मिला होगा

अब यहि हम इन दोनों के राज्यकालीन उत्तर कोकण के शिल्हरा राजवंशकी अवस्था का कुछ परिचय पा जाय और उसमें कुछ अवकाम हमारे अनुमानको स्थान-पाने का मिले तो हम निश्चित सिद्धान्त पर पहुच सकते हैं। मुममुनि के अन्त और अनन्तदेव के राज्यरोहण का हमें कुछभी स्पष्ट परिचय नही मिलता। परन्तु १००३ के लेखसे उसका उत्तर कोकणकी गद्दी पर उपस्थित होना पाया जाता है। पुनश्च अनन्तदेव के अपने शक १०१६ लेख से प्रकट होता है कि उसके हाथ से राज्य सत्ता छीन गई थी और उसके किसी संबंधी के हाथमे चली गई थी। जिसका उद्धार उसने उक्त शक १०१६ के लगभग किया था। इसके अतिरिक्त विक्रमादित्य के जामात्र जयकेशि के लेखों से प्रकट होता है कि उसने युद्ध में कोकण पति कापर्दि द्वीपनाथ को मार गोप पटन तथा उसके चतुर्दिकवर्ति भूभाग जो कोकण नवशत के नामसे विख्यात था, मिला लिया था।

अब यदि जयकेशि के इस विजयको और नवशत कोकणको अधिकृत करनेकी घटनाको जयसिंह विजय के साथ मान लेवें तो मानना पडेगा कि उक्त विजय यात्रा में जयकेशि जयसिंह के साथ था। परन्तु इस प्रकार मानने में दो बाधाए सामने आती हैं। प्रथम बाधा यह है कि विक्रमादित्य के कल्याण राज प्राप्त करने के पूर्व हीं जयकेशि के अधिकार में गोप पटन था। और उस समय जयकेशि सोमेश्वर का परं स्नेहास्पद सामन्त था। जयसिंह और विक्रमका उस समय मेल नहीं था। पुनश्च १००० वाली प्रशस्ति में जयसिंह के दाहल लाट और कोकणपतिको भय भीत करनेका उल्लेख नहीं है। अतः जयसिह के आक्रमण समय मुममुनि नहीं वरण अनन्तदेव था। जिसे राज्य च्युत कर जयसिंहने उसके किसी संबंधीको संभवतः स्थानक के शिल्हरा राज्य सिंहासन पर अपनी आधीनता स्वीकार करा बैठाया हो। जिसका समर्थन अनन्तदेवके उक्त शक १०१६ वाली प्रशस्ति से होता है। संभवतः अनन्तदेवको स्थानक का राज्यसिंहासन अपने

संबंधी के हाथसे पुनः प्राप्त करने में विक्रमादित्य और जयसिंह कि परस्पर विग्रह और जयसिंह के पराभव से सहायता मिली हो। चाहेजो हो परन्तु हमारी समझ में जयसिंह ने लाट और दाहल विजय समय स्थानक के शिलहार अनन्तदेवको गद्दीसे उतारकर उसके किसी संबंधी को गद्दीपर बैठाया था। और इन दोनों राज्य तथा दाहल के मध्य कहीं न कहीं अपनी सेनाको रखा था जिसका आतंक इनको भयभीत किये हुए था।

प्रस्तुत प्रशस्ति से प्रकट होता है कि जयसिंह के अधिकार में - पुलगिरि - रेवु - माले केशुवलाल - वनवासी और वेल वाले आदि प्रदेश थे और उसकी राज्यधानी बलिपुर नामक स्थान में थी। बलिपुर का वर्तमान नाम बलेगाम्वे है। और वनवासी से लगभग ३०-३५ मील दक्षिण पूर्व मयसूर राज्य के सामोगा जिला में है। बलिपुर नगर बहुत प्राचीन स्थान है। स्थानीय कथानक के अनुसार तो वह सत्युग में होने वाले दैत्यराज बलि की राज्यधानी थी। और भगवान रामचंद्र और युधिष्ठिर आदि पाण्डवगण उक्त स्थान में आये थे। यदि कथानक को सर्वांशतः हम न भी स्वीकार करें तोभी हमें यह मानना पड़ेगा कि बलिपुर वनवासी प्रदेश और वनवासी नगर का समकालीन है। और वनवासी प्रदेश के मौर्यवंशोदभव अधिपतियों के समय राजनगरी होनेका सौभाग्य प्राप्त कर चुका है।

हमारी समझ में तिथि के संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि प्रशस्ति शक संवत १००२ की है। क्योंकि इसकी तिथि चौलुक्य विक्रम संवत ४ है। एवं प्रस्तुत प्रशस्ति का विवेचन समाप्त करने पूर्व यदि हम वीर नोलम्ब जयसिंह के अधिकार गत प्रदेशों का विचार करें तो असंगत न होगा क्योंकि प्रस्तुत प्रशस्ति हमारी चौलुक्य चंद्रिका में जयसिंहसे संबंध रखने वाली प्रशस्तियों में अन्तिम प्रशस्ति है।

वीर नोलम्ब जयसिंह से संबंध रखने वाली प्रथम प्रशस्ति शक ६६८ और अन्तिम शक १००२ वाली है। और इन प्रशस्तियों की संख्या ५ है। हम यहां पर निम्न भागमे क्रमशः प्रशस्तियों का नाम दे उनके समानन्तर में कथित प्रदेशों का नाम देते हैं।

संख्या.	प्रशस्ति.		प्रदेश.
१	शक ६६९ अरसिकेरी प्रशस्ति	–	कोगली
२	शक ६७३ नेरल गुन्डी प्रशस्ति	–	वदिग्वलिग सहस्र - बलकुन्डे त्रयशत और कुन्डेरुम
३	शक ६६३ जानिग रामेश्वर प्रशस्ति	–	गोन्देवाडी
४	शक ६६४ हूलेगाल प्रशस्ति	–	सुलगाल
५	शक १००१ आचपुर प्रशस्ति	–	वनवासी द्वादश सहस्त्र और सन्तालिग सहस्त्र

६ – शक १००२ सुम्बर होमरु प्रशस्ति – बनवासी द्वादश सहस्त्र, सन्तालिग और पटसहस्त्र द्वय

७ – शक १००२ सुम्बर होमरु द्वितीय प्रशस्ति – पुर्लागिरि - रेबु माले वेशुबाल बनवासी द्वादश सहस्त्र और वेलवाड प्रदेश

इन प्रदेशोंके अतिरिक्त भुवनमल्ल सोमदेव के लेखोंसे प्रकट होता है कि उसने गद्दीपर बैठने पश्चात जयसिंह को पोरविन्दु और नोलम्ब वाडी नामक दो प्रदेश दिये थे। इनमें पोरबिन्दु का नामान्तर गोन्दवाडी है। पोरबिन्दु का उल्लेख शक ९९३ की प्रशस्ति में आगया है। अतः जयसिंह के अधिकार सकल प्रदेशों में केवल एक की वृद्धि होती है। अपरंच कर्नाट देश इन्स्क्रिप्शन नामक ग्रंथ के वोल्यूम १ पृष्ठ २८४ और २०९ में प्रकाशित हलगुठ और बालवीड के शक ९९९ - १००२ - [illegible] और १००४ के लेखों से जयसिंह के सकल प्रदेशोंका नाम बेलवेल, सन्तालिग, बनवासी और पुर्लागिरि पाया जाता है। इनमें पुर्लागिरि और सन्तालिग का उल्लेख प्रशस्ति संख्या ६ और ७ में है। अतः केवल बेलवेल और बासवली नामक दो प्रान्त ही नये रह जाते हैं।

उपर्युक्त सूचि पर दृष्टिपात करनेसे ज्ञात होता है कि बनवासी द्वादश सहस्त्रका अन्तिम तीन प्रशस्तियोंमें और सन्तालिग का दो प्रशस्तियों नाम आया है। अतः यदि हम इन पुनरुक्तियों का परित्याग करें तो भी विक्रमादित्य के अधिकार में निम्नलिखित १८ प्रदेश पाये जाते हैं। १ - कोगली, २ - दाडिमवलिगे, ३ - बलकुन्दा त्रयशत, ४ - कुन्डुरु, ५ - गोन्दवाडी, ६ - मुलगाल, ७ - बनवासी द्वादश सहस्त्र, ८ - सन्तालिग सहस्त्र, ९ - पुर्लागिरि, १० रेबु, ११ माले १२ - पट सहस्त्र द्वय, १३ - केशुवलाल, १४ - बेलवाडी, १५ - नोलम्ब वाडी, १६ - बासवली १७ - नाडुवाडी, और १८ - बेलवेला।

जयसिंह के अधिकृत प्रदेशोंका वर्तमान परिचय प्राप्त करना असंभव है तथापि यथा-साध्य कुछ का परिचय देते हैं।

१ – कोगली

२ – दाडिमवलिगे

३ – बलकुन्दा त्रय शत

४ – कुन्दुर - का नामान्तर कुन्तल और कुन्डा है। यह कुन्डी ३ सहस्त्र नामसे प्रख्यात था। इसके अन्तर्गत बेलगांव जिला का अधिकाश प्रदेश और कलादगी बीजापुर का दक्षिण पश्चिम भाग शामिल था। यह प्राचीन कुन्तल का एक विभाग है।

५ – गोन्दावाडी (पोरविन्द)

६ – शूलगाल

७ – वनवासी द्वादश सहस्र – इस प्रदेशमें मुम्बई प्रान्त के उत्तर कनाडा और मयसूर राज्य के सिमोगा जिल्ला का अधिकांश भूभाग सामिल था। इसका एक भाग नागर खण्ड के नाम से प्रख्यात था। वनवासी की राजधानी वलिगाम्वे, जिसका नामान्तर वलिगाव और वलिग्राम आदि है, थी।

८ – सन्तालिग सहस्र – मयसूर राज्य का सिमोगा और कुदूर जिला का भूभाग। यह प्रदेश वनवासी प्रदेश से दक्षिण में अवस्थित था।

९ – पुलगिरि – धारवार जिला के अन्तर्गत है। इसका नामान्तर लक्ष्मेश्वर है। और यह पुलगिरि त्रयशत के नामसे प्रसिद्ध था।

१० – रेवु

११ -- माले

१२ – प. सहस्र द्वय

१३ – बलवीड

१४ -- नोलम्ब वाडी -- यह मयसूर राज्य के सिमोगा जिलासे पूर्व में अवस्थित था। और इसमें दुर्ग जिला का प्रायः समस्त भूभाग था। यह त्रयशत सहस्र नामसे प्रसिद्ध था।

१५ -- केशुवाल

१६ -- वामबवली (सहस्र)

१७ -- ताडदवाडी - विजापुर जिला के अन्तर्गत और इसमें बादामी का अधिकांश भाग संमिलित था।

१८ -- वेलवोला - इसमे धारवार और वेलगांव जिलाओ का अधिकांश भूभाग संमिलित था। यह वेलवोला त्रयशत नामसे प्रसिद्ध था।

इससे प्रकट होता है कि जयसिंह के अधिकार में एक बहुत बडा प्रदेश था। जिसमें बम्बई प्रदेशके धारवार-विजापुर, वेलगांव और उत्तर कनाडा एवं मद्रास प्रान्तके बेलारी और मयसूर राज्य का उत्तर पूर्वीय समस्त प्रदेश था। हमारी समझमें प्रशस्ति का सांगो पांग विवेचन हो चुका और यदि कोई बात शेष है तो वह यह है कि जयसिंह के अधिकृत कुछ प्रदेशों के वर्तमान नामादि और अवस्थान का परिचय नहीं प्राप्त कर सके। अन्यथा कोई विचारनीय बात शेष नहीं रही है।

मंगलपुर वसन्तपुर पति चौलुक्य राज

केसरी विक्रम श्री जयसिंह

का

शासन पत्र

१। ॐ स्वस्ति। ॐ नमो भगवते आदि वाराह देवाय श्रीमतां सकल भुवनेषु संस्तूयमानानां मानव्यस गोत्राणां हारीति पुत्राणां भगवन्नादि वाराह वर प्रसादा दवाप्त राज्यानां तत्प्रासाद स्समासादित वर वा ाह लाञ्छणे क्षणेन वशीकृतारातय खिल मंडलानां अश्वमेधाव भृत्थ स्नानेन पवित्री कृत गात्राणां चौलुक्य नाम न्वये दक्षिण पथे वातापिपुर मण्डले वातापिनाथो महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री आ ि मलपादानुध्यात्त त्पुत्रो महाराधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री ि िक्रमदेवश्चा हवमल्लः तत्पादानुध्यात तत्पुत्रो महाराजा श्री जयसिंहदे ोऽ परनामा िहणेति त्रिलोकमल्ल वीरत्नोलम्य ल्लावर्दि तालदवाडी योतम्यविन्द लोलम्बाडी बेलम्बला पुलगिार वामवली वानवार्ना युवराज

२। सोऽपि चौलुक्यचन्द्रः देव दुरहया पाण्डवास समो च्छिन्नपद स्नत्सं कुल परिहारार्थं कानन जगाम। कति काले गते माति तत्पुत्र स्केसरी विक्रमश्चापर नामा विजयसिंहो बालार्क द्युतिसम व्याप्त तेऽपि चौलुक्य वंशाब्धि विवर्धेन्दुः पितृव्य राज्यमन्तर्हित्वा संह्याद्रि गिरि गह्वर स्वभुजोपा पार्जित साम्राज्ये मंगलपुर्या स्वराज्यधानीं कृत्वा वाराह ध्वजंचारोपितः

३। एकदा साम्राज्यस्य विन्ध्यप्रान्तर्गत विजयपुरे प्राति वसतस्स ा तपत्यां स्नात्वा लक्ष्म्यावातपा पीडित दिपशाखाव चचांचल्यं विदय संसारस्यासारततामनु भूय जीवनस्य च क्षणभंगुरत्वं दृष्ट्वा धर्मस्य चानुगामित्व मुपलक्ष्य स्व माता पित्रो रात्मनश्च पुण्य यशोऽभि वृधि कांक्षया

४। वनवासी प्रत्यागत स्व पुरोहित पुत्राय भारद्वाजस गोत्राय त्रिप्रव ाय अध्वर्यु नैतरीय शाखाध्यायी सोमशर्मणे विजयपुर प्रान्त मण्डले प्रावर्ते विषयान्तपाति वामनचलग्राम तृण गोचर सचार्य पूर्व ब्राह्मण दाय वर्ज्य जल पूर्वक स्माभिः प्रदत्त सुविदित मस्तुवः समस्त राजपुरुषा न्पट्टकलादि कर्षकैश्च सर्वाय मेभिरावि च्छेदेन दातव्यं।

५। अस्य ग्रामस्य सीमानः पूर्वतः सूर्यन्या नदि। दक्षिणतोऽपि सागव पश्चिमतः स्वस्त्व वनं। उत्तरतः श्यामावर्ती मद्वंशजैरन्यैरपि केनाचिदपि बाधान कर्तव्यं। बाधाकृते सति पंच महा पातकानि भवन्ति पालने महात्पुण्यमपि भवति उक्तं च

६। सामान्योऽयं धर्म सेतु नृपाणां काले पालनियो भवद्भिः स्ववंशजो वा पर वंशजो वा रामोवत् प्रार्थयते महीशा :
यानीह दत्तानि पुरा नरन्द्रै धर्मार्थ कामानि यशस्कराणि।
निर्माल्यवान्ति प्रतिमानि तानि को नाम साधु पुनरा ददति

बहुभि र्वसुधा भुक्ता राजाभि सगरादिभि :
यस्य यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तद फलं
कायस्थ वालमान्वाय कृष्णदत्तस्य सुनुना।
हरदत्तेन कृतं काव्यं लिखितमपि शासनम्।
नव चत्वारिंश च्चाद्र रुद्र संख्या शते गते।
माघे कृष्णे च द्वादशां विक्रमार्क संवत्सरे।

अंकतोऽपि ११४९ विक्रमार्क संवत्सरे माघ कृष्ण १२ कृतकोऽत्र महा सन्धि विग्रहिक नरदेव सुत हरदेव इति।

मंगलपुर वसन्तपुर प्रशस्ति

का

छायानुवाद.

१ — कल्याण हो। भगवान आदि वाराह देव के लिये नमस्कार। सकल संसार के स्तुति पात्र मानव्य गोत्री हारीति पुत्र, भगवान वाराह की कृपासे राज्य और वाराह लक्षण प्राप्त, एवं वाराह लक्षणकी छायामें शत्रु मण्डलको वशीभूत करने वाले, अश्वमेघ अवभृथ स्नान द्वारा पवित्र शरीर, चौलुक्य वंश में दक्षिण पथ में वातापि नाथ महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री जयसिंह हुए। श्री जयसिंह देवका पादानुध्यान उसका पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक आहवमल्ल सोमेश्वर हुआ। श्री सोमेश्वर देवका पुत्र उसके पाद पद्मका भ्रमर वनवासी युवराज त्रैलोक्यमल्ल पल्लव परमानादि वीरलोम्ब श्री जयसिंह देव उपनाम सिंगा देव हुआ।

२ — श्री चौलुक्य चंद्र जयसिंह देवको दैवकोप वसात पाण्डवो के समान अपने अधिकार से वंचित होकर विपत्काल क्षेपनार्थ जंगल में जाना पड़ा। जयसिंह के वनवास काल में ही कुछ दिनो पश्चात उसका पुत्र केसरी विक्रम उपनाम विजयसिंह मध्यकालीन सूर्य प्रभा समान व्याप्त शौर्य एवं चौलुक्य वंश समुद्र को प्रफुल्लित करनेवाला पूर्ण चन्द्र अपने चचा के राज्य की सीमा पर अपने भुजबल से सह्याद्रि उपत्यका के भूभागको अधिकृत कर मंगलपुरी में वाराहध्वज को स्थापित कर उसे अपनी राज्यधानी बनायी।

३ — एकवार अपने राज्य के विजयपुर प्रान्त के विजयपुर नामक ग्रामे में निवास करते समय तापी नदी में स्नान करने पश्चात लक्ष्मीको वायु पिड़ीत दीप शिखा समान अस्थिर देख संसारकी असारता तथा मानव जीवनकी नश्वरता का अनुभव कर पुनश्च मनुष्य का परलोक में धर्म कोही एक मात्र साथ देने वाला विचार अपनी माता और पिता तथा अपने पुण्य और यश वृद्धि की इच्छा से

४ — वनवासी से आये हुए अपने पुरोहित के पुत्र भारद्वाज गोत्री त्रिप्रवर तैतरीय शाखाध्यायी अध्वर्यु सोमशर्मा को विजयपुर प्रान्त नामक मण्डलके पार्वत्य विषयान्तर्पाती वामनवली नामक ग्राम तृण गोचर आदी के साथ पूर्व दत्त ब्राह्मण दाय आदी को छोड़कर जल द्वारा संकल्प पूर्वक दिया। समस्त राज पुरुषों, पटकिलो और कर्षकको इस ग्रामकी आय ब्राह्मणको बिना किसी बाधा के देना चाहीए।

५ — इस ग्रामकी सीमा। पूर्व सूर्यकन्या नदी।
दक्षिण "

पश्चिम खाण्डव बन।
उत्तर श्यामावली

हमारे वंश के अथवा अन्य वंशके किसीको भी इसमें बाधा उपस्थित नहीं करना चाहिए बाधा करनेवाले को पांच प्रकारकी महा पातक होता है। उसी प्रकार पालन करने वाले को महा पुण्य होता है। कहा गया है

६--राजाओं का यह धर्म है कि चाहे अपने अथवा अन्य वंशजोंका यशावृद्धि करनेवाला धर्म कामना से दिया हुआ ही दान क्यों न हो। उसे नीर्माल्य मान उसकी रक्षा करे क्योंकि पूर्वदत्त दानका अपहरण साधु पुरुष नहीं करते - ऐसी याचना भावी नरेशों से हम करते हैं।

इस संसार में वसुधाका भोग सगर आदी अनेक राजाओं ने किया है। परन्तु जिस समय वसुधा जिसके अधिकारमे रहती है उस समय पूर्वदत्त दानका फल - रक्षा करनेके कारण उसको ही होता है।

वालमान्वय कायस्थ कृष्णदत्त के पुत्र हरि दत्त ने इस शासन पत्रकी कविता को किया और लिखा विक्रम संवत ११४६ माघ कृष्ण द्वादशी। इस शासनका दूतक नरदेवका पुत्र हरदेव महा सन्धि विग्रही हैं।

मंगलपुर वसन्तपुर प्रशस्ति

का

छायानुवाद ।

प्रस्तुत शासन पत्र संह्याद्रि उपत्यकामें मंगलपुरी नामक नवीन चौलुक्यराज संस्थापक श्री वीजयसिंहदेव केसरी विक्रमका शासन पत्र है। यह छव भागोंमे बटा है। प्रथम अंशसे लेकर पांचवे अंश पर्यन्त शासन पत्र गद्यमें है। छठेका अंतिम भाग गद्य और शेष पद्य है।

प्रथम अंशका प्रारंभ स्वस्ति से किया गया है। अनन्तर वाराहकी स्तुति और चौलुक्यों की परंपरा गत रूढी दी गई है। पश्चात वंशावलीका प्रारंभ होता है। वंशावलीमें शासन कर्ता पर्यन्त कुल चार नाम हैं और उनका क्रम निम्न प्रकारसे है।

जयसिंह
|
सोमेश्वर
|
जयसिंह
|
विजयसिंह

जयसिंह प्रथमका विरुद वातापि नाथ और महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक है। उसी प्रकार सोमेश्वरका विरुद परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर और नामान्तर आहवमल्ल है। परंतु शासन कर्ता के पिताके नामके साथ बहुत लम्बा चौडा विरुद दृष्टिगोचर होता है। पत्रे उसका नामान्तर सिंहण प्रकट होता है। उक्त विरुद त्रैलोक्यमल्ल विरनोलम्ब पल्लवमर्दी तालद वाडी पोलविन्दु शान्तलवाडी वेलवला पुलगिरि वासवली नाथ और वनवासी युवराज है। इस विरुद पर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि विरुदावली तीन भागोंमें बटी है। प्रथम भागमें त्र्यलोकमल्ल वीरनोलम्ब पल्लवमर्दी, द्वितीय भागमें तालदवाडी पोलविन्दु सान्तलवाडी वेलवेला पुलगिरि वासवली नाथ और तृतीय भागमें केवल वनवासी युवराज है।

इस लम्बे चौडे विरुदका न तो अर्थ और न कारणही हमारी समझमें आता है। प्रथम भागवर्ती विरुदोंके संबंधमें हम कह सकते हैं कि वे गुणवाचक हैं। परन्तु द्वितीय भागके विरुद देशवाचक प्रतीत होते हैं। और उन देशोंके साथ जयसिंहका संबंध प्रकट करते हैं। यदि वास्तवमें वे देशवाचक है तबतो कहना पडेगा कि जयसिंहके अधिकारमें एक बहुत बडा भूभाग था। परन्तु

उक्त प्रदेश जयसिंहको क्योंकर और कब मिले यह प्रशस्तिसे कुछभी ज्ञात नहीं होता है। तृतीय भागके विरुदमें जयसिंहको वनवासी युवराज कहा गया है। यह और भी उलझी हुई गुत्थीको पूर्णरूपेण उलझाकर मतिभ्रम करता है। जयसिंहके वनवासी युवराज पद प्राप्त करनेका कारण प्रशस्तिने कुछभी नहीं बतलाया है। परन्तु यह साधारण बात है कि युवराजपद उसीको प्राप्त होता है जो किसी राजाका भावी उत्तराधिकारी होता है। परंतु शासन पत्रके उत्तरकालीन अंशसे प्रकट होता है कि जयसिंहको एक भाई था जो कहींका राजा था। अतः जयसिंह न तो अपने पिताका युवराज हो सकता है और न अपने भाईका। इस कारण उक्त युवराज पद हमारी पूर्व धारणाके अनुसार हमे चक्रमें डालने वाला है।

शासन पत्रके द्वितीय अंशसे प्रकट होता है कि जयसिंह पर देवकोप हुआ था। और उसको अपने अधिकारसे वंचित होना पड़ा था। अधिकार वंचित होने पश्चात वह कालक्षेपणार्थ पाण्डवोंके समान जंगलमें चला गया था। कुछ दिनों पश्चात उसके पुत्र विजयसिंह केसरी विक्रम पितृव्ययके सिमान्तर प्रदेशके कुछ भूभागपर अधिकार जमा बैठा। और अपने बाहुबलसे मंगलपुरी नामक नवीन चौलुक्य राज्यका संस्थापक हुआ। प्रशस्ति स्पष्ट रूपसे वर्णन करती है कि उसने मंगलपुरीमें चौलुक्योंके वाराहध्वजको स्थापित किया था।

शासन पत्रके तृतीय अंशसे प्रकट होता है कि विजयसिंह अपने साम्राज्यके विजयपुर नामक नगरमें एक वार निवास करते समये संसारकी असारताको देख लक्ष्मीकी अस्थीरताका अनुभव कर धर्मकोहीं केवल परलोकमें अनन्य सहायक मान अपने मातापिता तथा अपने पुण्यकी वृद्धिकी कांक्षा से ....

चौथे भागसे प्रकट होता है कि वनवासीसे आनेवाले अपने पुरोहितके पुत्र सोमशर्माको विजयपुर प्रान्तके पार्वत्य विषयका वामनवली ग्राम दान दिया। एवं प्रजाको आदेश दिया कि वह उक्त सोमशर्माको ग्रामका दायभाग दिया करे।

पांचवे भागमें प्रदत्त ग्राम वामनवली की चतुर्सीमा देनेके पश्चात स्ववंशज और पर वंशज भावीराजाओंसे आग्रह किया गया है कि वे उक्त धर्म दायका पालन करे।

छठे भागमें धर्मदाय पालनका पुण्य और अपहरणका पाप आदि वर्णन करते हैं, पश्चात शासन पत्र बनाने वालेका नाम और शासन पत्रकी तिथि दी गई है। शासन पत्रकी तिथि अक्षरों और अंकों दोनोंमें दी गई है और सबसे अंतमें शासन पत्रके दूतकका नाम लिखा गया है।

हमारी समझमें शासन पत्रमें किसी बातकी त्रुटि नहीं है। सब बातें इसमें जो शासन पत्रमें होनी चाहिये दी गई हैं। इसमे प्रथम शासन कर्ताकी वंशावली उसका विशेष वर्णन द्वितीय दानका कारण दान प्रतिगृहिताका परिचय प्रदत्त ग्रामकी सीमा लेखक और दूतक आदिका परिचय सभी बातें दृष्टिगोचर होती हैं। अतः यह शासन पत्र त्रुटि रहित हैं।

हम ऊपर प्रकट कर चुके हैं कि शासन पत्रकी वंशावली में केवल चार नाम हैं। उनमें शासन कर्ताके प्रपितामह जयसिंहको वातापि नाथ कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि वह वातपिका राजा था परन्तु उसका पुत्र सोमेश्वर कहांका राजा था यह नहीं प्रकट होता। किन्तु उसकी विरुदावली अपने पिताके समान ही होनेसे उसका भी वातापि का राजा होना प्रकट होता है। जयसिंह द्वितीय अर्थात् शासन कर्ताके पिताकी विरुदावली के सम्बन्धमें हम कुछ विचार ऊपर प्रकट कर चुके हैं। अतः यहां पर इतनाही कहना पर्याप्त होगा कि उसके अधिकारमें वनवासी और सान्तलवाड़ी आदि प्रदेश थे। वह सांतलवाड़ी आदि प्रदेशोंका स्वतंत्र शासक राजा और वनवासीका युवराज था। जब जयसिंह अधिकार [illegible] हुआ तो [illegible] चला गया। उसके वनवासके समयमें ही उसके पुत्र केसरी विक्रमने [illegible] मंगलपुरीको अपनी राज्यधानी बनायी।

अतः अब विचारणीय है कि वातापि के चौलुक्य राज्यसिंहासनका भोक्ता जयसिंह नामक कोई राजा हुआ है या नहीं। यदि था तो उसका समय क्या था। उसके पुत्र और पौत्रका नाम अहवमल्ल और जयसिंह था या नहीं। यदि था तो अहवमल्लका समय क्या था और जयसिंहकी विरुदावली क्या थी। [illegible] कहलाता था या नहीं। सान्तलवाड़ी आदि प्रदेशोंके साथ उसका क्या संबंध था और अन्ततोगत्वा वनवासीका अधिकार उसके हाथसे कब और क्योंकर छिन गया।

इन प्रश्नोंका समाधान करनेके लिये हमें वातापि के चौलुक्य वंशके इतिहासका अवलोकन करना होगा। वातापि के चौलुक्य वंशका राज्यधानी वातापि होने के पूर्व [illegible] नामक स्थान - जिसे संप्रति अजन्टा कहते हैं में थी। [illegible] करनेवाला जयसिंह है। उसके पूर्व चौलुक्योंकी राजधानी चौलुक्यगिरि नामक स्थानमें थी। चौलुक्यगिरि के संयोगसे राजवंशका पूर्व नाम सोम वंश बदल कर चालुक्य प्रचलित हुआ। चौलुक्यगिरि राज्य प्राप्त करनेवाला विष्णुवर्धन विजयादित्य है। विजयादित्य के पश्चात [illegible] राजाओंने चौलुक्यगिरि राज्य सिंहासन का भोग किया। अनन्तर उनके [illegible] राज्य छिन गया। परन्तु अन्तिम राजा के पुत्र जयसिंहने पुनः अपने बाहुबल पर [illegible] राज्यका उद्धार कर [illegible]न्तपुरी को अपनी राज्यधानी बनायी। जयसिंहके बाद उसका पुत्र रणराग हुआ। उसने भी [illegible]न्तपुरीमें रहकर पैतृक राज्यका भोग किया। उसके पश्चात उसका पुत्र पुलकेशी हुआ। पुलकेशी वास्तवमें अपने वंशका परं प्रख्यात राजा हुआ। इसने सब प्रथम वातापि के कदम्बोंका उत्पाटन कर वातापि पुरीको अपनी राज्यधानी बनायी। पुलकेशीने प्रायः समस्त भारत वर्षको विजय कर एक छत्र बन अश्वमेध यज्ञ किया।

पुलकेशीके पश्चात उसके कीर्तिवर्मा और मंगलीश्वर नामक दोनों पुत्रोंने क्रमशः उसके राज्यका उपभोग किया। मंगलीशने वातापिपुरीके प्रसिद्ध [illegible] निर्माणकर उसमें अपने कुल देव वाराहकी प्रतिमा स्थापित कर अपना नाम अचल बनाया। मंगलीशके पश्चात उसका भतीजा

पुलकेशी द्वितीय हुआ। पुलकेशी द्वितीय भी अपने पितामहके समान प्रचण्ड योद्धा और भारत वर्षका एकछत्र अधिपति हुआ। पुलकेशी द्वितीयकी राजसभामें ईरानके प्रसिद्ध राजा खुशरुका राजदूत रहता था। उक्त पारशियन राजदूत के आगमनका द्योतक करनेवाला एक चित्र ऐजन्त-पुरीकी गुफामें चित्रित किया गया है।

पुलकेशीने अपने छोटे भाईओं, विष्णुवर्धन और जयसिंह एवं बुधवर्म्मको एक एक प्रान्त प्रदान किया था। विष्णुवर्धनको वेंगी मण्डल प्रान्त - कृष्णा और गोदावरी नामक नदिओंके मध्यवर्ती देश - दिया। जहां उसके वंशजोंने लगभग छव सौ वर्ष राज्यभोग किया; और पश्चात् समय पूर्वीय चौलुक्य नामसे प्रसिद्ध हुये। जयसिंहको पुलकेशीने वर्तमान नाशिकके चतुर्दिक-वर्ती भूभाग दिया था। जहां उसके पुत्रादिने राज्य किया परन्तु उसका वंश अधिक दिनों नहीं चला। चौथे भाई बुधवर्म्म को वर्तमान कोलाबा जिल्ला के चतुर्दिकवर्ती प्रदेश दिया था। बुधवर्म्मका वंशभी लोप हो गया क्योंकि उसकाभी कुछ परिचय नहीं मिलता। हां, बुधवर्म्मका एक शासन पत्र कोलाबा जिल्लाके पिनुक नामक स्थानसे मिला है जिससे प्रकट होता है कि वह अपने भतीजा वातापि पति विक्रमादित्यके समय तक जीवित था।

पुलकेशीको आदित्यवर्मा—चन्द्रादित्य–विक्रमादित्य और जयसिंहवर्मा नामके चार पुत्रों का होना पाया जाता है। आदित्यवर्म्मका परिचय उसके अपने ताम्रपत्रसे और चंद्रादित्यका परिचय उसकी महिषी महादेवी विजय भट्टारीका के शासन पत्रों से मिलता है। संभवतः आदित्यवर्माकी मृत्यु पिताके समयमेंही हो गई थी। और चंद्रादित्य भी कदाचित एक पुत्रको छोडकर कालगत हुआ था। चंद्रादित्यके शिशु पुत्रकी माता (चंद्रादित्यकी रानी) विजय भट्टारिकादेवी शासन करती थी। परन्तु शासन करते समयभी विजय भट्टारिकाने बिक्रमादित्य के राज्यका उल्लेख किया है। अतः संभवना होती है कि सिंहासनपर वास्तवमें बिक्रमादित्यही बैठा। विक्रमके समयसे वातापिके चालुक्य पश्चिम चालुक्यके नामसे प्रख्यात हुए। विक्रमने अपने छोटेभाई जयसिंहको लाट देशका राज्य दिया जहां उसने और उसके वंशजोने नवसारिका (नवसारी) को राज्यधानी बना लगभग १०० वर्ष पर्यन्त राज्य किया।

विक्रमादित्यके पश्चात् क्रमशः वातापिके सिंहासन पर उसका पुत्र विनयादित्य, पौत्र विजयादित्य द्वितीय तथा प्रपौत्र किर्तीवर्मा द्वितीय बैठा। कीर्तिवर्मा के समय चौलुक्य राज्यलक्ष्मीका अपहरण हुआ और वातापि साम्राज्य राष्ट्रकूटोंके अधिकार में चला गया। लगभग दोसो वर्ष पर्यन्त वातापि राष्ट्रकूटोंके अधिकार में रहा। अन्तमें तैलप द्वितीयने अपने वंशकी राज्यलक्ष्मीका उद्धार कर वातापी को पुनः अपनी राज्यधानी बनायी। तैलपने शक ८९५ से ९१९ पर्यन्त राज्य किया।

चौलुक्यराज्य उद्धारक तैलपके बाद उसका पुत्र सत्याश्रय ने शक ९१९ से ९३० पर्यन्त राज्य किया। अनन्तर उसका भतीजा विक्रमादित्य पांचवा गद्दी पर बैठा। बिक्रमादित्यकी कौथुम

प्रशस्तिमें वंशावली दी गई है। वंशावलीके साथही अन्यान्यबातें अर्थात् चौलुक्योंका अयोध्यामें राज्य करना, पश्चात दक्षिणमें आकर नवीनराज्य स्थापित करना-राज्यका छिन जाना-जयसिंहका पुनः उद्धार करना प्रभृति देनेके पश्चात् जयसिंहसे लेकर क्रमशः विक्रमादित्य पर्यन्त नाम दिये गये। इस प्रशस्तिको हमने चौलुक्य चंद्रिका वातापि कल्याण खण्ड में अविकल रूपसे उधृत कर पूर्ण विवेचन किया है।

विक्रमके बाद उसका छोटा भाई जयसिंह शक ६४० में गद्दीपर बैठा और शक ९६३ पर्यन्त राज्य किया। जयसिंहकी उपाधि जगदैकमल्ल थी इसनेभी अपने राज्यके छठें वर्षकी एक प्रशस्ति में चौलुक्य वंशकी वंशावलीका अभिगुन्ठन, जयसिंह प्रथमसे लेकर अपने समय पर्यन्त किया है। जयसिंहकी राणी संगलदेवी थी। जिसके गर्भसे आहवमल्ल पुत्र और अव्वलदेवी नामकी कन्या हुई। अव्वलदेवीका दूसरा नाम हाम्मादेवी था। उसका विवाह सेवुण देशके राजा भिल्लम तीसरेके साथ हुआ था जयसिंहकी मृत्यु पश्चात आहवमल्ल गद्दी पर बैठा।

आहवमल के राज्यकालीन विविध प्रशस्तियों और शासन पत्रों के पर्यालोचनसे प्रगट होता है कि इसको होयसलदेवी - वाचलदेवी चंद्रकादेवी और केतलदेवी नामक चार राणियां थी और इन के गर्भसे इसको सोमेश्वर - विक्रमादित्य और जयसिंह नामक तीन पुत्रोंका होना पाया जाता है। आहवमल्लने वयस्क होने पर अपने प्रत्येक पुत्रको कुछ प्रदेशकी जागीर दे कुछ अन्य प्रदेशोंका शासक नियुक्त किया था। आहवमल्लने अपने ज्येष्ठ पुत्र सोमेश्वर भुवनमल्लको वयस्क होने पर युवराज पट्टबंधकी जागीर बेळुवलाल (पट्टकल) प्रदेश दिया था। उसके अतिरिक्त शक ६७१ मे वह वेलवोला त्रयशत और पुलगिरि त्रयशतका शासक नियुक्त हुआ था। एवं द्वितीय पुत्र वीक्रमादित्यको वनवासी द्वादश सहस्र नामक प्रदेश दिया था। एवं वह गंगवाडी शासक था

पुनश्च आहवमल्लके राज्यके छठें वर्ष शक ६६६ की प्रशस्तिसे प्रकट होता है कि उसने अपने कनिष्ठ पुत्र जयसिंहको कोगली आदि प्रदेशकी जागिर दी थी। एवं उसके राज्यके २३ वें वर्ष अर्थात् शक ६७६ के लेखसे प्रकट होता है कि जयसिंहके अधिकारमें उस वर्ष कतिपय अन्य प्रदेश थे इन दोनों प्रशस्तियोंके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि जयसिंह अपने प्रदेशों का पूर्ण शासनाधिकार का भोग करता था। और अपने पिता को अधिराजा मान स्वयं स्वतंत्र सामन्त राजाके शासन आदि प्रचलित करता था। पुनश्च इन शासन पत्रों से जयसिंहका विरुद वीरनोलम्ब पल्लव परम्नादि त्रयलोक्यमल्ल प्रकट होता है। आहवमल्लका स्वर्गवास शक ९६० के चैत्र मास में कृष्ण ८ रविवारको हुआ और उसका ज्येष्ठ पुत्र सोमेश्वर कल्याण की गद्दी पर बैठा।

उधृत अवतरणसे स्पष्ट रूपेण प्रस्तुत प्रशस्तिकी बातों का सामंजस्य मिलता है। अतः हम यदि निशंक हो प्रशस्ति कथित विजयसिंह के पिता वीरनोलंब पल्लव परम्नादि जयसिंह को

वातापि पति जयसिंह जगदेकमल्लका पौत्र और आहवमल्ल त्रयलोक्यमल्लका कनिष्ठ पुत्र एवं सोमेश्वर भुवनमल्ल और बिक्रमादित्य त्रिभुवनमल्लका कनिष्ठ भ्राता घोषित करें तो असंगत न होगा क्योंकि विजयसिंहके पिताका पूर्ण परिचय प्राप्त करने के पश्चात् अधिकांशतः पूर्व अवतरित प्रश्नोंका एक प्रकार से समाधान हो चुका तथापि हम अभी ऐसा करनेमें असमर्थ हैं। हमारी इस असमर्थता का कारण यह है कि अनेक महत्व पूर्ण विषयोंका समाधान नहीं हुआ है। वनवासी युवराज विरुदका परिचय नहीं मिला। परिचय नहीं मीलने के साथ हीं इस अवतरण से औरभी गुत्थी उलझी गई है क्योंकि वनवासी प्रदेशको जयसिंह के पिता आहवमल्लने प्रथम अपनी गंगवंशकी राणीको दिया था। जो अपने कदमवंशी सामन्त द्वारा शासन करती थी। बादको उसके पुत्र विक्रमादित्यको दिया था।

इस प्रश्न के समाधान के लिये हमें सोमेश्वर विक्रमादित्य और जयसिंह के इतिहास का पर्यालोचन करना होगा। और अपने इस प्रयत्नमें हम सर्व प्रथम नीरनोलम्ब पल्लव परमनादि त्रयलोक्यमल्ल जयसिंह के पूर्व उधृत लेखों के प्रति अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगे। जयसिंहके शक ६६६ से १००३ भावी ७ लेखोंका हम पूर्व में अवतरण कर चुके हैं। उक्त लेखों में दो लेख जयसिंह के पिता आहवमल्लके राज्यकालीन है जिनका उल्लेख उपर कर चुके हैं। अन्य दो लेख (शक ६६३ और ६६५) में जयसिंहने अधिराज रूपसे अपने बड़े भाई सोमेश्वर भुवनमल्लको स्वीकार किया है पुनश्च उन लेखों से जयसिंह सोमेश्वरका अनन्य प्रकट होता है।

परन्तु शक ००१ और १००३ वाले लेखों में जयसिंहको वनवासी प्रदेश का शासक और वनवासी युवराज के रूपमें पाते हैं। इतनाही नहीं जयसिंह अपने लेखों में विक्रमादित्य को अधिराज स्वीकार करता है एवं उनमे जयसिंह को विक्रमादित्यका रक्षक रूपमे पाते हैं। इन लेखो के बिवेचन से सोमेश्वर को कल्याण राज्य सिंहासन से हटाये जाने और विक्रमादित्य के गदी पर बैठने तथा जयसिंहके वनवासी प्रदेश तथा वनवासी युवराज विरुद प्राप्त करने पूर्ण रूपेण विवेचन कर चुके है। अतः यहां पर पुनः पीष्ट पेषण न कर पाठको से उक्त स्थान देखने की आग्रह कर आगे बढ़ते हैं। और जयसिंह के हाथ से वनवासी आदि प्रदेशों के छिन जाने प्रभृतिका विचार करते हैं।

हमारे पाठकों को भलिभांति ज्ञात है कि शक १००३ वाले तुम्बर होसरु के लेखसे प्रगट होता है कि जयसिंहने वनवासी और सन्तलिग आदि प्रदेशोकी राज्यलक्ष्मीको अङ्कशायनी बनाया हुआ और उसका सौर्य सूर्य मध्य गगनमें प्रखर रूपेण बिकसित हो रहा था। और उसने चेदी स्थानक और लाटके राजाओं को पराभूत किया था। एवं प्रस्तुत प्रशस्ति से स्पष्ट है कि विक्रम संवत ११४६ तदनुसार शक ०१४ के पूर्व उसके हाथसे वनवासी राज्यका अपहरण हो चुका था। अतः अब विचारना है कि इस शक १००३-१००४ और १०१४ के मध्य कब तक वह वनवासी का भोग करता था। अब यदि वनवासी प्रदेशपर जयसिंहके बाद राज्य करने वालेका परिचय

सुप्राप्त कर शके तो समस्त उलझी हुई गुत्थी अपने आप उलझ जायेगी। और हम अपने इस भयंकर सन्देह समुद्रसे त्राण पा सकेंगे

जयसिंहके बडे मझले भाई विक्रमादित्य के राज्य कवि काश्मीरी पंण्डित विल्हण के नामसे हमारे पाठक परिचित है। कवि विल्हण अपनी पुस्तक विक्रमाङ्कदेव चरित्र में लिखता है।

"करहाटक के शिलहार राजा की पुत्री चंद्रलेखा से विवाह कर विक्रमादित्य अपनी राज्यधानी में आकर सुखभोग में व्यस्त हुआ। इस प्रकार सुखभोग करते उसको बहुत दिन बीत गये। एक दिवस उसके विश्वास पात्र गुप्तचरन आकर सुचना दी कि महाराज आपके छोटे भाई आपका राज्य छीनने के विचारसे प्रजा पीडन द्वारा बहुतसा धन एकत्रित कर द्रविड के राजा से मैत्री स्थापन करने के उद्योग में लगा है। एवं अपनी सेनाको विद्रोही बनाने का प्रयत्न कर रहा है। पुनश्च उसने बहुत बडी सेना एकत्रित कर लिये है तथा जंगली जातियों को अपना सहायक बना आप पर आक्रमण करने के उद्योग में लगा है। तथा इस सूचनाको पाकर विक्रमादित्यने उसका तथ्या तथ्य जानने के विचारसे अपने राजदूत को जयसिंहके पास भेजा। जिसने लौटकर कथित वातों को पूर्णांशतः सत्य प्रकट किया।

इतने परभी अपने छोटेभाई पर शस्त्र उठाना उचित न मान पुनश्च अपने दूतको जयसिंहको समझाने बुझाने के लिये भेजा। परन्तु जयसिंह ने किसीकी एक न सुनी और अपने सामन्तों और सेनापतियों के साथ बहुत बडी सेना लेकर विक्रमादित्यके राज्य पर आक्रमण किया आसपास के गामों को लुटने और जलाने लगा। विरोध करने वालों को बन्दी बनाया, कृष्णा नदि के पास तक चला आया। परन्तु विक्रमादित्य इस आक्रमणका समाचार पाकर भी कुछ दिनो तक शान्त बैठा रहा अन्तमे विक्रमादित्य अपनी सेनाके साथ आगे बड़ा। दोनो सेनाओं में युद्ध हुआ जिसमे जहसिंहने अपनी हस्ति सेनाको आगे कर आक्रमण किया। और विक्रमादित्य के गज अश्व और पदाति सेनाकों पीछे हटाया।

किन्तु विक्रमादित्य अपनी सेना को उत्साहित करता हुआ आगे बढा और जयसिंहकी सेना को छिन्न भिन्न किया। जयसिंह पराभूत हो कर अपनी सेनाको छोड भाग गया। अन्तमें विक्रमादित्यको जयसिह की सेना के असंख्य हाथी-घोडे और धन रत्न के साथ स्त्रियां हाथ लगी।

विल्हण पण्डितके कथनपर "विक्रमादित्य अपने छोटे भाई पर अस्त्र उठाना नहीं चाहता था" हमे रोकने पर भी वरवश हंसी आ जाती है। क्योंकि विल्हण अपने उक्त कथनसे विक्रमादित्य के चरित्र में भातृ वात्सल्यका चित्र चित्रण करना चाहता है। परन्तु हमारे पाठकों को विक्रमादित्य के भ्रातृवात्सल्य का ज्ञान भलि भांति प्राप्त हो चुका है। अतः हमे आशा है कि विक्रमादित्य के भातृवात्सल्य को वे अवश्य समझते होंगे। तथापि हम यहां पर उसकी नमूना पेश करते हैं। हमारे पाठकों को ज्ञात है कि विल्हण ने सोमेश्वर और विक्रमके विग्रह में भी सोमेश्वरका चरित्र भी ठीक जयसिंह के चरित्र समान चित्रित किया है और वहां भी विक्रमको

निर्मल चरित्र प्रकट करनेके उद्देश्य से लिखा है कि सोमेश्वरको गद्दी परसे उतारने बाद भी विक्रम उसे गद्दी पर बैठाना चाहता था। परन्तु भगवान शंकरने प्रकट होकर क्रोध के साथ प्रकट किया कि वह स्वयं राजा बने। इसके अतिरिक्त सोमेश्वरको प्रजा पीडक आदि बताया है।

परन्तु जयसिंह के शक १००१ वाली प्रशस्ति के विवेचनमें तथा सोमेश्वर और विक्रम के संबंध को लेकर चौलुक्य चंद्रिका वातापि कल्याण खण्ड में विल्हणका भण्डा फोड़ करते हुए दिखा चुके हैं कि विक्रम अपने पिताकी मृत्यु समय से ही सोमेश्वर को गद्दी परसे उतारनेकी धुन में लगा था। और सर्व प्रथम उसने सोमेश्वर के प्रधान सेनापति कदमबंशी जयकेशी के साथ अपनी कन्याका विवाह कर उसे अपना मित्र बनाया। एवं उसके द्वारा राजेन्द्र चोड जो चौलुक्यों का वंश गत शत्र था, के साथ षडयंत्र रच उसे चौलुक्य राज्य पर आक्रमण करने को उत्साहित किया। एवं जब सोमेश्वर राजेन्द्र चौल के साथ युद्ध करनेको आगे बढ़ा और जयकेशी विक्रमादित्य और जयसिंह तथा अन्यान्य सामन्त सेनापतियों को अपनी सेनाके साथ रणक्षेत्रमें आनेको आवाहन किया तो जयकेशी अपनी राज्यधानी गोआसे, विक्रमादित्य अपनी राज्यधानी बनवासी से और जयसिंह अपनी राज्यधानी से तथा अन्यान्य सामन्त और सेनापति अपनी सेनाके साथ चोलदेश के प्रति अग्रसर हुए। परन्तु दोनों सेनाओं के रणक्षेत्रमें आतेहीं जयकेशी और विक्रमादित्य सोमेश्वरका साथ छोडकर राजेन्द्र चौलसे मिल गये जिसका परिणाम यह हुआ कि सोमेश्वरको भागना पडा और रटवाड़ी प्रदेश राजेन्द्र चौलने अपने राजमे मिला लिया किन्तु विक्रमके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दहेजमें रटवाडी प्रदेश उसे दिया। यदि जयसिंह उस समय सोमेश्वरकी रक्षा न करता तो कदाचित उसे उसी समय चौलुक्य राज और अपने प्राणसे हाथ धोना पडता। पुनश्च हम यहभी दिखा चुके हैं कि विक्रमादित्य ने सेवुण देशके यादव राजा से भी मैत्री स्थापित कर लिया था। एवं जयसिंहको बनबासी का युवराज और चौलुक्य राज का लोभ दिखा अपना साथी बनाया।

भला जो मनुष्य अपने बंशशत्रु से मिल सकता है, अपने भाईको घोर युद्ध संकटमें छोड सकता है। उसके सेनापतिको बेटी दे कर मिला सकता है। सामन्तों को बडे बडे प्रान्त देकर बडे भाई के विरुद्ध खडा कर सकता है, बड़े भाईका राजच्युत कर उसका नामों निशान मिटा सकता है और लोभमें पड धर्माधर्म का विचार छोड सकता है, वह विल्हण पंण्डित जैसे कविओं कि दृष्टिमें अवश्य भातृ वात्सल्य हो सकता है। परन्तु हमारे ऐसे तुच्छ बुद्धिओंकी दृष्टिमें उसका भातृ वात्सल्य संसारमें अद्वितीय है। उसकी भ्रातृ वत्सलता पौराणिक युग भगवान राम के अनुज भरत और लक्ष्मण तथा ऐतिहासिक युगवाले शिशोदिया बंशी मोकल और भीमकी भातृ वत्सलताको पटतर करती है। यदि उसका देदीप्यमान उज्वल उपमान संसारके इतिहास में कहीं उपलब्ध है, तो वह मुगल साम्राट शाहजहांके पुत्र औरंगजेब का भ्रातृ प्रेम है।

पुनश्च यदि हम यह कहें कि विक्रमादित्य अपने से वर्ष ५८२ वर्ष पश्चात होनेवाले मुगल साम्राट शाहजहां के बन्धुघाती पुत्र औरंगजेबकी आत्मा था तो अत्युक्ति न होगी। क्योंकि दोनों

के चरित्र और नीति में अधिकांशतः समानता पाई जाती है। जिस प्रकार औरंगजेब अपने बडे और छोटे भाईओं का नाश कर अपने रक्त रंजित हाथों से दीन इस्लामकी रक्षा के लिये दिल्लीके सिंहासन पर बैठा था और पचास वर्ष राज्य किया था। और उसने अन्तिम समय अपने साम्राज्य को छिन्न भिन्न होता हुआ देख रक्त की आंशु बहाता अपने इहलीलाका संस्मरण किया था। उसी प्रकार विक्रमादित्य अपने बडे भाई सोमेश्वरको राज्यसे वंचित कर उसके रक्तसे अपने हाथोंको रंजित कर चौलुक्य सामाज्य के सिंहासन पर बैठा और ५० वर्ष राज्य कर अन्त में साम्राज्य भवनको शत्रुओंके आघात से भीरता हुआ देख अपनी आखों से रक्त की आंशु बहाता मरा था।

एवं जिस प्रकार औरंगजेबने बन्धु नाशजन्य पापाग्नि से मुगल साम्राज्यको भस्मात कर उसके मूल को नष्ट कर दिया था, और उसकी मृत्यु पश्चात मुगल साम्राज्य का एक प्रकार से अन्त हो कर नाम मात्र के साम्राट उसके वंशज रह गये थे। एवं कुछ दिनों अर्थात ५० - ६० वर्ष के बाद नाम मात्रका मुगल साम्राज्य भी नष्ट हुआ। अन्तमें अन्तिम बादशाह शाहआलमको अपने मकानमें बन्दी होना पडा था। उसी प्रकार विक्रमादित्यकी मुत्यु पश्चात ५ - ६० के भीतर ही बन्धु नाश जन्य पापाग्नि से दग्ध चौलुक्य साम्राज्य नष्टप्राय हुआ और उसके वृद्ध प्रपौत्र सोमेश्वरको अपने सामन्त का बन्दी हो कर अन्त में इधर उधर भटकते हुए चौलुक्य साम्राज्य सूर्य के साथ सदा के लिये अस्त होना पडा।

अन्ततोगत्वा जिस प्रकार दारा को राजच्युत करने के लिये औरंगजेबने सापरा (उजैन) युद्ध के पूर्व मुरादको शाहशाह दिल्ली बनानेका का प्रलोभन दे अपना सार्थी बनाया और दारा के परास्त होने पश्चात मुरादको बन्दी बना ग्वालियरके दुर्गमें स्थान दिया था, उसी प्रकार विक्रमादित्य जयसिंहको चौलुक्य साम्राज्य भावी युवराज मान अपना साथी बनाया। और जब सोमेश्वरको राज्यच्युत कर स्वयं गद्दीपर बैठा तो कुछ दिनोके पश्चात जयसिंहको चौलुक्यराज देने के स्थान में वनवासी प्रदेशके साथ ही उसके पिता और भ्राता सोमेश्वर के समय प्राप्त अन्यान्य प्रान्तों से भी वंचित किया।

मुराद और जयसिंह के चरित्र में इतनाही अन्तर है कि मुरादको मद्यप होने के कारण अनयासही बन्दी बनना पड़ा परन्तु जयसिंह वीर प्रकृति होने के कारण विक्रमके उद्देश्यको जानतेहीं आगे बढ उसके छक्के छुडा अन्तमें राज्यच्युत हुआ। जयसिंहका विक्रमसे छक्के छुडानेका परिचय बिल्हणके लेखमेही मिलता है। जयसिंहके सहस्त्र गुण शौर्य आदिको बिल्हणने अति तुच्छ बनाकर लिखा होगा। किन्तु सत्य छिपानेसे नहीं छिपता। बिल्हणके लेखका पर्यालोचन जयसिंहके शौर्यका दिग्दर्शन कराहीं देता है।

बिल्हणके उधृत अवतरणसे प्रकट होता हैकि विरनोलंब जयसिंहका अपने भ्राता विक्रम द्वारा पराभूत होकर वनवासी राज्यसे हाथ धोना पडा था। परन्तु यह ज्ञात नहीं हुआ कि विक्रमादित्य और विजयसिंहके पिता वीरनोलंब त्रयलोक्यमल्ल जयसिंहके मध्य कब युद्ध हुआ। परंतु इतना तो

अवश्य प्रकट होता कि विक्रमादित्यके करहाट पति शिल्हार राजाकी कन्या चंद्रलेखाके साथ विवाहके बहुत दिनों पश्चात उक्त युद्ध हुआ था। पुनश्च हमे ज्ञात है कि शक १००३ - ४ में विक्रम और जयसिंहके मध्य सौहार्द्य था। अतः १००३ - ४ शके पश्चात कुछ वर्ष बाद युद्ध यह हुआ होगा। और वहभी शक १०१३ - १४ के पूर्वही हुआ होगा क्योंकि प्रस्तुत प्रशस्ति से उक्त युद्ध का इस समयसे पूर्व होना स्पष्ट रूपेण पाया जाता है।

वनवासी के इतिहासके पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि शक १०१० में वनवासी प्रदेश पर कदम्ब वंशी महा सामन्त शान्तिवर्मा विक्रमादित्य के माण्डलिक रूपमें शासन करता था। शक १००३ - ४ और १००१ के मध्यकालीन समयमें वनवासी पर इसका अधिकार था। इसका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। अब यदि हम बिल्हणके कथनकि विक्रम करहाट पतिकी कन्यासे विवाह करने बाद बहुत दिनों सुखमें लिप्त था। अनन्तर जयसिंह के विप्लवका संवाद उसे मिला और दोनों भाइओंमें युद्ध हुआ प्रभृतिमेंसे उनके विवाहकी तिथि का नाम भी नहीं मिलता है। अतः हमे यहां परभी अनुमान और अप्रत्यक्ष प्रमाण से काम लेना पडेगा।

करहाटके शिलहार वंशके इतिहास पर्यालोचनसे प्रकट होता है कि भारसिंह नामक राजाको गुलवालादि पांच पुत्र और चन्द्रला नामक कन्या थी। उक्त भारसिंहका राज्यारोहण शक ९८० में हुआ था। और उसने २७ वर्ष राज कर शक १००७ में इह लीला समाप्त किया था। भारसिंहकी उक्त चंदला नामक कन्याका विवाह कल्याणके चौलुक्य पेमार्डिसे होनेका परिचय मिलता है। हमारी समझमें भारसिंहकी चन्द्ला देवी ही बिल्हणकी चन्द्रलेखा है। क्योंकि चंदला नाम लौकिक और चंद्रलेखा संस्कृत है। हमारी धारणाका कारण यह है कि उक्त चंदला का विवाह कल्याणके चौलुक्य पेमार्डि अर्थात विक्रमादित्यके साथ हुआ था। हमारे पाठकोंको भलि भांति ज्ञात है कि विक्रमादित्यके विविध विरुदोंमेंसे पेमार्डि एक है। चंद्रलाको चन्द्रलेखा माननेमें कणिका मात्रभी संदेहका अवकाश नही है।

अब केवल मात्र विचारना यह है कि चन्द्रकला विवाह भारसिंहने विक्रमादित्यके साथ कब किया था। बिल्हणके कथनसे पाया जाता है कि उसका विवाह करहाट पतिकी कन्याके साथ तब हुआ जब वह पूर्ण रूपेण वातापि कल्याणके चौलुक्य सिंहासन पर अधिष्ठित हो चुका था। एवं विक्रमके चन्द्लाके साथ विवाहके बहुत दिनो पश्चात उसका विरोध जयसिंहके साथ हुआ। अतः हम सकते हैं कि विक्रमका विवाह चन्द्लके साथ शक १००३ - ४ के पश्चात भारसिंहके अन्तिम समय लगभग शक १००७ के पूर्व हुआ था और उसके दो तीन वर्ष पश्चात अर्थात १००८ - ९ में किसी समय विक्रम और जयसिंहकी विरोध का सूत्रपात हुआ। हमारी इस धारणाका प्रबल कारण यह है कि जयसिंहके हाथसे बनवासी आदि प्रदेश निश्चित रूपसे शक १०१० में निकल गया था।

विक्रम और जयसिंहके युद्धका समय अवान्तर प्रमाण तथा आनुमानिक रित्या प्राप्त करने पश्चात इन दोनों के विग्रह का कारण का विचारना पडेगा। जयसिंह और विक्रमके अधिकृत प्रदेशों

पर दृष्टिपात करते ही प्रकट होता है कि जयसिंहके अधिकारमें चौलुक्य राज्यका अर्धांश था। ऐसी दशा में यदि जयसिंहको संतोष न हुआ और विक्रमके राज्य को हस्तगत करनेके षड्यंत्रमें प्रवृत हुआ था तो कहना पड़ेगा कि जयसिंह वास्तवमें कृतघ्नी और दोषभागी था। एवं विल्हणने उसका जो चरित्र चित्रण किया है वह उससे भी अधिक कृतघ्नी और दोषभागी तथा निन्दनीय था। परन्तु विक्रमकी सोमेश्वरके राज्य अपहरण करनेवाली नीतिपर दृष्टिपात करतेही वरबस मनोवृत्तिक प्रवाह श्रोत विपरीत दिशाके प्रति गमनोन्मुख होती है और सहसा मुखसे निकल पडता है कि विक्रम जयसिंहके विग्रहका कारण जयसिंहके मत्थे नहीं वरण विक्रमके मत्थे पडता है। हमारी यह धारणा केवल अनुमानकी भीत्ति पर ही अवलम्बित नहीं वरण इसको प्रबल और प्रत्यक्ष आधार है।

हमारे पाठकों को ज्ञात है कि चौलुक्य साम्राज्यका किशुवलाल प्रदेश जयसिंहके अधिकारमें था। और उसकी उपाधि युवराज थी। यद्यपि बाह्य दृष्ट्या जयसिंह और विक्रमके विग्रह पर इन दोनोंसे कुछभी प्रकाश नहीं पडता परन्तु अन्तर्दृष्टिपात करते ही इनके विग्रहके गुप्त रहस्यका उद्‌घाटन हो जाता है। जयसिंहके युवराज उपाधिने उसका चौलुक्य साम्राज्यका भावी उत्तराधिकारी होना प्रकट होता है। और उपाधि उसे विक्रमके राज्यारोहन समय प्राप्त हुई थी। अतः अनयासही कह सकते हैं कि शक ९९८ में विक्रमने जब जयसिंहको भावी उत्तराधिकारी स्विकार कर उसे चौलुक्य साम्राज्यके अन्य बहुत से प्रदेश दिया जो प्रायः समस्त राज्यका अर्धांश था। यहां तक कि विक्रमने वनवासी प्रदेशभी जयसिंहको दे दिया जो उसके अधिकार में शक ९९२ अर्थात ३४ वर्षसे था। इतनाही नहीं केशुवलाल प्रान्त जिसके अन्तगत चौलुक्य साम्राजका प्राणभूत स्थान पट्टडकाल था उसने जयसिंहको दिया। हमने पट्टडकालर स्थानको चौलुक्य साम्राज्य रूप शरीरका प्राण कहा है। अतः आशंका होती है कि हमारे पाठक आश्चर्य चकित हुए होंगे। इस लिये उनके आश्चर्यको शान्त करने के लिये निम्न भाग में पट्टडकालका महत्व प्रदर्शक विवरण देते हैं। आशा है उसके अवलोकन पश्चात वे हमसे अवश्य सहमत होगें।

पट्टडकाल नामक स्थान चौलुक्य राजधानी वातापिपुर (बादामी) से लगभग ८ - १० मील की दूरी पर पूर्वोत्तरमें मलप्रभा नामक नदीके उत्तर तट पर अवस्थित है। पट्टडकालका नामान्तर किशुवलाल है। वास्तवमें ग्रामका नाम किशुवलालही था और पट्टडकाल उसमें एक स्थान विशेष था। परन्तु पट्टडकालके महत्वने किशुवलालका नामान्तर रूप धारण किया और क्रमशः अन्तमें प्रधानता प्राप्त किया। किशुवलालके नामानुसार प्रदेशका नाम किशुवलाल पडा है। किशुवलालका शाब्दिक अर्थ "रतनोंका नगर" और पट्टडकालका "राज्याभिषेकका स्थान है।

प्रारंभसे लेकर विवेचनीय समय पर्यन्त चौलुक्य इतिहासका पर्यालोचन प्रकट करता है कि किशुवलाल नामक स्थानके पट्टडकालमें प्रत्येक राजा और युवराजका "पटबंध" राज्याभिषेक हुआ पर्व है। किशुवलाल प्रदेशको सदा युवराजके रहनेका गौरव प्राप्त था। इतना ही नहीं किशुवलाल

विषय के अन्तर्गत स्वयं राज्यधानी वातापिपुरी थी। हां पट्टडकाल किशुवलाल प्रदेशमें १२ से २२ पर्यन्त ग्रामोंका होना पाया जाता है। और प्रायः सभी ग्राम पट्टडकालके मन्दिर आदि में लगे हुए होते थे अतः आर्थिक दृष्टिसे किशुवलाल विषय कुछभी महत्व नहीं रखता था। परन्तु राजनैतिक दृष्टि से इसके अधिकारीके लिये समस्त चौलुक्य साम्राज्यके समान महत्व था।

किशुवलाल पट्टडकाल विषय और युवराज यह दोनोंको एकत्रित करतेही जयसिंह के युवराज पदका अर्थ दोनोंका स्पष्ट हो जाता है, एवं इन दोनोंका विक्रमका राज्यारोहन समय जयसिंह को देना स्पष्ट रूपेण प्रकट करता है कि उसने जयसिंह को अपने बाद चौलुक्य समाजका स्वामी स्वीकार किया था। अब यदि किशुवलाल विषयको जयसिंहके अधिकारसे हटानेका प्रयत्न किया जाय तो यह उसे भावी अधिकारसे वंचित करने समान है। जयसिंहका किशुवलाल प्रदेशसे वंचित होने की आशंकासे विक्षुब्ध होना अथवा हठाये जाने पर मरने मारनेको खड़ा हो जाना स्वाभाविक है। जयसिंह प्रचण्ड योद्धा था। उसने अपने शरीरका रक्त बहा विक्रमको गद्दी पर बैठा केशुवलाल प्रदेशके साथ युवराज पदको प्राप्त किया था एवं चौलुक्य राष्ट्र के वाराह लांछण को अपने पूर्वजों के समान रामेश्वरसे लेकर मध्य प्रदेशके जबलपुर पर्यन्त और दक्षिण गुजराथ के लाट प्रदेश पर्यन्त फहराया था। यदि कहा जाय कि जयसिंहने नर्मदाके दक्षिण तटसे रामेश्वर पर्यन्त भूभागको पुनः चौलुक्य साम्राज्यके अधिकारमें लाकर पुलकेशी प्रथम और द्वितीय के समान उसे गौरवपर पहुचाया था तो अत्युक्ति न होगी।

पुनश्च जयसिंहके हाथ सेना रहित नहीं हुए थे। उसकी नसोंके रक्त ठंडे नही पड़े थे जो वह कायरोंके समान अधिकार पर हस्ताक्षेप होते देख हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता। अतः हम कह सकते हैं कि विक्रमादित्यने जयसिंहके साथ प्रथम छेडछाड प्रारंभ किया था। और छेडछाडका श्री गणेश उसके संकेतसे उसके पुत्र जयकर्णने किया। एवं उक्त छेडछाड केशुवलाल प्रदेश पर हस्ताक्षेप था। अथवा संभव है कि जयकर्णने अपने अधिकारकी परिधिका स्पष्ट परिचय नहीं होनेसे केशुवलाल प्रदेशको अपने अधिकार भुक्त मान हस्ताक्षेप किया हो। अथवा यहभी संभव है कि उसने जयसिंहका भावी युवराज स्वीकृत होना अपने न्यायोचित (विक्रमका ज्येष्ठ पुत्र होनेके कारण) अधिकार (भावी युवराज पद) का अपहरण मान लिया हो और अपने पिताके राजा होने तथा अपने नये उमंगके बल छेडछाड किया हो। अब यदि हम जयसिंह के अधिकारों (केशुवलाल अथवा किसी अन्य विषय और युवराज पद) पर विक्रम के द्वारा हस्ताक्षेपका परिचय पा जायतो विक्रम और जयसिंह के विग्रहका यथार्थ कारण ही ज्ञात होने के साथ बिल्हणका भंडा फोर होते हुए युद्धका दायित्व विक्रमके गले चला जायेगा।

विक्रमादित्यको जयकर्ण और सोमेश्वर नामक दो पुत्र थे। इनमें जयकर्णका उल्लेख शक १००६ के लेखमें है। कथित शक १००६ प्रभव संवत्सरका लेख कोनुर नामक स्थानसे प्राप्त हुआ है। कोनुर ग्रामका प्राचीन नाम कोन्डनुरु है। इसका उल्लेख ताम्र शासनों और शिला प्रशस्तियों में कोन्डवार और कुन्डी नामसे किया गया है। कोनुर मालप्रभा नामक

नदीके तटपर बसा है । यह गोकाक नामक नगरसे ५ मील पश्चिमोत्तर तथा बेलगांव से गमना ३० मील उत्तरमें है । यह लेख बोम्बे रायल एसियाटिक सोसाइटी के जर्नल वोल्युम १० पृष्ठ २८७ में पाली संस्कृत और पुरातन कनाडी लेख संख्या ६३ के नामसे छपा है । इस लेखसे प्रकट होता है कि रट्टवंशी महा मण्डलेश्वर कान्ह द्वितीय उक्त वर्षमें विक्रमादित्यके पुत्र जयकर्ण के सामन्त रूपसे कुन्डी प्रदेशका शासन करता था ।

हमारे पाठकों को ज्ञात है की कुन्डी प्रदेश वीरनोलम्ब जयसिंहको अपने पिता आहवमल्ल सोमेश्वर से शक ९७६ में मिला था । अतः अब विचारना है कि जब उक्त प्रदेश जयसिंह को अपने पिता से मिला था तो वह विक्रमादित्य के पुत्र जयकर्णके अधिकारमें क्योंकर चला गया । क्या विक्रमने कुन्डी प्रदेश शक १००६ से पूर्व ही छीन लिया था । हमारी समझमें इन प्रश्नोंका उत्तर देने के पूर्व हमें कुन्डीके रट्टों के जिनकी राज्यधानी सुगन्धावती (सौदन्ती) थी इतिहासका पर्यालोचन करना होगा ।

सुगन्धवतीके रट्टों के इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रकट होता है कि इन्होंने लगभग ३५० वर्ष यहांपर शासन किया है । इनके शासनकी कथित अवधि तीन भागोंमें बटी है । प्रथम शक ७९६ से ८९५ पर्यन्त लगभग एकसौ वर्ष । द्वितीय शक ८९५ से १०९२ पर्यन्त लगभग १९ वर्ष तृतीयशक १०९२ से ११४७ पर्यन्त लगभग ५५ वर्ष है । प्रथम अवधिमें सुगन्धवती के रट्ट मान्य खेटके राष्ट्रकूटों के सामन्त और द्वितीय अवधि में चालुक्योंका राज्य छिन जाने बाद स्वतंत्र हो गये थे । इन्होंने लगभग ५५ वर्ष स्वातंत्र्य सुखका भोग किया अनन्तर देवगिरी के यादवों ने इनकी राज्यलक्ष्मी के अपहरणके साथही संसारसे इनका अस्तित्व मिटा दिया ।

हमारा संबंध सुगन्धावतीके द्वितीय अवधि से है । अतः अब विचारना है कि चौलुक्यों के साथ इनका किस प्रकारका सम्बन्ध रहा है । विवेचनीय काल शक १००६ पर्यन्त चौलुक्य वंशके किस राजा के समय कौन रट्ट सामन्त था । चौलुक्य और रट्ट वंशके इतिहासके पर्यालोचन से प्रकट होता है कि शक संवत ९०२ में चौलुक्य राज्यके उद्धारक तैलप द्वितीयका सामन्त रट्टवंशी शान्त और उसका वंशज कन्नड सामन्त था एवं इस समयके ६८ वर्ष पश्चात शक ९७० सर्वाधिकारी नामक संवत्सरमें रट्टवंशी पूर्व कथित शान्त के वंश आनकको चालुक्य राज आहवमल्ल सोमेश्वर प्रथमका सामन्त पाते है । इस समय से केवल ६ वर्ष बाद शक ९७६ जयनामक संवत्सरमें वीरनोलम्ब जयसिंहको कुन्डीकी जागीर अपने पितासे मिलती है और रट्टवंशी आनकको आहवमल्ल और जयसिंह पिता पुत्र दोनों का सामन्त पाते हैं । सुगंधावतीके प्रायः बिना तिथिके लेखसे जयसिंहके ज्येष्ठ भ्राता सोमेश्वर भुवनका सामन्त आनक को पाते हैं । सोमेश्वर भुवनैका राज्यकाल शक ९९० से ९९८ पर्यन्त है । पुनश्च शक १००८ में आनकके वंशज कान द्वितीय को विक्रमादित्यका सामन्त पाते है और अन्ततोगत्वा शक १००६ में रट्टवंशी कान द्वितीयके भाई कठ द्वितीयको चालुक्य विक्रमके पुत्र जयकर्णका सामन्त पाते हैं ।

अब विचारना है कि जब शक ९७६ में जयसिंहको अपने पितासे कुन्डी प्रदेशकी जागीर मिली थी तो उक्त प्रदेशको सोमेश्वर द्वितीयने शक ९९० में गद्दीपर बैठने पश्चात उससे (जयसिंहसे) कुन्डी प्रदेश छीन लिया था। यदि उसने कुन्डी प्रदेश छीना नहीं था तो कुन्डी के रट्ठ क्यों कर उसके सामन्त हुए। इस प्रश्नका उत्तर सोमेश्वर और जयसिंहके परस्पर संबंध दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है। हमारे पाठकों को ज्ञात है कि सोमेश्वर। गद्दीपर बैठतेही जयसिंहको कुछ प्रदेश शक ९९० में तथा जब उसने उसका साथ - विक्रमके विश्वासघात करने पर भी - नहीं छोडा और शत्रुओंके हाथसे उसकी रक्षाकी थी तो कुछ और प्रदेश दिया था। अन्ततोगत्वा शक ९९२ में पुनः उसने युद्धमें विजयी होनेपर अन्य प्रदेश दिया था। जयसिंहके लेखोंसे सोमेश्वरका व्यवहार अत्यन्त सौहार्द पूर्ण प्रकट होता है। जयसिंह सदा सोमेश्वरका दाहिना हाथ था। ऐसी दशामें सोमेश्वर जयसिंहकी जागीर छीन लेवे यह समझमें नहीं आता। यदि सोमेश्वर जयसिंहकी जागीर छीन लेता तो उन दोनोंमें सौहार्द नहीं रहता शत्रुता हो जाती। जयसिंहसे शत्रुता करना सोमेश्वरके बुतेकी बात नहीं थी। क्योंकि वह उसका रक्षा कवच था। अतः कथित लेखमें जो सुगंधावर्तीके रट्ठों को सोमेश्वरका सामन्त कहा है उसका केवल मात्र तात्पर्य यह है कि उसे चौलुक्य राज सिंहासनका भोक्ता होने के कारण अधिपति रूपसे स्वीकार किया है। क्योंकि जयसिंह यद्यपि महाराजाधिराज पदवी प्राप्त किये था तथापि स्वतंत्र नहीं वरण अपने ज्येष्ठ बन्धु सोमेश्वरके आधीन था। क्योंकि उसने अपने शक ९९३ और ९९५ के लेखों में सोमेश्वरको अधिराजा और चौलुक्य साम्राज्यका भोक्ता स्वीकार किया है।

उधृत विवरणसे स्पष्ट है कि सोमेश्वर द्वितीय के राज्य कालमें जयसिंहके अधिकार से कुन्डी प्रदेश नहीं निकला था। अब विचारना है कि शक १००४ में कुन्डीके रट्ठों को जो विक्रमका सामन्त कहा है तो क्या विक्रमने उस समय जयसिंहसे कुन्डी प्रदेश छीन लिया था। हमारे पाठको को ज्ञात है कि जब विक्रम अपने बडेभाई सोमेश्वरको गद्दीसे उतार शक ९९८ में स्वयं गद्दीपर बैठा तो उसने जयसिंहको अनेक प्रान्त दिया। यहां तक कि उसे साम्राज्यका भावी युवराज स्वीकार कर युवराज पदबंधकी जागीर पट्टकाल भी दिया और साथही चौलुक्य साम्राज्यका हृदय स्थान वनवासी प्रदेश जो स्वयं उसे अपने पितासे जागीरमें मिली थी और जिसे सोमेश्वर गद्दीपर बैठाते समय स्वीकार किया था। उस प्रदेशको भी जयसिंहको दिया इतनाही नहीं हम देखते हैं कि जयसिंहके शक १००३-१००४ के लेखों में उसे "विक्रमाभरण" विक्रमका रक्षक और 'अन्नन अङ्कार' अपने भाईका सिंह तथा 'चौलुक्य भरण' और 'चुडामणी' विरुद धारण कर विक्रमके शत्रुओं का नाश करने वाला लिखा है। ऐसी दशामें विक्रम क्यों कर उससे उसकी जागीर छीन असंतुष्ट कर सकता है अतः कुन्डीके रट्ठो को अपने लिये विक्रम का सामन्त कहनेका केवल मात्र अभिप्राय यह है कि उसे अधिराजा रूपमें स्वीकार किया है। जयसिंहने भी विक्रमको अपना अधिराज अपने कथित लेखों में स्वीकार किया है।

अन्ततोगत्वा हम शक १००९ में रट्ठों को विक्रम के पुत्र जयकर्ण का सामन्त रूपमें पाते हैं। इससे स्पष्ट है कि इस समय जयसिंहका अधिकार कुन्डी प्रदेशसे जाता रहा है क्यों

कि एकही समय कुन्डी प्रदेश जयसिंह और जयकर्ण दोनोंकी जागीरमें नहीं हो सकता। अब विचार । है कि विक्रमने क्यों कुन्डी प्रदेश जयसिंहसे लेकर अपने पुत्र जयकर्णको दिया। इस समय के बादही शक १०१० में विक्रमके सामन्त कदमबंशी शान्तिवर्मा को जयसिंहके वनवासी प्रदेश पर सामन्त रूपसे शासन करते पाते है। निश्चित है कि शक १०१४ के पूर्वही विक्रम और जयसिंहका मन मोटाव हो गया था। एवं वे दोनो लड गये थे। जयसिंह पराभूत होकर जंगलो में भागा था। विना पराभव उसके अधिकारका मुख्य प्रदेश वनवासी जिसमें उसकी राज्यधानी बलीपुरथी क्योंकर विक्रमके सामन्त कदमवंशी शान्तके अधिकारमें जाता। अतः हमे विक्रम और जयसिंहके मन मोटाव - विग्रह आदिको शक १००४ और १००६ के मध्य अनुसंधान करना पडेगा।

हमारी समझमें शक १००४ में विक्रमका साम्राज्य जब जयसिंहके भुजबल प्रताप शौर्य से प्रदिप्त होकर कन्या कुमारी से लेकर चेदी देश और पश्चिममें लाट पर्यन्त शत्रुहीन हो चुका तो उसने अपने संबंधी गोवा के कदमवंशी सामन्त जयकेशी के मतसे जयसिंहको नष्ठ करनेमें प्रवृत्त हुआ और सर्व प्रथम उसने अपने पुत्र जयकर्णको कुन्डी विषयका जागीर दिया। कुन्डी विषय पट्टडकाल विषयके समीप था। अब हमे केशुवलाल - पट्टडकाल और कुन्डी आदि प्रदेशों का भौगोलिक अवस्थानका परिचय प्राप्त करना होगा। वनवासीके उत्तरमें पट्टडकाल है। पट्टडकाल और वनवासी के मध्यमें कुन्डी प्रदेश है। कुन्डी प्रदेश जयकर्णको देकर विक्रमने छेड छाड किया। जयसिंहका कुन्डी जाने नहीं नहीं वरण उससे और उत्तरवर्ती पट्टडकाल तथा अपने भावी युवराज पदकी रक्षाकी चिन्ता पड़ी होगी। अतः वह, लडने मरनेको तैयार हो गया होगा। जयसिंह और विक्रमकी विग्रहके वास्तविक तिथि प्राप्त करने के लिये हमे विशेष रूपसे प्रयत्न करना होगा। अतः निम्नभागमें विचार करते हैं।

शक १००६ के बाद ही शक १०१० में जयसिंहके अधिकृत वनवासी प्रदेश पर विक्रम के सामन्त कदमवंशी शान्तिवर्माको पाते है। अतः हम कह सकते हैं कि विक्रमादित्यने जयसिंह के साथ प्रथम छेडछाड प्रारंभ किया था। और छेडछाड का श्री गणेश उसके संकेतसे जयकर्ण ने किया। एवं उक्त छेडछाड केशुवलाल प्रदेश पर हस्ताक्षेप किया था अथवा संभव है कि परिधिका स्पष्ट परिचय नहीं होनेसे केशुवलाल प्रदेशको अपने अधिकार मुक्त मान उसने हस्ताक्षेप किया हो। अथवा यह भी संभव है कि उसने जयसिंहका भावी युवराज स्वीकृत होना अपने न्यायोचित (विक्रमका ज्येष्ट पुत्र होनेका कारण) अधिकार (भावी युवराज पद) का अपहरण मान लिया और अपने पिता के राजा होने तथा अपने नये उमंगके बल पर जयसिंहके साथ छेडछाड किया हो। चाहे जो को विक्रम और जयसिंहके विग्रह का कारण जयकर्ण को कुन्डी आदि जागीर दिया जाना है। अतः इस विग्रह का दोष जयसिंह पर नहीं वरण विक्रम पर है।

बिल्हण ने लिखा है कि जयसिंह वनवासी से चलकर कृष्णा नदी पर्यन्त आकर विक्रम के राज्य के गांवों को लुटने लगा। परन्तु यह नहीं बताया है कि जयसिंह वनवासी से

चलकर सर्व प्रथम कृष्णातटवर्ती स्थानो पर क्यों रुक गया। और वहां हीं विक्रमके राज्यके गामको लुटने लगा। हमारे पाठकोंको मालूम होगा कि हम उपर प्रकट कर चूके हैं कि चौलुक्य साम्राज्यका प्राय अ शेश जयसिंहके अधिकारमें था। कुन्डी और उसके समीपवाला किशुवल्लाल पट्टडकाल प्रदेशभी उसके अधिकार में था। एवं किशुवलालका प्रधान स्थान पट्टडकाल था। पुनश्च पट्टडकाल मालप्रभा नदीके उत्तर तट पर अवस्थित था। अब यदि पट्टडकाल किशुवलाल प्रदेश और कृष्णा नदीके भौगोलिक अवस्थान का परिचय प्राप्त कर सके तो हमे विक्रम और जयसिंह के राज्यकी सीमाका परिचय प्राप्त होने और कृष्णा तट पर उसके आनेका कारण प्रकट हो जावेगा।

हम बता चुके हैं कि पट्टडकाल बादामि से ८-१० मील पूर्वोत्तरमें है और बादामी वर्तमान वीजापुर नामक जिलामें है। कृष्णा नदी विजापुर जिला में पूर्वसे पश्चिम प्रवाहित है और विजापुर जिलाके प्रसिद्ध स्थान गलगलीसे लगभग पांच मील उत्तर गेहनुर नामक स्थान के पास जिलामे प्रवेश करती है। एवं मालप्रभा संगम स्थानके संगमेश्वर से दक्षिण धानुर नामक स्थानसे लगभग आठ मील पूर्व पर्यन्त ५४ मील वह कर पश्चात निजाम राज्यमें प्रवेश करती है। अतः पट्टडकाल से कृष्णा अधिक से अधिक १७-१८ मीलकी दूरी पर है। अब हमारे पाठक समझ चुके होंगे कि जयसिंह वननासी से चल कृष्णा तट पर क्यों उपस्थित हुआ। इसका अर्थ स्पष्ट है। जय-सिंह वनवासी से चलकर बादामि अथवा पट्टडकाल में डट गया होगा। और पट्टडकाल पर अपने अधिकारको सुरक्षित रखने के लिए मरने मारने के लिए कटिबध्य हो गया होगा। एवं वहां पर अपनी सेनाको एकत्रित किए होगा। उधर जयकर्ण पट्टडकाल को अपने अधिकार में करने के लिए तुला बैठा होगा।

बिल्हण ने जो लिखा है कि जयसिंह के सेना संग्रह का सम्वाद पा कर विक्रमनें दो बार अपने राज्यदूतको उसके पास भेजा। इसका अर्थ है कि वह जयसिंहको पटडकाल प्रदेश जयकर्ण को देने के लिए समझाना चाहता था परन्तु जयसिंह अपने भावी अधिकार के विचारसे पट्टडकाल किसीभी अवस्था में देनेको तैयार न हुआ होगा। उधर जयकर्ण बलपूर्वक पट्टडकाल पर अधिकार करना चाहता होगा। अतः दोनोंकी सेनामें पट्टडकालकी सीमापर बहने वाली कृष्णा के तट पर छेड़छाड़ हुआ होगा। जिसमें कदाचित जयकर्णको अपने प्राणोंसे हाथ धोना पडा होगा क्योंकि शक १००६ के पश्चात जयकर्णका कहीं भी उल्लेख नहीं पाया जाता। और जयसिंह सेनासहित कृष्णा पारकर उसके तटवर्ती प्रदेशोंपर अधिकार जमा बैठा होगा पुनश्च सदाके लिये इस विग्रहको शान्त करने के विचार से विक्रमादित्यको भी गद्दी पर से उतारने के लिये कल्याण के प्रति अग्रसर हुआ होगा। विक्रमको अन्तमें जयसिंहके साथ अपने राज्य और प्राण दोनोंकी रक्षाके लिये स्वयं आगे बढकर लड़ना पडा होगा। उक्त युद्धमें भी प्रथम जयसिंह विजयी हुआ था। परन्तु दुर्भाग्यसे अन्त में उसे हारना पड़ा।

उपरोक्त-विवरणसे विक्रम और जयसिंहके विग्रहका कारण युद्धका स्थान और तिथि एवं परिणाम ज्ञात हो गया। अब केवल मात्र विचारना रह गया है कि युद्धके पश्चात जयसिंह जब

जंगलों में चला गया (जिसके सम्बन्ध में प्रस्तुत लेख और कवि बिल्हण दोनों सहमत हैं) तो उसने किस दिशा के जंगलमें आश्रय लिया। प्रस्तुत लेख संकेत करता है कि जयसिंह अपने परिवारके साथ सम्भवतः उत्तर कोंकण और लाट देश के प्रति गमनोन्मुख हुआ था। एवं उसके इन प्रदेशों के प्रति गमनोन्मुख होनेकी संभावना विशेष है। इस संभावना का समर्थन जयसिंह के शक १००३-४ वाले द्वितीय लेखके पर्यालोचनसे स्पष्टतया हो जाता है। तथापि इस प्रश्नका समाधान करनेके लिये हमे दक्षिण भारतके तत्कालीन परिवर्तन और विशेष करके इतिहास और एतिहासिक स्थानों तथा भौगोलिक अवस्थानका आश्रय लेना होगा। अतः हम सर्व प्रथम भौगोलिक अवस्थानका विचार करते हैं। क्योंकि इसके ज्ञान प्राप्त करने पश्चात प्रथम तथा उत्तर भावी प्रश्न के विवेचनको समझने में सहायता मिलेगी।

जयसिंहकी राज्यधानी, वनवासी द्वाशश सहस्रके अन्तर्गत वर्लापुर नामक नगरमें थी और वनवासीमें भी उसके रहने का परिचय मिलता है। वनवासीका भौगोलिक अवस्थान ईम्पीरियल गेजेटीअर के मान चित्रमें १४-१५ और ७५-७६ के मध्य में है, गोकर्णका अवस्थान १५-१६ और ७४-७५ के मध्य वनवासी से पश्चिमोत्तर में लगभग १५० मील है। बादामी और केशुवलाल पट्टडकाल का अवस्थान १६-१७ और ७६-८६ के मध्य वनवासी से कुछ पूर्वोत्तर में हटा हुआ लगभग २०० मील और ठीक पूर्वोत्तर कोने में २३५-४० मील है। कोल्हापुर १६-१७ और ७३-७४ के मध्य और गोआ लगभग २०० मील वनवासी पश्चिमसे कुछ हटा हुआ उतरमें लगभग ३७५-८० मील तथा वातापि से पूर्व उतर कोने मे लगभग २५० मील है। करहाट १७-१८ और ७३-८४ के मध्य बादामी से लगभग ३५० मील उत्तर कुछ पूर्वको हटा हुआ है।

उधृत भौगोलिक अवस्थान से वनवासी आदि प्रदेशों का अव स्थान हमें विदित हो गया। अब यदि हम विक्रम और जयसिंह के शत्रुओं का ज्ञान प्राप्त कर सके तो जयसिंह के पराभव का और वनवासी से आकर जंगलों में भागने का कारण जान सकते है। हमारे पाठकों को ज्ञात है कि गोकर्ण का कदम्बवंशी जयकर्ण विक्रमादित्य का जामात्र और परम मित्र था। एवं कराड का शिलाहार राजवंश की कन्या का विवाह विक्रमके साथ हुआ था। पुनश्च कोल्हापुर और कराड दोनों राजवंश अभिन्न थे। दूसरे तरफ जयसिंहका परं शत्रु और प्रतिद्वंदी जयकेशी था। और जयसिंह ने अपने लाट डाहल और कोकण विजय के समय कापर्दि द्वीप (थाना) के शिल्हार राजा को गद्दी से उतार शिल्हारों को अपना शत्रु बना चुका था।

बिल्हण के कथनानुसार विक्रम जयसिंह के कृष्णा तटपर आकर आक्रमण करने परभी चुप चाप बैठा। जब वह कृष्णा के आगे बढ़ा तो वह अपनी सेना के साथ आकर युद्धमें डट गया, हमारे पाठकों में से यदि किसीको यौद्धिक दाव पेचका कुछभी ज्ञान होगा तो वे तुरतही विक्रम के चालों को समझ जावेगें। उसके चुप रहेने का कारण यह है कि वह जयसिंहको अपने आप आगे बढ़ आने देना चाहता था। और गुप्त रूपसे अपने सम्बन्धिओंको पीछेसे आकर उसका सम्बन्ध अपनी राज्यधानी वनवासी विच्छेद करा उसे दो सेनाओंके मध्य नहीं नहीं चार सेनाओंके

मध्य घेरना चाहता था। क्योंकि वातापि से आगे बढ़नेही जयासिंहके पृष्ठ प्रदेश पर गोकर्णपति जयकेशी वामभागपर कोल्हापुर और कराड के शिलहार और सामंत विक्रमकी सेना एवं दक्षिण भागपर संभवतः विक्रम के किसी अन्य सामन्तकी सेना अडी होगी।

पुनश्च हमारे पाठकों को ज्ञात है कि शक १०१० में वनवासी कदम्बवंशी शान्तिवर्मा के अधिकारमें था। यदि कदम्ब वंश के विशेषका परिचय पा जाय तो अनयासही उसके वनवासी पर अधिकार करनेका रहस्य प्रकट हो जावेगा। हमारे पाठकों को ज्ञात है कि कदम्बवंशका वनवासी के साथ बहुत पुराना सम्बन्ध है। यहां तक की इनका विरुद वे जहां कहीं भी भाग्य विडंवना बस गये वहां पर "वनवासी पुराधीश्वर" रहा। गोकर्णपति जयकेशी और धारवार जिला के पुनुगाल (होगले) के कदम्बों का विरुद भी "वनवासी पुराधीश्वर" था।

पुनुगाल के कदम्बवंश के इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे प्रकट होता है कि पुनुगालके कदम्बों के अधिकार में वनवासी का शासन जयसिंह द्वितीय के समय से चला आता था। जयसिंहका सामान्त मयूरवर्मा द्वितीय और चामुण्डराय थे। सोमेश्वर प्रथम के समय उसकी रानी मयलाल देवी के सामान्त रूपसे हरिकेशरी वर्मा वनवासीका शासन करता था। सोमेश्वर द्वितीय के समय कीर्तिवर्मा द्वितीय सामान्त रूपसे वनवासीका शासक था। परन्तु विक्रमके समय जयसिंहको वनवासीका राज्य मिला तो उसने कदम्बों के हाथसे सामान्त अधिकार छीनकर बलदेवको दिया। अतः पुनुगाल के कदम्बों का जयसिंहका विरोधी होना सम्भवतः है।

जयसिंह के बाद शान्तिवर्मा को पुनः हम शक १०१० में वनवासी का सामान्त पाते हैं। शान्तिवर्माके अपने लेखों से प्रकट है कि वह पुनुगाल के कदम्ब वंशका था। और कीर्तिवर्माका सगा चाचा था। एवं उसके सन्तान हीन मरने पर पुनुगाल के कदम्ब सिंहासन पर बैठा। शान्ति वर्मा विक्रमका सामन्त था। एवं उसका राज्य वनवासी के समीप था। और एक प्रकारसे वन वास और वातापि के मध्य पड़ता था। अब पाठक समझ सकते हैं कि जयसिंह के वनवासी छोड़ कर वातापि आने और युद्धमें पराजय होने अथवा पूर्वही शान्तिवर्मा कितनी आसानी के साथ वनवासीको अधिकृत कर सकता है। क्योंकि वनवासी छीन जाने का पुनुगाल के कदम्बों को हृदयमें दुःख होगा इसका अनुमान करना कोई कठिन बात नहीं है। वे सदा वनवासी पर अधिकार करने के लिये सुअवसरकी अपेक्षा में बैठे होंगे। विक्रम और जयसिंह के विग्रह समान सुअवसर उन्हें फिर कहां प्राप्त हो सकता था। अतः इस अवसर से लाभ उठाकर उन्होंने वनवासी पर अधिकार कर लिया होगा।

उधृत विवरण से स्पष्ट है कि युद्धमें पराभूत होने पश्चात जयसिंह को अपने राज्य वनवासी में आनेका मार्ग का प्रतिरोध हो चुका था। इतनाही नहीं उधर जाना क्या जाने के लिये प्रयत्न करनाभी शत्रुरूपी कालके गालमें पड़ना था। अतः जयासिंहके लिए पराजयके पश्चात जंगलमें या विक्रम के शत्रुओं अथवा अपने किसी मित्रके आश्रम में जाने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग न था। अब विचारना है कि संभवतः उसे किस दिशासे सहाय प्राप्त करनेकी सम्भावना थी

हमारे पाठकों को ज्ञात है कि विक्रमादित्यका वेंगी मंण्डलके (पूर्वीय) चौलुक्यों के साथ वैमनस्य था। सोमेश्वर द्वितीयने भी वेंगी के चौलुक्य राज राजेन्द्र (बिल्हण के राजी) के साथ मैत्री सम्बंध स्थापित किया था। एवं जब विक्रम राजेन्द्र पर आक्रमण करने गया तो सोमेश्वरने विक्रम की सेना पर पृष्ठ प्रदेशसे आक्रमण किया था। विक्रम और राजेन्द्रके इस विग्रहका कारण राजेन्द्रका काञ्जीवरं के चौल राजकुमार अपने ममेरे भाई और विक्रम के साले को राजगद्दी से उतार चौल देशके राज्यको अपने राज्य में मिलाना था। विक्रम प्रथम राजेन्द्रको कांची से हटाने में समर्थ हुआ था। किन्तु राजेन्द्रने अन्त में चौल राज्यको अपने अधिकार में लाने में समर्थ हुआ। अतः विक्रम और राजेन्द्र में वैमनस्य अग्नि के अस्तित्वका होना स्वभाविक है। अब यदि हम यह ज्ञान प्राप्त कर सके कि विक्रम और जयसिंहके युद्ध समय वेंगी चौल साम्राज्यपर कौन अवस्थित था। और यदि हम जान सके कि उस समय वेंगी चौलका राजा राजेन्द्र था। तो जयसिंहका उसके पास आश्रय प्राप्त करने के लिये जाना संभव हो सकता है। वेंगी चौल की राजगद्दी पर राजेन्द्रका राज्याभिषेक शक संवत ६८५ में हुआ था। और उसका राज्य काल शक १०.४ पर्यन्त ५० वर्ष है। अतः विक्रम और जयसिंहके युद्धकाल शक १००८ में राजेन्द्र वेंगी चौल संयुक्त राज्यका स्वामी और विक्रमका महा कट्टर शत्रु था।

हमारी धारणा केवल अनुमानकी पोच भीत्ति पर ही अवलम्बित नहीं है। वरण उसके आधारका आभास बिल्हणके कथन "द्राविडके राजाके साथ मैत्री स्थापित करनेका विचार होरहाहै" में मिलता है। यद्यपि बिल्हणने द्राविडके राजाका नाम नहीं बताया है तथापि बिल्हण कथित द्रविड राजा राजेन्द्र के होनेमें कणिका मात्रभी संदेह नहीं क्योंकि राजेन्द्रका अधिकार द्राविड देशके पांचों भागों पर शक संवत ६६४-६५ में हो गया था। अतः हम कह सकते हैं कि जयसिंह युद्धमें पराजित होने पश्चात संभवतः राजेन्द्र की राज्यधानी कांचीपुरी के तरफ जंगली मार्ग से अग्रसर हुआ।

विक्रम और जयसिंहके युद्धस्थलके समीपमें ही राजेन्द्र के वेंगी चौल राजकी सीमा लगी थी। जहां पर कृष्णा उपत्यका होकर जाना अत्यंत सुगम था। पुनश्च राजेन्द्र के राज्य में जाने के अतिरिक्त जयसिंह के लिये दूसरा मार्ग भी नहीं था। जहां पहुंचते ही विक्रम के आक्रमण की कुछ भी संभावना न थी। हां इस संभावना के प्रतिकूल जयसिंह के पुत्र विजय का प्रस्तुत लेख किसी अंशमें पड़ता है। क्योंकि इस लेखसे जयसिंह के वेंगी चौल साम्राज्य में आश्रय प्राप्त करने का कुछ भी आभास नहीं मिलता। इस लेखमें स्पष्ट रूपेण लिखा है कि "जयसिंह जब जंगलों में पाण्डवों के समान कालक्षेप कर रहा था तो, उसके पुत्र विजयसिंह ने अपने पैतृव्य के राज का अतिक्रमण कर अपने बाहुबलसे नवीन भूभाग अधिकृत कर मंगलपुरी में वाराह लाञ्छण को स्थापित किया"।

हां ठीक है ? परन्तु इस उक्ति से यह भी सिद्ध नहीं होता कि जयसिंह ने पराजित होने पश्चात वेंगी साम्राज्य में आश्रय नहीं लिया था। हमारी समझमें युद्धमें पराजित मनुष्य को

सबसे प्रथम सुरक्षित आश्रय प्राप्त करने की इच्छा होती है। और वह अपने उस निश्चित सुरक्षित अवस्थान में जानेका प्रयत्न करता है। प्रस्तुत लेखसे यह सिद्ध है कि मंगलपुरी ताप्ती नदीके समीपमें थी। युद्ध स्थल से मंगलपुरी सीधे उत्तर पश्चिम दिशा में अवस्थित है। और लगभग २५० मील है। यदि युद्धस्थलसे सीधे मंगलपुरी के तरफ देखा जाय तो लगभग आधा मार्ग विक्रम के अपने राज्य होकर और चतुर्थांश भाग उसके श्वसुर करहाटके शिल्हारोंके राज्य होकर पडता था और शेष मार्ग जयसिंह के मित्र थाणा के शिल्हारोंके राज्यान्तर्गत था। अतः लगभग १६० मील मार्ग जयसिंहके शत्रुओं से भरा हुआ था। हमारी समझमें नहीं आता कि भागनेवाला व्यक्ति अथवा उसका कोई संबंधी इस प्रकार शत्रु परिपूर्ण मार्ग से आश्रय पाने के लिये जा सकता है। भागनेवालों को चाहे कुछ चक्कर लगाकर जाना पडे परन्तु वह सीधे मार्गसे कभी न जायगा।

हम ऊपर बता चुके हैं कि वेंगीका साम्राज्य युद्धस्थल से समीप था वहां जाते . जयसिंह शत्रुके आतंगसे विमुक्त हो सकता था। और वह अथवा उसका पुत्र वेंगी राज्य होकर विक्रमके राज्यके उत्तरीय सीमाका अतिक्रमण करते हुए उक्त मंगलपुरी पहुंच सकते थे। अतः हमारी समझ में जयसिंहका पुत्र विजयसिंह वेंगी साम्राज्य होकर मंगलपुरी के प्रति अग्रसर हुआ होगा। संभवतः युद्ध से भागते हुए पिता पुत्रका साथ छूट गया होगा। और जयसिंह वेंगी साम्राज्यमें आश्रय पाशान्तिलाभ करता होगा उस समय उसका नवयुवक पुत्र विक्रमके राज्यकी सीमाका अतिक्रमण करते हुए मंगलपुरी प्रदेशमें पहुंच गया होगा। क्योंकि उक्त जयसिंहके लाट उत्तर कोकण और दाहल विजयके पश्चात एक प्रकारसे उसके अधिकार मुक्त और चौलुक्य साम्राज्यके अन्तर्गत था। यही कारण है कि विजयसिंह अनायासही उक्त प्रदेश पर अधिकार कर सका था।

हमारी समझमें प्रस्तुत प्रशस्तिका सांगोपांग विवेचन हो चुका। अब यदि कुछ शेष रह गया है तो वह प्रशस्ति कथित प्रदत्तग्राम आदिका अवस्थान विचार करना मात्र है। अतः कथित ग्राम आदिका विचार करते हैं। विजयसिंहने विजयपुर में रहते समय शासन पत्र जारी किया था। दान देते समय उसने ताप्ती स्नान किया था। प्रदत्तग्राम वामनवलीकी पूर्व और दक्षिण सीमा पर ताप्ती नदी है।

अतः विजयसिंहके सह्याद्रि मण्डलवर्ती अधिकृत प्रदेशके अवस्थानका निर्णयका विजयपुर मण्डल और वामनवली ग्राम है। इसके समीपमें ताप्ती बहती है। सह्याद्रि पर्वतमालाके उत्तरमें ताप्ती बहती है। और खंभात की खाडी में जाकर गिरती है। एवं सह्याद्रि से पूर्णा नामक नदी निकलती है और वह भी तापती से लगभग २५ मील दक्षिण खाडीसे मिलती है। पूर्णा और तापी के मध्य बरोदा राज्य के नवसारी प्रान्त के व्यारा नामक तालुका में पूर्णा तटपर मंगलीआ नामक एक ग्राम है। एवं इसी प्रान्त के सोनगढ़ तालुका में मंगलदेव नामक पुराना दुर्ग है।

हमारी समझमें शासन पत्र कथित मंगलपुरी सोनगढ़ तालुका वाला मंगलदेव है पुनश्च मंगलदेव से ठीक नाक के सीधे उत्तरमें तापी तटपर बाजर नामक ग्राम सोनगढ़ तालुका में है। यह प्रदेश घोर जंगल में है। यहांपर भी एक पुराणा दुर्ग है। अनेक मंदिर आदि के अवशेष यहांपर पाये जाते हैं। दुर्ग के पास नदी तटपर एक राजा की मूर्ति घोडे पर बनाई गई है। राजा के पीछे रानी बैठी हैं। एवं अन्य कई पुरानी मूर्तिओं के अवशेष पाये जाते हैं। हमारी समझमें शासन पत्र कथित विजयपुरी यहीं है। क्योंकि प्रथम तटस्थान तापी तटपर है। द्वितीय इस से कुछ दूरीपर परघट नामक दुर्ग है। जो पार्वत्यका अपभ्रंश है। पुनश्च यहां से लगभग दक्षिण में १० मील की दूरीपर बावली नामक ग्राम है जो हमारी समझमें शासन पत्र कथित वासरावली का रूपान्तर है क्योंकि इस बावली के दक्षिण और पूर्व में ताप्ती बहती है। एवं इसके पश्चिम खांडवन नामक ग्राम है। जो शासन पत्र कथित खांडव वनकी झलक दिखाता है। अत: हम निःशंक होकर कह सकते है कि विजयसिंहने अपने पितृव्य के राज्यका अतिक्रमण कर संघाद्रि पर्वत के इसी अंचलको अधिकृत किया था।

इससे निर्भ्रान्त रूपेण सिद्ध हुआ कि वातापि कल्याण राज्यके वादी संघाद्रि मण्डलका प्रदेश विजयसिंहने अधिकृत किया था। अत: शासन पत्रका यह कथन पूर्ण रूपेण स्वयं सिद्ध हुआ। परंतु प्रश्न उपस्थित होता है कि लाटवालो ने क्योंकर अधिकृत करने दिया। हम उपर बता चुके है कि लाट और पाटनका वंशागत विग्रह था। और कर्णदेव ने विक्रम ११३१ के आसपास लाट प्रदेशका नवसागरी विभाग अपने अधिकारमें कर लिया था। इसे प्रकट होता है कि लाटवालोंकी शक्ति इस समय बहुत क्षीण होगई थी और उससे लाभ उठाकर विजयने दुर्गम पार्वत्य प्रदेशको अनायास ही अधिकार कर बैठा।

हमारी समझ से शासनपत्र कथित बातों का पूर्ण विवेचन हो चुका और उनकी प्रमाणिकता निर्भ्रान्त रूपेण सिद्ध हो चुकी। एवं विजयका संबन्ध वातापि के चौलुक्य वंश के साथ है। उसका पिता वातापि पति विक्रमादित्यका छोटाभाई था। उसको उससे वनवासीका राज्य मिला था। परन्तु विग्रह करने के कारण छिन गया था। इन्हीं सब घटनाओं और विजय के राज्य प्राप्त करनेका वर्णन संक्षेप रूपसे शासन पत्र में किया गया है।

मंगलपुर वासन्तपुरपति चौलुक्यराज

श्री वीरसिंहदेव का शासन पत्र ।

ॐ स्वस्ति । नमो भगवते आदि देवाय वाराह विग्रह रूपिण श्रीमतां सोम प्रसूतानां जगद्विश्रुतानां मानव्यसगोत्राणां हारिति पुत्राणां चौलुक्यानां सप्त मातृका परिवर्धितानां कार्तिकेय परिरक्षितान चौलुक्याना मान्वये स्वभुजबलोपार्जित सम्राट पदानां महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सह्याद्रिनाथ केसरी विक्रम श्री विजयसिंह देव स्तत्पादानुध्यात् तत्पुत्रो महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री धवलदेव स्तत्पादानुध्यात् तत्पुत्रो महा सामन्त महाराजा श्री वासन्तदेव स्तत्पादानुध्यात् तत्पुत्रो सामन्तराज श्री रामदेव स्तत्पादानुध्यात् तस्मात् पुत्रो महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री वीरसिंहदेव पाटन पट सन्दाम बद्धा स्ववंशराज्य लक्ष्मी निर्मुच्य स्वाङ्के संस्थाप्य वासन्तेऽधिराजः ।

तज्जन्य हर्षातिरेकोपलक्ष्ये भगवान भूत भावन भवानिपति कर्दमेश्वर सेवार तेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो गौतमस गोत्रेभ्यो पंच प्रवरेभ्यो आश्वलायन शाखाध्यायिभ्यो हरदत्त सोमदत्त हरिदत्त रुद्रदत्त विष्णुदत्तेभ्यो बालखिलय पुराख्याग्रामः वृक्षाराम तृण गोचर हिरण्य भोगभाग सर्वाय सहितः कुशजल सुवर्ण पूर्वकं कर्दमेश्वर हृदे स्नात्वा जगद्गुरुं भवानि पतिं समभ्यर्च्य मातापित्रोरात्मनश्च पुण्य यशोऽभि वृद्धि कांक्षयास्माभिः प्रदत्त स्तु विदित मस्तु वः

एषः ग्रामस्य सीमानः । पूर्वतोऽम्बिका ग्रामः । दक्षिणतः पूर्णा नदी पाश्चिमतः खट्वाङ्ग ग्रामः । उत्तरतः करंजवली ग्रामः । अस्य ग्रामस्य

प्रतिवासिभ्यः सदा सर्वदा एभ्यो ब्राह्मणेभ्यो सर्वाय व्यवच्छेदरहित देयं। न केनापि बाधा कर्तव्या न चेत् अस्मद्वंशजै रन्यवंशजै रागामी भूपालैः पालनीयं धर्मदायोऽयं। स्वदत्तां पर दत्तां वा वसुंधरां योऽव्यवच्छेत्ति स महापातकी भवति। योऽनुपालयति पुण्यभाक् भवति। उक्तं च।

षष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः
हर्ता चैवानुमन्ता च तान्येव नरके व्रजेत
बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभि सगरादिभिः।
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम्।
वाण त्रयं पंक्ति चैव भानौ संख्या समन्विते।
मार्गशीर्ष सिते पष्ट्यां शककारी नृप वत्सर।
आनन्दपुर वास्तव्य सूदेव द्विज सूनुना।
कृतंच्चैवात्म रामेण शासनं नृप चोदितः।
त्रिवेदी सोमदत्तश्च पुरोहितः द्विजाग्रणी।
रुद्रसिंहोऽपि सामन्त शासनस्य दूत कोद्वौ।
भूधरेणैव चोत्कीर्ण शासनं पट्टके द्वये।

वीरसिंह के शासन पत्र

का

छायानुवाद

कल्याण हो। भगवान आदि देव वाराह विग्रह रूप को नमस्कार हो। सोमवंशोद्भूत जगत्प्रसिद्ध मानव्य गोत्र हारिती पुत्र सप्त मात्रिका परिवर्धित कार्तिकेय रक्षित चौलुक्य वंशी अपने भुजबलसे साम्राटपद प्राप्त करने वाले महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक सह्याद्रिनाथ केसरी विक्रम वियजसिंह। श्री विजयसिंह देव के पादपद्मका अनुरागी उसका पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री धवलदेव के पादपद्मका अनुरागी पुत्रमहासामन्त महाराज श्री वसन्तदेव श्री वसन्तदेवका पादपद्मानुरागी पुत्र सामन्तराज श्रीरामदेव। श्री रामदेवके पादपद्माकमल का अनुरागी उनका भ्रात् पुत्र महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री वीरसिंह देवने पाटन के पटसंदाममें वंधी हुए अपने वंशकी राजलक्ष्मीको मुक्त कर अपनी अकशायनी बना वसन्तपरमें विराजमान हुए।

अपनी इस विजय कंदर्प उपलक्ष्य में भगवान भूत भावानि पति कर्दमेश्वर की सेवारत गौतम गोत्र पंच परवार आश्वलाइन शाख्याध्या यज्ञदत्त - सोमदत्त - हरिदत्त रुद्रदत्त और विष्णु दत्त प्रभृति पांच ब्राह्मणको वालखिल्यपुर नामक ग्राम वृक्षाराय तृणगोचर भोगभाग हिरण्यादि सर्व प्रकारके आय कर्दमेश्वर ह्रदमें स्नान और जगगुरु भवानी पतिकी आराधना करके अपनी माता और पिता तथा अपने पुण्य और यश वृद्धिके कांक्षासे हाथमें कुछ जल और सुवर्ण लेकर कथित ग्राम दान दिया

इस ग्राम सीमायें पूर्व दिशा—अम्बिका ग्राम
दक्षिण दिशा—पूर्णा नदी पश्चिम दिशा—खट्वांगीय
उत्तर दिशा—करंजावली

इस ग्रामके प्रतिवासिओं को उचित है कि ग्राम के कर को इन ब्राह्मणों को विना किसी व्यवधान के दिया करे। इसमें किसीको बाधा उपस्थित न करना चाहिए। हमारे वंश अथवा अन्य भावी राज्यवंश के नरेशोंको उचित है कि हमारे इस धर्मदायकी रक्षा करें। अपनी दी हुई अथवा दूसरेकी दी हुई वसुधाका जो अपहरण करता है वह महापातकी होता है। जो पालन करता है वह पुण्यभागी होता है।

कहाभी गया है:- भूमिदान देने वाला व्यक्ति साठ सहस्त्र वर्ष स्वर्गमें वास करता है; और इतनी ही अवधि पर्यन्त भूमिदानका अपहरण के अनुमति देनेवाला नर्कमें निवास करता है। बहुत से सगरादि राजाओंने पृथिवीकाभोग किया है परन्तु प्रदत्त भूमि जिसके राज्य में होती है उसको ही उसके दानका फल प्राप्त होता है। बाण नाम पांच - त्रय तीन - पक्षदो और भानु नाम एक अर्थात १२३५ संख्यावाले विक्रम संवत के साथ शुक्ला षष्ठिको आनन्दपुरके रहनेवाले भूदेव ब्राह्मणके वेटा आत्मारामने राजाकी आज्ञा से इस शासन पत्रो लिखा। ब्राह्मणों के अग्रणी पुरोहित सोमदत्त त्रिवेदी और रुद्रसिंह इस शासन पत्रके दूतक हैं।

भूधरने इसको दो ताम्र पटकों पर उत्कीर्न किया।

वीरसिंह के शासन पत्र

का

विवेचन

प्रस्तुत शासन पत्र मंगलपुरी के चौलुक्य राज वीरसिंह कृत दान का प्रमाण पत्र है। इस दान पत्र द्वारा वीरसिंह ने कर्दमेश्वर महादेवके सेवक गौतम गोत्र पंच परवर ऋग्वेद आश्वालयन शाखाध्यायी यज्ञदत्त-सोमदत्त-हरिदत्त-रुद्रदत्त और विष्णुदत्त नामक पांच ब्राह्मणोंको कर्दमेश्वर हृद में स्नान कर स्ववंश की राज्यलक्ष्मी को पाटन के बंधन से मुक्त कर वसंतपुर नामक ग्राम को अपनी राजधानी बनाने के प्रभृति आनन्दोत्सव उपलक्ष में वालखिल्यपुर नामक ग्राम दान दिया है।

वीरसिंह की वंशावली का प्रारंभ मंगलपुरी में चौलुक्य राजवंश की संस्थापना करने वाले विजयसिंहसे किया गया है। और विजयसिंह से लेकर वीरसिंह पर्यन्त निम्न पांच नाम हैं।

विजयसिंह
।
धवलदेव
।
वासंतदेव
।
रामदेव
।
वीरसिंह

इनमें विजयसिंह-धवलदेव और वीरसिंहके विरुद महाराजाधिराज परमेश्वर पर भट्टारक और वसन्तदेवका महा सामन्त महाराज तथा रामदेव का विरुद केवल सामन्तराज है। इससे प्रकट होता है कि विजयसिंह के पश्चात केवल धवलदेव ही स्वतंत्र था। उसके बाद वसन्तदेव को किसी ने पराभूत कर स्वाधीन किया था। अतः उसका विरुद महा सामन्त महाराज हुआ। इतने ही से अलं नहीं हुआ है। रामदेव के हाथसे और भी राज्य सत्ता का अपहरण होना प्रतीत होता है। क्योंकि हम उसका विरुद केवल सामन्तराज पाते हैं।

परन्तु रामदेवके उत्तराधिकारी वीरसिंह के विरुद "महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक दृष्टिगोचर होता है। इससे प्रकट होता है कि वीरसिंह ने पुनः स्वातंत्र्य लाभ किया था। शासन पत्र में स्पष्ट तया दृष्टिगोचर होता है कि वह पाटण के रेशमी सदाम अर्थात अगाडी

पछाड़ी बांधने की रशी से बंधी हुई स्ववंशकी राज्यलक्ष्मी को मुक्त कर अंकशायनी बना बसन्त पुर में विराजमान हुआ। इस कथन के दो अर्थ हो सकते हैं। १–रामदेव के हाथ से राज्य छीन गया जिसका उद्धार वीरसिंह ने किया। २–रामसिंहके बाद वीरसिंह ने राज्य पाने पर पाटण की आधिनता ग्रुप को फेंक अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की थी। हमारी समज में प्रथम अर्थ ही उत्तम प्रतीत होता है। क्योंकि 'पाटण पट बंधन' का अर्थ केवल यही हो सकता है कि मंगल-पुर की राज्यलक्ष्मी का अपहरण पाटणवालों ने किया था जिसका उद्धार वीरसिंह ने किया।

अब विचारना यह है कि मंगलपुरी के चौलुक्य राज्यवंश के स्वातंत्र्य राज्यलक्ष्मी का अपहरण किसने किया। मंगलपुरी के चौलुक्य वंश की संस्थापना ११४६ विक्रम में हुई थी। उस समयसे लेकर प्रस्तुत शासन पत्र लिखे जाने अर्थात १२४४ पर्यन्त ८६ वर्ष होते हैं। इस अवधि में मंगलपुरी के सिंहासन पर प्रस्तुत शासन कर्ता वीरसिंह को छोड़कर चार राजा बैठे थे। उक्त ८६ वर्ष को ४ से बाटने से २२ वर्षका औसत प्राप्त होता है। इन चार राजाओं में से दो राजाओं के विरुद्ध स्वतंत्र नरेशों के हैं। अतः मंगलपुरी के स्वातंत्र्यका अपहरण ११४६+४४ =११६३के लगभग हुआ प्रतीत होता है। संभव है कि इस समयके कुछ और भी बाद मंगलपुरी के स्वातंत्र्य का अपहरण हुआ हो।

मंगलपुरी की संस्थापना समय दक्षिण में वातापि कल्याण का चौलुक्य राज्य, उत्तर में पाटन का चौलुक्य राज्य और पूर्वमें धार का परमार राज्य प्रबल था। एवं निकटतम उत्तरमें लाट नंदिपुर के चौलुक्य और दक्षिण में स्थानक के शिल्हरा थे। इनमें पाटन के चौलुक्य और धार के परमारों का वंश परंपरागत विरोध था। सिद्धराज ने धार के २ ३ भाग को अपने स्वाधीन कर लिया था। एवं मालवा की पुरातन राज्यधानी अवन्ती पर अपने वृषध्वज को आरोपित कर अवंतिकानाथ की उपाधि धारण किया था। अतः मालवा के परमारों की शक्ति क्षीण हो रही थी इन्हें अपने जीवन के लाले पड़ रहे थे। वे दूसरे पर आक्रमण क्या करते। लाट नंदिपुर के चौलुक्यों का अन्तप्राय हो रहा था। सिद्धराज के कोकण अथवा सह्याद्रि के उपत्यका भू पर आक्रमण करनेका परिचय नहीं मिलता। उब रहे स्थानक के शिल्हरा। और वातापि कल्याणके चौलुक्य। इनमें स्थानक, कोल्हापुर और करहाटके शिल्हरा और अन्यान्य छोटे मोटे राजा वातापि कल्याण के चौलुक्यों के आधीन चिरकाल से चले आ रहे थे। परन्तु विक्रमादित्य के पश्चात वातापि कल्याण के चौलुक्यों की शक्ति क्षीण होने लगी थी। सामन्त प्रबल और उद्दण्ड बनने लगे थे। विक्रमादित्यका समय शक ६६८-१०४८ तदनुसार विक्रम ११६४ में प्रारंभ होता है। इसके गद्दी पर बैठने बाद सामन्त गण अति बलवान होगए। इसके बाद इसका छोटा भाई १०७२ तदनुसार विक्रम १२०७ में गद्दी पर बैठा। सामंतों ने षडयन्त्र रचकर इसको एक प्रकारसे बंदी बनाया था परन्तु यह इनके चंगुलसे निकल भागा और वनवासी प्रदेशसे चला गया। अतः स्थान के शिल्हरोंने उसी समय यह वातापि कल्याण राज्य की दुर्बलता से लाभ उठाकर स्वतंत्र बन गये। उन्होंने न केवल स्वतंत्रता ही लाभ किया वरन अपने पड़ोसियों को भी सताना शुरु किया था।

सिद्धराज के पश्चात पाटणकी गद्दी पर कुमारपाल बैठा। इसका स्थानक के शिल्हरा मल्लिकार्जुन के साथ युद्ध हुआ था। युद्ध में प्रथम मल्लिकार्जुन ने पाटनकी सेना को पराभूत किया परन्तु अंत में उसे हारना पडा। यह युद्ध विक्रम संवत १२१७ में हुआ था। संभवतः मंगलपुरी वाले मल्लिकार्जुन के साथ मिल कर पाटण वालों से लडे और उसके पराजय के साथही उन्हें अपने राज्य से हाथ धोना पडा था। वसन्तदेवका राज्यारोहन समय हम विक्रम संवत ११६३ में बता चुके हैं। अतः अनुमान के अनुसार इसका अन्तकाल इस युद्ध के दो वर्ष पूर्व ठहरता है। संभवतः उसके मरने पश्चात उसके सार्वभौम राजा पाटण वालों ने उसके पुत्र को महा सामन्त की उपाधि के स्थान पर केवल सामन्तकी उपाधि धारण करने के लिए बाध्य किया हो। हमारी समजमें कुमारपाल ने मंगलपुरीकी राज्य लक्ष्मीका अपहरण किया था। उसकी मृत्यु पश्चात जब पाटण की शक्ति क्षीण हुई तो वीरसिंह ने विक्रम १२३४ में पुनः अपने वंशके राज्यका उद्धार कर वसन्तपुरको अपनी राज्यधानी बनाया। कुमारपालकी मृत्यु १२२६ में हुई। उसके बाद उसका भतीजा अजयपाल गद्दीपर बैठा। इसने केवल तीन वर्ष राज्य किया। पश्चात बाल मूलराज पांचवर्षकी अवस्थामें संवत १२३२ में गद्दी पर बैठा। २ वर्ष राज करनेके पश्चा उसकी मृत्यु हुई और १२३४ में भीम द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसकी अल्पवयस्कतासे लाभ उठानेके लिये कोंकण वालों ने आक्रमण किया जिसको लवणप्रसाद ने अपनी बुद्धि बल से शान्त किया था। अतः हमारी समझ में उस अवसर से लाभ उठाकर वीरसिंह ने अपने राज्यका उद्धार किया होगा।

हमारी समझ में शासन पत्र कथित घटनाओं के ऐतिहासिक तथ्यका पूर्ण रूपेण विवेचन हो चुका। अब केवल मात्र प्रदत्त ग्राम वालखिल्यपुर और उसकी सीमा पर अवस्थित ग्रामोंका वर्तमान समयमें अस्तित्व है अथवा नहीं विचार करना है। शासन पत्र कथित वालखिल्यपुर के दक्षिण में पूर्णा नदी है। गायकवाडी राज्य के व्यारा तालुका में पूर्णा के उत्तरमें वालपुर नामक ग्राम है। यह ग्राम अति पुरातन है। इसके चारों तरफ गिरे मकानों और मन्दिरों के ध्वंश पाये जाते हैं। इस ग्राम में एक पुराने शिव मन्दिरका ध्वंस है जिसके समीप एक शीतल जल का कुण्ड है। इस मन्दिर और कुण्ड को संप्रति वालपुर का कुण्ड और वालकेश्वर महादेव कहते हैं। परन्तु वर्तमान मन्दिर में तीन भिन्न लेखों के पत्थर एक साथ लगाए हुए हैं। इससे प्रगट होता है कि विक्रम १६३७ में व्यारा ग्रामके देशाई कामेश्वर मन्दिरका जिर्णोद्धार किया था अथवा बनवाया था। परन्तु वह मन्दिर संप्रति टूट गया है। और उसका पत्थर वर्तमान मन्दिर में लगाया गया है। अतः सिद्ध होता कि कुण्डके पास कदमेश्वर का मन्दिर था। इस हेतु हम कह सकते हैं कि शासन पत्र कथित कदमेश्वर महादेव और ह्रद तथा वालखिल्यपुर यही स्थान है। वालपुर से पश्चिम खुटरिया नामक ग्राम है। जो संभवतः शासन पत्र कथित खटवागका परिवर्तित रूप है। एवं वालपुर के उत्तर करंजा नामक ग्राम है जो शासन पत्र का करंजावली प्रतीत होता है। अन्तोगत्वा पूर्व में विका नामक ग्राम है। जो अम्बिका का रूपान्तर ज्ञात होता है। शासन पत्र के लेखक और दूतक आदिका नाम दिया गया हैं और संभवतः सभी बाते ठीक हैं किन्तु वालखिल्यपुर किस विषयका ग्राम था इसका उल्लेख न होना उसकी भारी त्रुटि है। दानफल और अपहरणादिका दोष साधारण बातें हैं इनके लिये कुछ कहना अनुपयुक्त है।

मंगलपुर-वासंतपुर पति चौलुक्यराज श्री कर्णदेव का

विक्रम संवत ११७७ का शासन पत्र ।

ॐ नमो भगवते श्री वाराह देवाय । श्रीमतां हिमांशु वंशोद्भू-
तानां मानव्यस गोत्राणां हारिति पुत्राणां सप्त मातृका परिवर्धितानां
कार्तिकेय परिरक्षितानां विष्णु प्रसाद समासादित् वाराह लांछनेक्ष्णेन
वशीकृत शत्रु मण्डलानां चौलुक्यानां मान्वये स्वभुजोपार्जित साम्राट
पदवी सह्याद्रिनाथ केशरी विराज महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टा-
रक श्री विजयसिंहदेव तत्पादानुध्यात तत्पुत्रो महाराजाधिराज परमेश्वर
परम श्री धवलदेव तत्पादानुध्यात तत्पुत्रोमहा सामन्त महाराजा श्री
वामनदेव तत्पादानुध्यात् तत्पुत्रो सामन्तराज श्री रामदेव स्तत्पानुध्यात्
महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री वीरसिंहदेव स्तत्पादा-
नुध्यात् ततोऽयो महाराजाधिराज श्री कर्णदेव ।

स्वपितामह पारमार्थिक श्राद्ध काले स्वपिता पार्वण श्राद्धकाले
स्वजननी श्राद्ध काले उमादगुरु भवानी पति समभ्यर्च्य कुश जल हिर-
ण्य पूर्वक परलोक नेश्रा मम शान्ति कामनायाः जामदग्नेय सगोत्रे
भ्यो पंच परवरेभ्यो वेद वेदाङ्ग पारंगतेभ्यो हरिकृष्ण-रामकृष्ण-सोमद-
त्तेभ्यो बहुधान प्रतिष्ठितेभ्यो ब्राह्मणेभ्य अत्रिस्थस गोत्रेभ्यो यज्ञदत्त
वेददत्त कृष्णदत्तेभ्यो कल शाख निष्णातेभ्यो देवसारिक प्रतिवासि-
भ्यो गौतम गोत्र त्रिपरवर शुक्लश माध्यन्दिनी कच्छावली प्रतिवासिभ्य
एकादश ब्राह्मणेभ्यो विहारिका विषयान्तर्पाति कापूर ग्रामः सवृक्षार म
तृण गोचर हिरण्य भाग भाग सर्वदाय सहितं समान भागे नेभि ब्राह्म

णेभ्यऽस्माभि प्रदत्तः । सुविदित मस्तुवः । सर्वैषाम तद्ग्राम प्रतिवाःसिभि सर्वेदा देयं । न केनापि बाधा कर्त्तव्या । एतद् ग्रामस्य सीमानः । पूर्वतः सिमलदा ग्रामः । दक्षिणतः शा । रुवगी नदी । पश्चिमतः वालसैन ग्रामः ।

अस्मद्वंशजैर न्यैरपि भाविभि नृपतिभिरस्मद्धर्मदायोऽयं पालनीयः । पालने महत्पुण्यं व्यवच्छेदे पंच पातकानि भवन्ति ।

> बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभि सगरादिभिः
>
> यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥
>
> षष्टि वर्ष सहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः ।
>
> अच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥

जांबुकेश्वर वास्तव्य सोमदेव सूनुना हर्षेण नागरेण लिखित मिदं शासनं नृप कृष्णदेव चादेशात दूत कोऽत्र महा सन्धि विग्रहिक वीरदेवः । आश्विन कृष्ण चतुर्दशि संवत विक्रम १२७७ ।

कर्णदेव के शासन पत्र

का

छायानुवाद
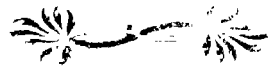
भगवान आदि वराह देवको नमस्कार। हिमांशु वंशोद्भूत मानव्य गोत्री हारिती पुत्र सप्त मातृका परिवर्धित कार्तिकेय संरक्षित-भगवान विष्णुकी कृपा से प्राप्त वाराह लक्षण द्वारा शत्रु विजेता चौलुक्य वंश विभूषण सह्याद्रि नाथ केसरी विक्रम महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री विजयसिंह देव। श्री विजयसिंहका पादानुध्यात पुत्र महामहाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री धवलदेव। श्रीधवलदेवका पादानुध्यात पुत्र महासामन्त महाराजा श्रीवासन्तदेव। श्रीवासंतदेवका पादानुध्यात पुत्र सामन्तराज श्री रामदेव। श्रीरामदेवका पादानुध्यात महाराजाधिराज परमेश्वर परम भट्टारक श्री वीरसिंह देव और श्री वीरसिंहका पादानुध्यात पौत्र महाराजाधिराज श्री कर्णदेव।

अपनी पितामहीके पारमासिक श्राद्ध, अपने पिताके पार्वण श्राद्ध और अपनी माताके श्राद्ध समय 'जगद्गुरु भवानी' पतिकी पूजा अर्चना के अनन्तर हाथमें कुश जल और हिरण्यलेकर उनकी अर्थात दादी पिता और माताके अक्षय शान्ति कामनासे जामदग्नेय गोत्र पंच प्रवर-वेद वेदाङ्ग पारंगत-बहुधान निवासी हरिकृष्ण रामकृष्ण और सोमदत्त, देवसारिका निवासी वसिष्ट गोत्री सकल शास्त्र निष्णात यज्ञदत्त और कृष्णदत्त वाधवली निवासी भारद्वाज गोत्री विज्ञानदत्त हरिदत्त और रेवादत्त और कच्छावली निवासी गौतम गोत्री त्रिप्रवर शुक्ल शाखाध्यायी एकादश ब्राह्मणों को वैहारिका विषयांतर्पाति कार्पर ग्राम सवृक्षाराम तृण गोचर हिरण्य भोगभागादि समस्त आय के साथ समान भागसे दान दिया। यह बात सबको विदित हो उक्त ग्राम के निवासीओं को उचित है कि समस्त आय ब्राह्मणों को दिया करें। इसमें किसी को बाधा न करना चाहिए। इस ग्रामकी चारों सीमाए निम्न प्रकार से हैं।

सीमाएँ—

पूर्व दिशा	सिमलता	पश्चिम	बालाधिन
दक्षिण	शाकंभरी	उत्तर	विशालपुर

हमारे अथवा अन्य वंशोद्भव भावी भूपालोंको उचित है कि हमारे इस धर्मदाय का पालन करें। धर्मदाय के पालने से पुण्य और अपहरण से महापातक होता है। सगरादि बहुतों ने वसुधा का भोग किया है। किन्तु जिसके अधिकार में पृथिवी जिस समय होती है उसके दानका उसको ही फल होता है। भूमिदान देनेवाला साठ हजार वर्ष स्वर्गमें वास करता है। और भूमिदानका अपहरण करने तथा अपहरणकी अनुमति देनेवाला इतनी ही अवधि पर्यन्त नरकमें निवास करता है। जम्बुकेश्वर निवासी नागर सोमदत्त के पुत्र हर्ष ने इस शासन पत्रको कर्णदेव की आज्ञा से लिखा। इस शासन पत्र का दूतक महासन्धि विग्रही वीरदेव है। इस शासन पत्रकी तिथि आश्विन कृष्ण चतुर्दशी संवत १२७७ विक्रम।

कर्ण देव के शासन पत्र

का

-:विवेचन:-

प्रस्तुत शासन पत्र मंगलपुर वामन्तपुर के चौलुक्य कर्णदेव के अपनी दादी के अर्ध वार्षिक और माता के श्राद्ध तथा पिता के पार्वण श्राद्ध कालमें उनकी आत्माकी शान्ति के उद्देश्य से ब्राह्मणों को दान में दिये हुए ग्रामका प्रमाण पत्र है। इसका लेखक जंबुकेश्वर का रहने वाला नागर सोमदेव का पुत्र हर्ष और दूतक वीरदेव तथा लेखकी तिथि आश्विन कृष्णा १४ संवत १२७७ है। चौलुक्योंकी वंशपरंपरा देने पश्चात दाता कर्णदेव की वंशावली निम्न प्रकार से दी गई है।

वंशावली—

शासन पत्र से प्रकट होता है कि कर्णदेवको अपने दादा से गद्दी मिली थी। परन्तु उसकी मृत्यु कब हुई शासन पत्र से प्रकट नहीं होता। परन्तु शासन पत्र कर्ण के पिता के पार्वण श्राद्ध काल में लिखा गया है। पार्वण श्राद्ध प्रथम वार्षिक तिथि पर होता है। अतः कर्णदेवके पिताकी मृत्यु काल आश्विन कृष्णा १४ संवत १२७६ ठहरता है। इससे प्रकट होता है कि कर्णदेवको उसके दादाने उसके पिताकी मृत्यु पश्चात शोक से संतप्त हो अपने जीते जी गद्दी पर बैठा दिया था और शासन पत्र लिखे जाने के समय वह जीवित था। यदि ऐसी बात न होती और कर्णका दादा पहले मरा होता तो उसे राज्य अपने पितासे उत्तराधिकारमें मिला होता। वीरदेवका शासन पत्र विक्रम संवत १२३५ का हमें प्राप्त है। अतः उसका राज्यकाल १२३५ से १२७६ पर्यन्त ४२ वर्ष है।

दान ग्रहिता ब्राह्मणों का विवरण निम्न प्रकार से दिया गया है। वहधान निवासी हरिकृष्ण - रामकृष्ण सोमदत्त प्रभृति तीन ब्राह्मण देवसारिका निवासी वासिष्ठ गोत्री यज्ञदत्त, वेददत्त - कृष्णदत्त प्रभृति तीन ब्राह्मण, वांधवली प्रतिवासी भारद्वाज गोत्री विज्ञान दत्त हरिदत्त रेवादत्त तीन ब्राह्मण और कन्छावली प्रतिवासी गौतम गोत्री विश्वनाथ आदि एकादश ब्राह्मण।

इनको विहारिका विषयका कर्परग्राम समान भाग रूपसे दिया गया है।

प्रदत्त ग्राम और प्रतिग्राहिता ब्राह्मणों के निवास का वर्तमान समयमें परिचय मिलता है अथवा नहीं। हमारी समझमें शासन पत्र कथित विहारिका वर्तमान ब्यारा है। क्योंकि विहारी का बिआरा और बिआरा का ब्यारा बन सकता है। विहारिका को ब्यारा मान लेने के बाद हमें उसके आसपास में ही प्रदत्त कर्पर ग्रामका परिचय प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करना होगा। वर्तमान ब्यारा नगरसे लगभग सात आठ मील की दूरी पर दक्षिण दिशा में कपुरा ग्राम है। शासन पत्र कथित कपुरा के पूर्व में सिमलद, दक्षिण में शाकंभरी नदी, पश्चिम में बालाधिन और उत्तरमें विशालपुर है। वर्तमान कपुरा के पूर्व में चिखलद, दक्षिण में झाखरी, पश्चिम में बालोड, और उत्तर में खुशालपुर है। हमारी समझमें शासन पत्र कथित शाकंबरी नदी वर्तमान झाखरी है क्योंकि शाकंभरीसे अनायास ही शाखभरी और शाखरी से झाखरी बन सकता है। शासन पत्र के बालाधिनका अनायास ही बालोढन और बालोढन का बालोड हो सकता है। अतः वर्तमान बालोडही बालाधिन का रूपान्तर है। इसी प्रकार विशालपुर का खुशालपुर भी बन सकता है। हां शासन पत्र कथित सिमलद का वर्तमान परिचय प्राप्त करने का हमारे पास कुछभी साधन नहीं है।

ब्राह्मणों के निवास वाले ग्रामों के सम्बन्ध में हमारा विचार है कि शासन पत्र का बहुधान तापी तट का बोढाण है। देवसारिका सम्भवतः बिल्लीमोरा के पास वाले देवसर या देसरा में से कोई एक ग्राम हो सकता है। परंतु हमारी प्रवृत्ति शासन पत्र के देवसारिका को वर्तमान देवसर ही मानने को अधिक होती है। अन्ततोगत्वा शासन पत्र कथित कच्छावली ग्राम गणदेवी और अमलसाड के मध्यवर्ती कछोली नामक ग्राम है। इस ग्राम का उल्लेख पाटन पति कर्णदेव के विक्रम संवत १९२१ वाले लेख में है। उक्त लेख का विवेचन चौलुक्य चन्द्रिका पाटन खण्ड में हम विशेष रूपसे कह चुके हैं।

शासन पत्र के बारम्बार पर्यालोचन से भी वीरसिंह के पुत्र और शासन कर्ता कर्णदेव के पिता का नाम ज्ञात नहीं हुआ। संभव है कि लेखक के हस्त दोष से उक्त नाम छूट गया हो। यदि वास्तव में उसका नाम जान बूझकर छोड़ दिया गया है तो हम कह सकते हैं कि वंशावलीमें केवल राज्य करने वालों के ही नाम दिये गये हैं। अन्यान्य शासन पत्रों के अध्ययन से भी यह सिद्ध होता है कि शासन पत्रोंकी वंशावली में केवल शासन करने वालों ही का नाम दिया जाता है। अतः कर्णदेव के पिता, शासन पत्र कथित वंशावली में, के नामका अभाव शासन पत्र का दोष नहीं है।

इस लेख से प्रगट होता है कि कर्ण के पिता के पार्वण श्राद्ध समय शासन पत्र लिखा गया था। अतः कर्ण के पिताकी मृत्यु इस लेख की तिथि से एक वर्ष पूर्व होनी चाहिये। क्योंकि पार्वण श्राद्ध मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् किया जाता है। अतः कर्ण के राज्यरोहण का समय भी इस प्रकार हमें विक्रम संवत १२७६ प्राप्त हो जाता है।

वारोलिया का प्रथम लेख

(१) स व त श्री १ ३ ७ ३ का र्ति क कृ ष्ण

(२) ७ श्री आ दि दे व य न मः । श्री

(३) रा ज कृ ष्ण दे व त स्य—— श्री

(४) से म दे व रा ज स्या – स त श्री रु द्र

(५) दे व रा ज स———श्री कृ ष्ण दे

(६) व रा ज स्य क ला ण वि ज रा जे

परिष्कृत प्रतिलिपि

संवत श्री १-७३ कार्तिक कृष्ण ७ श्री आदि देवाय नमः । श्री राजा कृष्ण देवतस्य (। त्मजो) श्री सेम (सोम वा सोम) देव राजस्या (त) मजः श्री रुद्रदेव स्तस्या (त्मजः) श्रीकृष्ण देव र जस्य कला (ल्या) ण विज (य) राजे (ज्ये) ॥

वारोलिया का द्वितीय लेख

(१) सं व त १ ३ ३ व र्ष का र्ति क कृ

(२) ष्ण ७ सो मे श्री कृ ष्ण रा य दे व स श्री

(३) श्री उ द य रा ज पौ त्र —— श्री कृष्ण

(४) दे व रा जे न प्र ति ष्ठि तो यं श्री आ दि

(५) दे व स कृ त यं...........चन्द्रार्के......

(६) व तु श्री कृ ष्ण रा ज स्य शा मि ति.

परिष्कृति लेख

संवत १३–(७) ३ वर्ष कार्तिक कृष्ण ७ सोमे श्री कृष्ण रायदेव स (स्य) श्री उदयराज पौत्र (त्र)—(ण) श्रीकृष्ण देवराजे न प्रति (ष्ठि) तोयं श्री आद (दि) देवस (सु) कृत(तो) यं——(याव) चन्द्रार्के—— —(। लेख स्थिति स) स्तु श्रीकृष्ण राजस्य शामिति ।

श्री चौलुक्यराज कुम्भदेव
का
शासन पत्र

स्वस्ति श्री मदादि देवाय नमः ।

अस्मिन भुवन विदिता पुराण प्रख्याता चौलुक्य नगरी मंगलपुरी नामा । तस्या अधि राजा परम भट्टारक परमेश्वर महाराजा श्री कृष्णराज स्तत्पादानुध्यात परम भट्टारक परमेश्वर महाराजा श्री उदयराज तत्पादानुध्यात महाराजा श्री कुम्भदेव तत्पानुध्यात राजा श्री क्षेमराज स्तत्पादानुध्याम राजा श्री कृष्णराज स्तस्यानुजन्मा तद्विजय राज्ये श्री कुम्भदेवेन भूपतिना धवल नगर्या मादिदेवोऽयं प्रतिष्ठितः ॥ शमिति सुकृतोऽयं श्री कृष्णराजस्य ॥ सम्वत १३७३ विक्रमातीत १२३८ शाली वाहन शाके । कृष्ण सप्तमी कार्तिक मासे

श्री कुम्भदेव के शासन पत्र
का
छायानुवाद

कल्याण हो । श्री आदि देवको नमस्कार । भुवन विदित पुराण प्रख्यात चौलुक्यों की मंगलपुरी नामक नगरी है । मंगलपुरी का अधिराजा परम भट्टारक परमेश्वर महाराजा श्री कृष्ण देव हुआ । श्री कृष्णदेवका पादानुध्यान परं भट्टारक श्री महाराज उदयराज । श्री उदयराज का पादानुध्यान महाराज श्री कुम्भदेव । श्री कुम्देव काम पादानुध्यान श्री क्षेमराज और श्री क्षेमराज का पादानुध्यान श्री कृष्णराज । श्री कृष्णराज का छोटाभाई कुम्भ देवने उसके विजय राज्य काल मे धवल नगरी के अन्तगत श्री आदि देवकी स्थापनाकी । कल्याण हो । इस देव स्थापना की सुकृति श्री कृष्णराज को प्राप्त हो । कार्तिक कृष्ण सप्तमी संवत १३७३ विक्रम तदनुसार १२३८ शक ।

विवेचन

प्रस्तुत लेख मंगलपुरी के चौलुक्य राजा कृष्णराज के भाई कुम्भदेव का है। यह लेख सूरत जिला के चिखली नामक तालुका के अन्तर्गत वारोलिया नामक ग्राम के पास बहने वाली नदी के किनारे पर पत्थर पर खुदा हुआ है। पत्थर के आकार से प्रतीत होता है कि उक्त पत्थर किसी मन्दिर की दिवाल का पत्थर है। हमारी इस धारणा का समर्थन इस बात से होता है कि लेख में आदि देव की स्थापना का उल्लेख है। पुनश्च जहां पर यह पत्थर पड़ा है वहां से कुछ पश्चिम हटकर दो मूर्तियां जमीन में गड़ी हुई थीं। उक्त मूर्तियों का अधिकांश पृथिवी के गर्भ में था। उनको खोदकर निकालने ही पर प्रत्येक पर खुदे हुए लेख मिले। इन मूर्तिओंका पत्थर एक फिट मोटा, लगभग दो फिट चौड़ा और पांच फिट लम्बा है। इनके नीचे के भागमें लेख खुदा है। लेख का अक्षर प्रायः नष्ट गया है। परन्तु "कृष्णराज विजयराज्ये" बहुत ही स्पष्ट है। इन्हीं मूर्तिओं के समान गणदेवा नामक ग्राम के एक शिव मन्दिर में दो मूर्तियां दिवाल में चुनी हुई हैं। इन मूर्तिओं के भी निम्न भाग में लेख है। वारोलिया और गणदेवा दोनों स्थानों की मूर्तिओं का लेख प्रायः एकही है। यदि कुछ इनमें अन्तर है तो वह केवल तिथि संबंधी है। इन चारों मूर्तियों के टूटे फूटे अक्षरों को प्रस्तुत लेख के साथ मिला कर पढ़ने से इन लेखों का यथार्थ परिचय मिल जाता है। क्योंकि प्रस्तुत लेख के अक्षर ईश्वर कृपा से स्पष्ट और सुरक्षित हैं। इस लेख से मूर्तियों के लेख के टूटे हुये अंश को पूरा करने में प्रचुर सहायता मिलती है। वारोलिया की मूर्तियों के लेखों को इस लेखकी सहायता से रूपान्तर कर हम इस लेख के पूर्व में दे चुके हैं। गणदेवाकी मूर्तियों के लेख का अवतरण अनावश्यक मान हम नहीं देते हैं। प्रस्तुत लेख में कुम्भदेव और उसके भाई कृष्णराज की वंशावली निम्न प्रकार से दी गई है।

परन्तु लेखकी तिथि के अतिरिक्त किसी भी राजा के राज्यारोहण आदि की तिथि नहीं दीगई है। प्रस्तुत लेख की तिथि विक्रम संवत १३७२ है परन्तु गणदेवा के मूर्तियों के लेख की १३६२ और १३६३ है। और बारोलिया की मूर्तियों के लेख का संवत १३७१-१३७३। अतः दोनों स्थानोंकी मूर्तियों और प्रस्तुत लेखकी तिथि में १० वर्षोंका अन्तर है। संभव है कि कुम्भदेव ने प्रथम गणदेवा में मूर्तियों को स्थापना की हो और बाद को धवलधोरा-बारोलिया में इनके लेखों के अन्तर से कोई महत्व पूर्ण परिवर्तन नहीं होता। कृष्णराज और कुम्भदेवका समय १० वर्ष पूर्व और चला जाता है। अब यदि हम कुम्भदेव और कृष्ण का प्रारंभिक समय १३६१ ही मान लेवें और प्रत्येक के लिए २२ वर्ष और ४ महीना का औसत मान लेवें जैसा कि तत्कालीन राजवंशों का औसत है तो उसके पूर्वज वंश संस्थापक कृष्णराज का समय विक्रम १२७१ प्राप्त होगा। अब विचार उपस्थित होता है कि कृष्णराज किस मंगलपुरी का राजा था। क्या यह वही मंगलपुरी है जिसको वसन्तपुरी के चौलुक्यों के पूर्वज वीरसिंह ने अपनी राजधानी बनाई थी। जहां से हटकर वासन्तपुरको वीरसिंह ने अपनी राज्यधानी बनाई थी। क्या वीरसिंहके पूर्वजोंके हाथ से मंगलपुरी छीननेवाला प्रस्तुत लेख का कृष्णराज ही है। मंगलपुरी के इन चौलुक्यों का संबंध किन चौलुक्योंके साथ था। इन प्रश्नों का उत्तर देनेका साधन पर्याप्त उपलब्ध नहीं है तथापि अनुमान के बल से कुछ प्रश्नों का समाधान करने का प्रयास करते हैं।

अनुमान द्वारा प्रस्तुत लेखके वंश संस्थापक कृष्णराज का समय विक्रम १२७१ के लगभग प्राप्त हुआ है। अब प्रश्न है कि वसन्तपुरीके चौलुक्योंकी राज्यधानी मंगलपुरी में कबतक रही। वीर के विक्रम संवत १२३५ के लेख में स्पष्ट रूपेण लिखा है कि उसने वासन्तपुर अपनी राजधानी बनाया। इससे स्पष्ट है कि वसन्तपुर वालों के हाथ से मंगलपुरी विक्रम १२३४ के पूर्व छिन गई थी। अथवा उसकी राज्य लक्ष्मीका अपहरण पाटन वाले कर चुके थे। इधर कृष्णराजका समय १२७१ है। इससे आगे इसका समय नहीं मान सकते। अतः यह मंगलपुरी का छीनने वाला नहीं हो सकता। पुनश्च मंगलपुरी की राजलक्ष्मी का पाटन वालों के हाथ से उद्धार करने वाला वीरसिंह प्रकृत वीरसिंह था। जब उसने पाटन वालों के हाथ से अपने वंश की लक्ष्मी का उद्धार किया था तो ऐसी दशा में मंगलपुरी को भी अवश्य स्वाधीन किया होगा।

वीरसिंह के बाद उसका पौत्र कर्णदेव गद्दी पर बैठा। उसके १२७७ के लेख के विवेचन में उसका राज्यारोहण और वीर का अन्तकाल १२७६ दिया है। इधर कृष्णराज का अनुमानिक समय १२७१ है। जब तक वह वीरसिंहका संबन्धी भाई भतीजा चचा प्रभृति न हो तबतक उसका मंगलपुरी प्राप्त करना असंभव है। परन्तु इसके और न वीरसिंह के सम्बन्ध का परिचायक सूत्र न तो इसके अपने लेख में है और वीरसिंह अथवा उसके पौत्र के लेख में मिलता है।

संभव है कि वीरदेवका कोई संबन्धी हो और उसने इसको मंगलपुरी का शासक नियुक्त किया हो।

मंगलपुरी का परिचय पाना असम्भव है। अतः इस प्रयास को छोड़ लेख कथित धवल नगरी का विचार करते हैं। लेखसे प्रगट होता है कि कृष्णदेव ने धवल नगरी में आदि देव की प्रतिमा स्थापित की थी। परन्तु प्रस्तुत लेख और उक्त दोनों मूर्तियां जिस स्थान में पाई गई हैं उसका नाम वारोलिया है। हां उसके समीप बहने वाली नदी को धवलधरा कहते हैं धवलधरा का शाब्दिक अर्थ होता है धवल के पास। अतः इस स्थान के समीप धवलनगरी का होना प्रगट होता है। वारोलिया ग्राम के चारों तरफ मीलों आप चाहे जिस खेत अथवा टीले को खोदें आपको सर्वत्र पुरातन जनपद का अवशेष मिलेगा। यहां पर वर्षाऋतु में पुरातन सिक्के मिलते हैं। खोदने पर बड़ी २ ईंटें और मिट्टी के बर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। यहां की जनता में प्रसिद्ध है कि यहां पर धवल नामक बहुत बड़ा नगर था जो किसी राजा की राज्यधानी थी। हमारी समझ धवल नगर का अवशेष यही स्थान है।

धवलनगरी के अवस्थान का विचार करने के बाद अब हम आदि देव के सम्बन्ध विचार करते हैं। प्रस्तुत लेख के आदि देव से अभिप्राय चौलुक्यों के कुलदेव वराह या आदि वाराह से है। एवं आदिदेव विष्णु का भी नाम है। किन्तु मूर्ति के आकार प्रकार से वह विष्णुकी मूर्ति नहीं कही जा सकती। हां इस प्रकार की वाराहकी मूर्ति मध्यप्रदेश प्रदेश में अनेक स्थानों में हमें देखने को मिली है। [illegible] मलगंगा [illegible] समय अमृतकुण्ड के समीप एक मूर्ति ठीक वारोलिया के मूर्ति [illegible] प्राप्त हुई। अतः हम निःशंक हो कह सकते हैं कि लेख का आदि देव वाराह का द्योतक है।

वंशावली लेखक [illegible] कृष्णराजके विरुद [illegible] परम भट्टारक परमेश्वर महाराजाधिराज [illegible] हैं। उसके पुत्र [illegible] राज के भी उसके समान ही हैं। परन्तु पौत्र [illegible] महाराजा तथा प्रपौत्र [illegible] तथा उसके पुत्र कृष्णराज के केवल राजा रह गये हैं। इससे प्रगट होता है कि कृष्णराज के वंशजोंने स्वातन्त्र्य सुख का भोग नहीं किया था।

कृष्णराज के वंशजों का [illegible] हुआ इसका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। संभव है कि वे मुसलमानों के झपट में आ गए हों। क्योंकि वह समय अलाउद्दीन खिलजी के गुजरात और दक्षिण तथा मालवा और राजपुताना के विलोडन करने का है। धवलधरा (वारोलिया) के मन्दिरों का अवशेष प्रगट करता है। कि उनका विनाश मुशलमानों के धार्मिक उन्मादका देदीप्यमान चिन्ह है।

वलाक (अजराभील) क्षेत्र
की
शिला प्रशस्ति.

स्वस्ति श्री । श्रीगणेशाय नमः । श्री साम्ब शिवाय नमः । श्री गुरु चरणार्विन्दाभ्यां नमः ।

आसीत्पुरा परा काश्यां क्षेत्रे तपत्या सन्निधौ ॥
महात्मा योग युक्त स्तथा वेद वेदान्त पारगः ॥ १ ॥
उपदेष्टा ज्ञान मार्गस्य लोकानां हित काम्यया ॥
साक्षाच्छंकर रूपस्तु श्री मच्छंकर भारती ॥ २ ॥
तच्छिष्योऽहं मौनिवरः कृष्णा नन्दाभिधो मुनिः ।
वासन्तपुरे निवसन वर्षास्वं यति धर्मतः ॥ ३ ॥
चौलुक्य राज महिषी मुपादिश्य शिवाज्ञया ॥
सम्प्राप्य बहुलश्चार्थं कृतोऽयं शिव मंदिरं ॥ ४ ॥
वस्वग्नि चेति वेदार्के विक्रमातीत वत्सरे ॥
मधुमासि सिते पक्षे द्वादश्यां भौम वासरे ॥ ५ ॥

अङ्कतोपि १४३८ चैत्र सुदी १२ भौमवारे समाप्तोऽयं शिव मन्दिर मिति । सुकृतोऽयं फलदः भूयात । कल्याणमस्तु । शमिति ॥

छायानुवाद

कल्याण हो । श्री गणेश को नमस्कार । श्री साम्ब शिवको नमस्कार ! श्री गुरुदेव के चरणार्विन्दों को नमस्कार ।

पूर्व समय तापी तटवर्ती अपराकाशी (परा काशी) नामक क्षेत्र में साक्षात भगवान शंकर स्वरूप योगयुक्त वेदवेदांग पारगामी संसार के कल्याणार्थ ज्ञान उपदेष्टा श्री शंकर भारती नामक महात्मा निवास करते थे ।

उक्त महात्मा शंकरानन्दके शिष्य कृष्णानन्द ने संप्रति वर्षा ऋतुमें सन्यास धर्मके नियमानुसार वासन्तपुर में निवास करते समय चौलुक्य राज्य महिषी को भगवान शंकर की आज्ञा से उपदेश देकर बहुत सा धन प्राप्त कर इस शिव मन्दिर का निर्माण किया है । ३-४ ॥

वसु = आठ, अग्नि = तीन, वेद = चार, और अर्क = एक अर्थात १४३८ विक्रम चैत्र शुक्ल द्वादशी भौमवार । अंक से भी १४३८ चैत्र सुदी १२ भौम वार । यह सुन्दर कृत फलदायक हो ! कल्याण हो । इति ।

विवेचन

प्रस्तुत प्रशस्ति शंकरानन्द स्वामी के शिष्य कृष्णानन्द कृत किसी शिव मन्दिर की प्रशस्ति है। यह वर्तमान समय अजराभील नामक तापी तटपर एक पीपल के नीचे पड़ी है। भील लोग इसको देवता मान पूजा करते हैं। प्रशस्ति की शिला ६॥ हाथ लंबी १॥ हाथ चौडी और १॥ वालिश्त के करीब मोटी है। चौड़ाई वाले अंश में सात पंक्तियां खुदी हैं। लेख की लिपि देवनागरी और भाषा संस्कृत है। प्रथम और सातवीं पंक्तियां गद्यमय और शेष पांच पंक्तियां अनुष्टुप छंदमय हैं। श्लोकों की संख्या पांच है। प्रारंभिक गद्य में गणेश शिव और गुरु को नमस्कार। प्रथम श्लोक के प्रथम भाग में तापी के समीप पराकाशी नामक क्षेत्र का वर्णन है। प्रथम दो श्लोक के द्वितीय भाग और द्वितीय दो श्लोक में शंकरानंद स्वामी की प्रशंशा है। तीसरे श्लोक में लिखा गया है कि शंकरानन्द के शिष्य कृष्णानन्द ने वर्षाऋतु में वासन्तपुर निवास किया था। चौथे श्लोकमें वर्णन किया है कि कृष्णानंदने चौलुक्य राज्य की पटराणीको उपदेश कर धन प्राप्त किया और उक्त धनसे शिव मन्दिर बनाया। पांचवें श्लोक में लेखकी तिथि है। अन्तिम गद्य में तिथि अंक देने पश्चात शुभ कमना के वाक्य हैं।

लेख में राजा का नाम नहीं दिया गया है। परन्तु लेखकी तिथि विक्रम संवत १४३८ दी गई है। अतः इससे सिद्ध होता है कि वासन्तपुर का चौलुक्य वंश १४३८ पर्यन्त शासन करता था। वासन्तपुर के राजा कर्णदेव का लेख हम पूर्व में उधृत कर चुके हैं। उसकी तिथि १२७७ है। उक्त लेख के समय से १४३८ पर्यन्त १६१ वर्ष का अन्तर पड़ता है। अतः इस अवधि में वसन्तपुर की गद्दी पर कमसे कम ६ राजा होना चाहिए। प्रशस्ति कथित अपरा काशी तापीतट का प्रकाशा है। प्रकाशा क्षेत्र का तापी पुराण में बहुत महात्म्य लिखा है। इसकी तुलना बरानसी से की गई है। प्रकाशा तापी के उत्तर तट पर है। प्रकाशा में पुरातन नगर का अवशेष है। एवं आजभी सैंकड़ों की संख्या में मन्दिर हैं। प्रकाशा ग्राम से एक मील की दूरी पर प्रकाशा क्षेत्र है। जहां पर विश्वनाथ, केदार और पुष्प दन्तेश्वरके गगनस्पर्शी मन्दिर बने हैं। और तापीका घाट बंधा है। इससे वाराणसी की छटा दीखती है। केदार मन्दिरसे कुछ उत्तर हट कर ५६ समाधि मन्दिर हैं। इनमें १७ बडे, २६ छोटे और शेष ओटले हैं। यहांपर भारती बाबा की बहुत ख्याति है। इनमें का विशाल मन्दिर भारतीबाबा की समाधि बताई जाती है। इन समाधि मन्दिरोंकी दशा बिगड़ रही है। इन मन्दिरों के अवशेषों मे ईंट पत्थर हटाने पर हमें तीन पटियां मिलीं जिन पर लेख खुदे हैं।

प्रथम लेख वैशाख तृतीया विक्रम संवत १४२६ का है। इससे प्रगट होता है कि तापी तटवर्ती पराकाशा के केदार मन्दिर में शंकरानंद का स्वर्गवास हुआ था। दूसरा लेख माघ शुक्ल पंचमी विक्रम संवत १४६६ का है। इससे प्रगट होता है कि पराकाशी केदार मन्दिर मे कृष्णानंदकी मृत्यु हुई थी। तीसरा लेख वैशाख कृष्ण षष्ठी विक्रम १५०१ अथवा १५११ का है। इससे प्रगट होता है कि कृष्णानंद के शिष्य आत्मानद की मृत्यु हुई थी। इन लेखों से कृष्णानंद की प्रशस्ति कथित प्रकाशा में शंकरानंद के निवासका समर्थन होता है।

वासंतपुर की राज प्रशस्ति

आसीत् दण्डका रण्ये सुरम्या नगरी पुरा ॥
वेष्टिता दुर्ग चक्रेण देवद्वार समाकुला ॥ १ ॥
मंगलादौ पुरी चान्ते विश्रुत या भुवि नाम्ना ॥
शंकपुरी समालोके विभाति दक्षिण पथे ॥२॥
श्री जयसिंह देवस्य चात्मजो विजयाभिधः ॥
चौलुक्य वंश तिलको बभूव भूभुवश्चा[illegible] ॥३॥
योधिष्ठितस्तु नगरं स्वप्रान्ते विजयापुरं ॥
ततो बभूवो तद्वंशो धवलदेवो भूपतिः ॥ ४ ॥
जाता स्तस्मा ल्लली [illegible]देवं सुनुवः पाण्डवाः [illegible] ॥
ज्येष्ठो वासन्त देवश्च कृष्णदेवो तथ परः ॥५॥
तृतीय तु महादेव श्चतुर्थ श्चाचि[illegible] [illegible]नः ॥
भा स्तत्र [illegible]निष्ठाऽभूति नृपदे परायणः ॥ ६ ॥
धवलस्य पंचत्वेतु वासन्तो राजा बभूव ॥
जातौ तस्मा द्रागदेव्यां तनुजौ राम लक्ष्मणौ ॥७॥
निर्मिता रामदेवेन पुरीचैका मनोहरा ॥
वासन्तपुर नाम्ना[illegible] ख्याता जगती तले ॥ ८ ॥
तद्भ्रातृ पुत्रोऽसौ वीरः वीर नां मुकुट मणिः ॥
पराभूयं श्चारी न्सर्वा न्वासन्ते विराजत सः ॥ ९ ॥
तद्राज्ञी विमलादेवी प्रसूता यमलौ सुतौ
मूलदेवस्तु कृष्णाख्यौ द्वयोपि भूरि विक्रमौ १०
वयसि संगते कृष्णः राज लिप्सा भिकांक्षया
धार्तराष्ट्रा न्समानधस्तु दुरात्मा ज्ञान वर्जितः ११
औदण्ड्य च्चापलत्वेन बन्धु घातेन कण्टकः
पित्रव वेदक श्लोके संबभूव स दुष्कृतः १२

दुःखार्त शशांक संतप्तः वीरसिंहश्च भूभुजः
  तं स्वराज्याद्बहिस्कृत्य वार्य्यमाणो (ऽपि) मंत्रिणा १३
निधाय स्वपौत्रं स्वराज्ये कर्ण मूलस्य चात्मजं
  विलपन्तीं प्रजां त्यक्त्वा वाणप्रस्थे जगामह १४
तन्महिषी वकुलादेवी माधवी नाम्ना विश्रुता ॥
  अजीजनत्पुत्रांल्लोके रामार्जुन भीमोपम न् १५
संगते विष्णु सायुज्यं पंचत्वे करणे दिवि ॥
  क्रमेण चक्रुः वान्नते शासनं बान्धवास्त्रयः १६
ज्येष्ठ सिद्धेश्वरो नाम विशालस्तु द्वितीयकः
  जातश्चान्ते धवलस्तु वीरनामा परोऽपि यः १७
वासुदेव स्ततो राजा धार्मिको धवलात्मजः
  ततो बभूवो नृपति भामो भीम पराक्रमः ॥१८
आम्बिका कुल सन्नो स्मुवेणु कुंज समन्विते ।
  वासुदेवं पुरं भव्यं विष्णु विग्रह संयुतम् ॥१९
तत्पुत्रो वीरदेवस्तु रामनामा परोऽपियः ॥
  जातो हेमवती देव्यां चन्द्र श्चौलुक्य वारिधेः २०
शौर्ये राम समो वस्तु धर्मे धर्मसुतोऽपरः ॥
  शत्रोः कालान्तक श्लोके चाश्रितेषु च शंकरः ॥२१
तन्महिषी सीतादेवी प्रेयसी पद संगता ॥
  शची शिवा रमाभिश्च यालभत्समता भुवि ॥ २२
सीता प्रसूना रामाय सुतान् चत्वारि संख्यकान ॥
  वासन देवोऽभत्तेषु ज्येष्ठ राम समो भुवि ॥ २३
सौमित्रेयोपमालोके महादेवः द्वितीयकः ॥
  भरतेव कृष्णस्तत्र कीर्तिदेवोऽपि तद्रतः ॥ २४
एभिः पुत्रै स्समावृत्तः प्रजाभि श्चाभि पूजितः ॥
  आदृतस्तु द्विजैः रामोऽलभत्ताक सुखं भुविः ॥२५

राजरामो राजधान्यां यथा स्वर्गे शचीपतिः
पूज्यं परिजनश्चैव मोदतः स्वजनं तथा ।२६

सहसा संप्लवे जाते निहतो वसन्ताहवे
अराति लुंटिता सर्वा तिमिरा छुन्नमोदिनी २७

रामाभिषेक वार्तायाः साकेतिकाः हर्षोन्मत्ताः
वनवास दुःखार्तास्तुः जाता मुमूर्षतां यथा २८

चौलुक्य चन्द्र सम्राट् वासन्तिका सर्वे तथा
विगत संकुले रामो वासुदेवे समागतः २९

तदा सर्वान्समाहूय पुत्रान् परिजनां स्तथा
कामेण्ययं कृष्णाय महादेवाय मधुपुरं ३०

कीर्तिराजाय पार्वत्यै क्रमेण विषयान्ददौ
दत्वा स्वराज्यं पौत्राय रामो विष्णु गृहं गतः ३१

वीरोऽपि राज्यं संप्राप्य प्रवृत्तः प्रजारंजने
तमनु रंजयामास प्रशस्ति माला गुण्ठिता ३२

शंकरानंद शिष्येण कृष्णानंदेन धीमता
चतुश्चत्वारिंश च्चैव चतुर्दश शता परि ३३

श्रावणे च सित पक्षे द्वादश्यां रवि निर्गते
विक्रमादित्य कालस्य तन्निपु तिथि वासरे ३४

वसन्तपुर राज प्रशस्ति

का

छायानुवाद

पूर्व समय दण्डक अरण्य नामक भूभागके अन्तर्गत दुर्ग प्रकोट और चक्रों से वेष्ठित तथा देव मन्दिरों से परिपूर्ण एक अति मनोहर नगरी थी। १ ॥

उक्त नगरी का नाम-जिसके प्रथम मंगल और अन्त में पुरी ऐसे दो शब्द हैं अर्थात मंगलपुरी था। उक्त मंगलपुरी दक्षिणा पथमें देवेन्द्र इन्द्रकी अमरावती के समान शोभायमान थी -२-॥

कथित मंगलपुरी का चौलुक्य वंशोद्भूत चौलुक्य कुल तिलक श्री जयसिंह का पुत्र श्री विजयसिंह प्रथम राजा हुआ। ३ ॥

विजयसिंह ने अपने राज्य के अन्तर्गत विजयपुर नामक नगर बसाया। विजयसिंह के पश्चात धवल देव राजा हुआ। ४ ॥

धवल को अपनी महिषी लीलादेवी के गर्भ में पाण्डवों के समान पुत्र हुए। उनमें वसन्त देव ज्येष्ठ, कृष्णदेव द्वितीय, । ५ ॥

महादेव तृतीय, चाचिक देव चौथा और पांचवां भीम जो अपने पिताका परम भक्त था। ६ ॥

जब धवलदेव काल कवलित हुआ तो उसका उत्तराधिकारी वासन्तदेव हुआ। वासन्त देव को अपनी राणी वाग्देवीके गर्भ से राम और लक्ष्मण नामक दो पुत्र हुए। ७ ॥

रामदेवने अपने पिता के नामानुसार वासन्तपुर नामक एक अति मनोहर नगर बसाया। ८ ॥

रामका भ्रातृ पुत्र वीरों का मुकुटमणि वीरदेव ने शत्रुओं का पूर्ण रूपसे नाश कर वासन्तपुर में निवास किया। ९ ॥

वीरदेव की विमला देवी नामक राणी ने मूलदेव और कृष्ण देव नामक दो पराक्रमी पुत्र प्रसव किया। १० ॥

कृष्ण देव जब यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ तो राज्यलोभ में पड़कर धार्तराष्ट्रों अर्थात् दुर्योधनादि के समान मदान्ध दुर्बुद्धि और दुरात्मा हुआ। ११ ॥

कृष्णदेव अपनी उदण्डता और चपलता तथा बन्धुघात के कारण अपने पिता को संसार में कष्ट देने वाला तथा दुष्कृत हुआ। १२ ॥

वीरसिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र मूलदेव की मृत्यसे दुःखी और शोक संतप्त हो मंत्रियोंके मना करने पर भी छोटे पुत्र कृष्णदेव को राज्य से बहिष्कृत किया। १३ ॥

और मूलदेव के पुत्र कर्णदेव को राज्य सिंहासन पर बैठा प्रजा को विलपती हुइ छोड़ कर जंगल में जाकर वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण किया। १४ ॥

कर्णदेव की महिषी बकुला देवी उपनाम माधवी ने राम अर्जुन और भीम के समान पराक्रमी पुत्रों को प्रसव किया। १५ ॥

जब कर्णदेव ने अपनी इह लीला को समाप्त किया और विष्णु लोकमें जाकर विष्णु की सायुज्यता प्राप्त की तो तीनों भाइओ ने क्रमशः वासन्तपुर का राज्य शासन किया। १६॥

इन तीनों भाइयों में ज्येष्ठ सिद्धेश्वर, मध्यम विशालदेव और कनिष्ठ धवलदेव उपनाम वीरदेव था। १७ ॥

धवलदेव उपनाम वीरदेव के पश्चात उसका परम धार्मिक पुत्र वासुदेव गद्दीपर बैठा। वासुदेव के पश्चात उसका पुत्र भीम समान पराक्रमी भीमदेव राजा हुआ। १८ ॥

भीम ने अपने पिता के नामानुसार-अम्बिका और कुलसेनी नामक नदियों के मध्य वेणु वन के बीच विष्णु विग्रहयुक्त सुन्दर और भव्य वासुदेव पुर नामक नगर बसाया। १९ ॥

भीम को अपनी हेमवती नामक राणी के गर्भ से चौलुक्य वंश रूपी वाराधि का आल्हादक चंद्र वीर उपनाम रामदेव नामक पुत्र हुआ। २० ॥

वीरदेव शौर्य में राम, धर्म में युधिष्ठिर, शत्रु नाश में कालान्तक यम और आश्रितों को आश्रय देने में भगवान शंकर के समान था २१ ॥

वीरदेवकी राणी सीता देवी परम पतिव्रता और संसार में इन्द्रकी स्त्री शची, विष्णुकी स्त्री रमा और शंकर की स्त्री पार्वती की समता को प्राप्त करने वाली थी। २२ ॥

वीरदेव उपनाम रामदेवको अपनी राणी सीतादेवी के गर्भ से चार पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ वसन्त देव रामके समान। २३ ॥

लक्ष्मण के समान दूसरा महादेव, भरत के समान तीसरा कृष्णदेव और शत्रुघ्न के समान चौथा कीर्ति देव हुआ। २४ ॥

अपने इन चार पुत्रों से घिरा हुआ-प्रजा से पूजा और ब्रह्मणों से आदर प्राप्त कर राम को इस संसार में ही स्वर्ग का सुख उपलब्ध था। २५ ॥

राम अपनी राज्यधानी में प्रजा परिजन और स्वजनों को आनन्द देता हुआ-... के

समान निवास करता था। २६ ॥

अचानक संप्लव उपस्थित हुआ। वासन्तदेव युद्ध में मारा गया। अरातियो ने सर्वस्व लूट लिया और संसार में अन्धकार छा गया। २७ ॥

रामचंद्र के अभिषेक का संवाद पाकर जिस प्रकार साकेत अर्थात अयोध्या निवासी आनन्दित और राम के बनवास की बातें सुनकर मूर्छित हो गये थे। २८ ॥

उसी प्रकार चौलुक्य चंद्र के खग्रास उपस्थित होने पर वसन्तपुर निवासीयोंकी दशा हुई थी। जब संकुल का समाधान हुआ तो रामदेव वासुदेवपुर में चले आये ॥ २६ ॥

वासुदेवपुर में आने के पश्चात रामदेव उपनाम वीरदेव ने अपनी प्रजा पुरजन तथा पुत्रों और परिजनोंको बुलाकर-कृष्णदेव को कार्मण्य और महादेव को मधुपुर ॥ ३० ॥

और कीर्तिदेवको पार्वत्य नामक विषय दिया। एवं पौत्रको राज्य सिंहासन पर बैठा विष्णु लोक को प्रयाण किया ॥ ३१ ॥

वीरदेव अपने दादा से राज्य प्राप्त कर प्रजा पालन में प्रवृत्त हुआ। वीरदेव के मनोरंजनार्थ यह प्रशस्ति माला का निर्माण ॥ ३२ ॥

शंकरानन्द के शिष्य बुद्धिमान कृष्णानंद ने किया। चार-चालीस-चार दशमों में कृत १४४४ ॥ ३३ ॥

श्रावण शुक्ल द्वादशी के दिन सायं काल में कथित विक्रम संवत की शुभ तिथि में पूरण किया-॥ ३४ ॥

विवेचन

प्रस्तुत प्रशस्ति वसन्तामृत नामक ग्रंथ में लगी है। वसन्तामृत ग्रन्थ के कर्ता शंकरानंद भारती स्वामी के शिष्य, कृष्णानन्द स्वामी हैं। वसंतामृत ग्रंथ श्रीमद्भागवत गीता का अनुवाद है। इस ग्रंथ के लिखे जाने की तिथि वैशाख कृष्ण शिवरात्री विक्रम संवत् १४४४ है। और स्थान तापी नदी का प्रकाश क्षेत्रवर्ती शंकर महादेव मंदिर है। एवं प्रशस्ति की तिथि श्रावण शुक्ल द्वादशी संवत् १४४४ है।

वसन्तामृत ग्रंथ के उपलब्ध प्रति की तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी संवत् १७६३ विक्रम है। इसका आकार लगभग एक बालिश्त चौड़ा और डेढ़ बालिश्त लम्बा है। इसकी पृष्ठ संख्या ३६१ है। प्रत्येक पृष्ठ में चारों तरफ दो अंगुल के करीब हांसिया छोड़ कर तीन लाईन बनाई गयी हैं। इन तीनों लाइनों में से एक पीली, दूसरी लाल और तीसरी नीली है। प्रथम २१ पृष्ठ तापी नदी के महात्म्य और प्रकाशा क्षेत्र की स्तुति में लगे हैं। दूसरे सात पृष्ठ गुरु की महिमा वर्णन करते हैं। पश्चात् तीन पृष्ठ शंकरानंद भारती के गुणगान और अलौकिक योग सिद्धियों के चित्रण में लगे हैं। इसी प्रकार अन्त के तीन पृष्ठों में वासन्तपुर प्रशस्ति दो पृष्ठ में विजयदेव का शासन, दो पृष्ठ में वीरदेव का शासन, और दो पृष्ठ में कर्णदेव के शासन को अभिगुंठन में लगे हैं। इस प्रकार पुस्तक के ४० पृष्ठ प्रस्तावना और प्रशस्ति, आदि में लगे हैं। पुस्तक की लिपि देवनागरी है। तापी, प्रकाशा, गुरुमहिमा और शंकरानंद भारती के चरित्र की भाषा संस्कृत है। इसी प्रकार राज प्रशस्ति की भाषा संस्कृत है। पुस्तक की भाषा यद्यपि हिन्दी है परन्तु उसमें गुजराती और यत्रतत्र मराठी भाषाके शब्द पाये जाते हैं। पुस्तक के आदि और अन्त में लकड़ी की पट्टियां लगाई गई हैं। जो चंदन आदि से परिपूर्ण हैं। पुस्तक खस्वा के वेस्टन में बंधी हैं। वेस्टन की दशा भी पट्टियें के समान है। इससे प्रगट होता है कि पुस्तक की पूजा वंश परम्परा से होती आ रही है। पुस्तक से हमारा अधिक सम्बन्ध न होने से हम अब निम्न भाग में प्रशस्ति के विवेचन में प्रवृत्त होते हैं।

प्रस्तुत प्रशस्ति के श्लोकों की संख्या २४ है। प्रथम दो श्लोकों में मंगलपुरी का वर्णन है। तीसरे श्लोक में जयसिंह केपुत्र विजयसिंह का मंगलपुरी का प्रथम राजा होना और चौथे श्लोक के प्रथम चरण में उसका अपने राज्य में विजयपुर नामक ग्राम बसाने का उल्लेख है। चौथे श्लोक के दूसरे चरण में विजयसिंह के बाद धवल का राजा होना वर्णन किया गया है। पांचवें और छठे श्लोकों में धवल का अपनी रानी लीलादेवी के गर्भ से पांडवों के समान वसन्त, कृष्ण, महादेव चाचिक और भीम नामक पांच पुत्रोंका होना प्रगट होता है। एवं इससे यह भी प्रगट होता है कि भीस परम पितृ भक्त था सातवां श्लोक बताता है कि धवल के पश्चात वसंत राजा हुआ और उसको अपनी रानी वाग्देवी के गर्भसे राम और लक्ष्मण नामक

दो पुत्र हुए। आठवें श्लोक से प्रगट होता है कि रामदेव ने राजा होने के पश्चात वसन्तपुर नामक नगर बसाया। नववां श्लोक ज्ञात करता है कि रामदेव के बाद उसके भाई लक्ष्मण का पुत्र बड़ा ही प्रचंड योद्धा था। उसने शत्रुओं का नाश कर वसन्तपुर में निवास किया। दशवें श्लोक में अभिगुण्ठन किया गया है कि वीरदेव को अपनी रानी विमला देवी के गर्भ से मूलदेव और कृष्णदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। श्लोक ११ और १२ कृष्णदेव की दुष्टता प्रभृत्ति और राज्यलिप्सा आदि का वर्णन करने पश्चात उसे बन्धुघात द्वारा अपने पिता को दुःख देने वाला बताते हैं। १३ और १४ श्लोकों से प्रगट होता है कि पुत्र शोकसे संतप्त वीरदेव ने मंत्रियों के मना करने पर भी कृष्णदेव को राज्य से निकाल बाहर किया और मूलदेव के पुत्र कर्णदेव को गद्दी पर बैठा अपने आप विरक्त हो जंगल में चला गया। श्लोक १५-१६ और १७ से ज्ञात होता है कि कर्णदेव को अपनी राणी वकुलादेवी के गर्भ से सिद्धेश्वर, विशालदेव और धवलदेव नामक तीन पुत्र हुए। जो क्रमशः उसके बाद वसन्तपुर की गद्दी पर बैठे। श्लोक १८ का प्रथमार्ध ख्यापन करता है कि धवल के बाद उसका पुत्र वासुदेव राजा हुआ और उत्तरार्ध बताता है कि वासुदेव का पुत्र भीम था। १९ में श्लोक से प्रगट होता है कि भीम ने कुलमती और अम्बिका नदियों के मध्य वेणुकुञ्ज में विष्णु विग्रहमय वासुदेवपुर नामक नगर बसाया। २० वां श्लोक बताता है कि भीम का पुत्र वीर उपनाम राम हुआ। जो चौलुक्य वंश का चन्द्र था। २१ वां श्लोक ज्ञापन करता है कि वीरदेव बलमें रामके धर्म में युधिष्ठिर के समान, शत्रुओं के लिए यमराज के और आश्रितों के लिए शंकर के समान था। २२ वां श्लोक उसकी राणी सीता को इन्द्र की पत्नी शची, शिवकी पार्वती और विष्णु की रमा के समान और परमपतिव्रता बताता है। २३-२४ श्लोक बताते हैं कि वीरदेव को सीता के गर्भ से वसन्तदेव, महादेव, कृष्णदेव और कीर्तिराज नामक चार पुत्र हुए। २५-२६ से प्रगट होता है कि रामदेव इन पुत्रों को पा, प्रजा से पूजित और ब्राह्मणों से आदृत हो संसार में ही स्वर्ग सुख का अनुभव करता था। २७ से ज्ञात होता है कि अचानक संप्लव उपस्थित हुआ जिसमें वसन्तदेव मारा गया, वसन्तपुर लूटा गया और समस्त राज्य में अंधकार छा गया। २८-२९ से प्रगट होता है कि वसन्तदेव के मारे जाने और चौलुक्य राज्य के लूटे जाने से वसन्तपुर की प्रजा अत्यन्त दुखी हुई थी। एवं जब शत्रु का आतंक मिट गया तो वीरदेव वासुदेव पुर में चला गया। श्लोक ३०-३१ से प्रगट होता है कि वीरदेव वासुदेवपुर में आने पश्चात स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्र वसन्तदेवके पुत्र वीरदेव को गद्दी पर बैठा, अन्य पुत्रों को एक २ विषय देकर स्वर्गगामी हुआ था। अतः वीरदेव के पुत्र कृष्ण को कामिणाय, महादेव को मधुपुर और कीर्तिराज को पार्वत्य नामक विषय का मिलना प्रगट होता है। ३२ वां श्लोक प्रगट करता है कि वीरदेव अपने दादा वीरदेव से राज्य प्राप्त करने पश्चात प्रजापालन में प्रवृत्त हुआ। इसी समय उसके मनोरंजनार्थ प्रशस्ति का निर्माण किया गया। श्लोक ३३ और ३४ प्रशस्तिकार का नाम कृष्णानन्द और इसकी तिथि श्रावण शुक्ल द्वादशी विक्रम संवत १४५४ बताते हैं।

प्रशस्ति के पर्यालोचन से प्रगट होता है कि इसमें वसन्तपुर के चौलुक्य राजवंश की कुलावृत प्रारंभ से लेकर लेखक के समय पर्यन्त दिया गया है। प्रशस्ति के अनुसार वसन्तपुर की वंशावली निम्न प्रकार से होपी है।
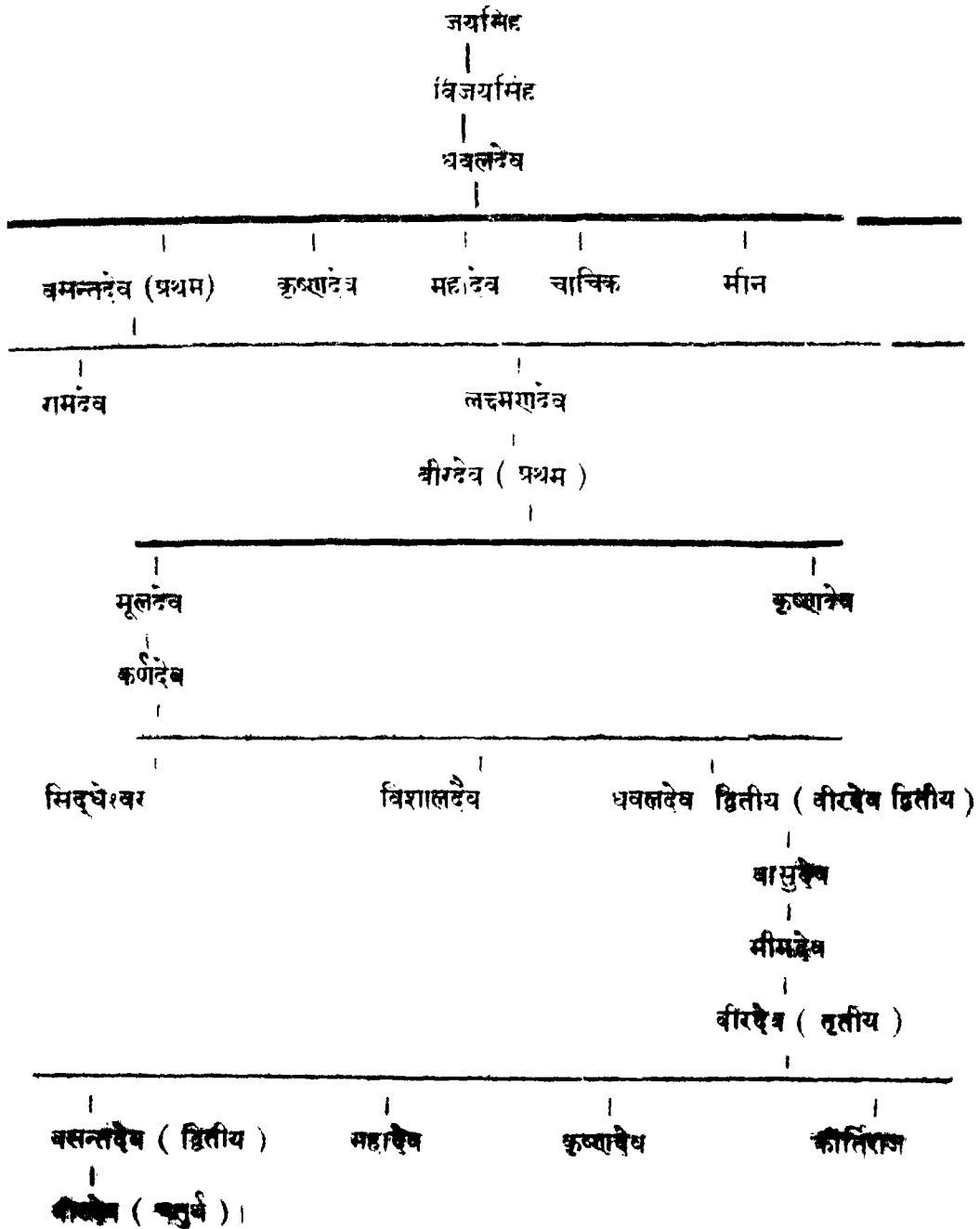
वंशावली पर दृष्टिपात करने से प्रगट होता है कि इसमें वंश श्रेणी की संख्या १४ और गद्दी पर बैठने वाले राजाओं की संख्या १३ है। वंशावली के पर्यालोचन से प्रगट होता है कि राज्य संस्थापक विजयसिंह के पिता जयसिंह का वसन्तपुर राज्य से कुछ भी सम्बंध नहीं था। इसके अतिरिक्त छठे राजा के पिता मूलदेव और तेरहवें राजा वीरदेव चतुर्थ के पिता वसन्तदेव द्वितीय गद्दी पर नहीं बैठे। क्योंकि मूलदेव की मृत्यु उसके भाई कृष्णदेव के हाथ से और वसन्तदेव द्वितीय की मृत्यु युद्ध में किसी शत्रु के हाथ से हुई थी। अतः वंशावली में राजाओं की संख्या ११ होनी चाहिए। किन्तु संख्या १३ है। इसका कारण यह है कि छठे राजा कर्णदेव की मृत्यु पश्चात उसके तीनों पुत्रों ने राज्य किया और छोटे पुत्र धवलदेव से वंश तंतु का आगे विस्तार हुआ।

प्रशस्ति लिखे जाने की तिथि विक्रम सम्वत् १४४४ है। इधर कृष्णानंद की शिला प्रशस्तिका समय विक्रम संवत् १४३८ है। उक्त प्रशस्ति में भी वसन्तपुर की रानी से धन पाकर मन्दिर बनाने का स्पष्ट उल्लेख है। प्रस्तुत प्रशस्ति में अंतिम राजा वीरदेव के दादा और दादी महाराज रामदेव और महारानी सीतादेव की भूरि २ प्रशंसा दृष्टिगोचर होती है। इससे प्रगट होता है कि प्रशस्तिकार को मन्दिर बनानेके लिये महाराज रामदेव की रानी सीतादेवी से धन मिला था और वे दोनों मंदिर की प्रशस्ति लिखे जाते समय वसन्तपुर सिंहासन पर आसीन थे। इधर प्रशस्ति में रामदेव को अपनी मृत्यु के पूर्व ही पुत्रों को जागीर देने और पौत्र वीरदेव को गद्दी पर बैठाने का उल्लेख है। एवं वीरदेव को गद्दी पर बैठाने के पश्चात उसकी मृत्यु का होना प्रगट होता है। अतः इससे प्रगट होता है कि या तो रामदेव अधिक रुग्ण था अथवा उसकी मृत्यु के पूर्व होने वाले युद्ध में वह लड़ता हुआ घोर रूप से आहत हुआ था। इन सब कारणों को लक्ष कर हम कह सकते हैं कि प्रशस्ति लिखे जाने और वीरदेव का राज्यारोहण समय दोनों एक हैं। और वह विक्रम संवत १४४४ है।

प्रशस्ति में प्रशस्ति की तिथि के अतिरिक्त किसी भी राजा के राज्यारोहण आदि का समय नहीं दिया गया है। परन्तु राज्य संस्थापक विजय का शासन पत्र हमें विक्रम संवत ११३९ का प्राप्त है। अतः राज्य संस्थापना और प्रशस्ति की तिथि में ३०५ वर्ष का अन्तर है। अब यदि हम अन्तिम राजा वीरदेव को छोड़ देवें, क्योंकि प्रशस्ति उसके राज्यारोहण वर्ष में लिखी गई थी, तो राजाओं की संख्या केवल १२ ही रह जाती है। अतः हमें इनका समय ज्ञात करने के लिये ३०५ वर्ष को १२ में बांटना पड़ेगा परन्तु इन १२ राजाओं में तीन राजा सहोदर आई हैं अतः उनका औसत कम पड़ेगा तथापि हम बराबर औसत मानते हैं। उक्त समय ३०५ को १२ में विभक्त करने से प्रत्येक शासन करने वाले राजा के लिए २५ वर्ष ५ महीने उपलब्ध होता है। इस औसत काल की परीक्षा करने के लिए हमारा साधन राज्य संस्थापक विजय और अन्तिम राजा वीरदेव के मध्यवर्ती पांचवें राजा वीरदेव प्रथम विक्रम संवत १२३५ का और छठे राजा कर्णदेव का विक्रम संवत १२७७ का शासन पत्र उप-

लब्ध है। वंश संस्थापक विजय और चौथे राजा रामदेव के पर्यन्त चार राजाओं का सामूहिक समय ८६ वर्ष है। और प्रत्येक के लिए औसत २२ वर्ष का पड़ता है। छठे राजा कर्णदेव और १२ वें राजा वीरदेव तृतीय के पर्यन्त सात राजाओं का सामुहिक समय १६८ वर्ष है। इसको सात राजाओं में बांटने से प्रत्येक का औसत राज्य काल २४ वर्ष प्राप्त होता है। हम ऊपर बता चुके हैं कि पांचवें राजा वीरसिंह का राज्य काल १२३५ से १२७६ पर्यन्त ४१ वर्ष है। अतः सम्भव है कि किसी अन्य राजा ने भी कुछ अधिक लम्बे काल पर्यन्त राज किया हो। इस कारण प्राप्त औसत काल में किसी प्रकार की आपत्ति का समावेश नहीं।

प्रशस्ति कथित वंशावली और तद्भावी राजाओं के समयादि का विवेचन करने पश्चात हम अन्य बातों के विवेचन में प्रवृत्त होते हैं। प्रशस्ति कथित स्थानों का वर्तमान समय में कुछ परिचय मिलता है या नहीं, वीरदेव के पुत्र कृष्णराज का क्या हुआ और अन्तोगत्वा वसन्त पुर राज्य पर आक्रमण कर उसे लूटने वाला कौन था प्रभृति तीन विषय का विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। अतएव हम निम्न भाग में इस विषय में यथा साध्य विचार करने का प्रयत्न करते हैं।

प्रशस्ति कथित स्थानों का अवस्थान आदि विचार करने के पूर्व कथित नगरों की संख्या आदि का ज्ञान प्राप्त करना असंगत न होगा। प्रशस्ति में सर्व प्रथम मंगलपुरी का उल्लेख है। मंगलपुरी के वर्णन में प्रशस्ति के दो श्लोक लगे हैं। उनसे प्रगट होता है कि दण्डकारण्य में दुर्ग और चक्रों से वेष्ठित तथा अनेक देवमन्दिरों से युक्त इन्द्रपुरी के समान मंगलपुरी नामक नगरी थी। अनन्तर तीसरे श्लोक से ज्ञात होता है कि विजयसिंह उसमें चौलुक्य वंश का प्रथम राजा हुआ। इसके अतिरिक्त मंगलपुरी के सम्बन्ध में यही ज्ञात होता है कि वह दक्षिणा पथ में थी। हमारी समझ में कथित विवरण से वास्तव में मंगलपुरी के अवस्थान का और उसके वर्तमान अस्तित्व का परिचय पाने का प्रयास पंगुके हिमालय अतिक्रमणके समान निरर्थक है। भारतीय पुराणादि के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मनु के पुत्र दण्ड के नामानुसार विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण भाग का नाम दण्डकारण्य पड़ा। पुनश्च पुराणों से प्रगट होता है कि नर्मदा नदी के दक्षिण का प्रदेश दक्षिणापथ कहलाता था। वाल्मीक रामायण से नर्मदा के दक्षिण वाले भूभाग का अर्थात नासिक के चतुर्दिक वर्ती प्रदेशका नाम दण्डकारण्य विदित होता है। परन्तु महाभारतमें दण्डकारण्यके बाद चोल-पांड्य आदि भूभागके अनन्तर दक्षिणापथका आरंभ प्रगट होता है। ऐसी दशा में प्रशस्ति कथित दक्षिणापथ दण्डकारण्य में अवस्थित मंगलपुरी का अवस्थान निश्चित करना अत्यन्त दुसाध्य है। परन्तु हमारे सौभाग्य से मंगलपुरी राज्य के संस्थापक केशरी विक्रम विजयसिंह देवका शासन पत्र संवत ११४९ विक्रमका मिल गया है। इस में मंगलपुरी के अवस्थान का परिज्ञापक आकाङ्क्ष्य सूत्र उपलब्ध है। उक्त शासन पत्र में विजय-पुर नामक स्थान का अवस्थान सह्याद्रिगिरि के उपत्यका में वर्णन किया गया है। सह्याद्रि पर्वत

विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण भाग का नाम दण्डकारण्य पड़ा । पुनश्च पुराणों से प्रगट होता है कि नर्मदा नदी के दक्षिण का प्रदेश दक्षिणापथ कहलाता था । वाल्मीकी रामायणसे भी नर्मदा के दक्षिण वाले भूभाग का अर्थात नासिक के चतुर्दिक वाली प्रदेश का नाम दण्डकारण्य विदित होता है । परन्तु महाभारत में दण्डकारण्य के बाद चोलपांड आदि भूभाग के अनन्तर दक्षिणापथ का प्रारंभ प्रगट होता है । ऐसी दशा में प्रशस्ति कथित दक्षिणापथ दण्डकारण्य में अवस्थित मंगलपुरी का अवस्थान निश्चित करना अत्यन्त दुसाध्य है । परन्तु हमारे सौभाग्य से मंगलपुरी राज्य संस्थापक केशरी विक्रम विजयसिंह देव का शासन पत्र संवत ११४१ विक्रम का मिल गया है । इस में मंगलपुरी के अवस्थान का परिज्ञापक आवश्यक सूत्र उपलब्ध है । उक्त शासन पत्र में विजयपुर नामक स्थान का अवस्थान सह्याद्रिगिरी के उपत्यका में वर्णन किया गया है । सह्याद्रि पर्वत श्रेणी का प्रारंभ तापी नदी के दक्षिण से लेकर मैसूर राज्य पर्यन्त चला गया है । यदि विजयपुर का विशेष परिचय तापी नदी के तट पर न बताया गया होता तो इस शासन पत्र से भी मंगलपुरी के अवस्थान संबंध में कुछ भी सहायता न मिलती । मंगलपुरी का अवस्थान उक्त शासन पत्र के अनुसार उसके विवेचन में पूर्ण रूपेण विचार करने के पश्चात बड़ोदा राज्य के सोनगढ़ तालुके में तापी नदी से लगभग २५-३० मील दक्षिण और पूर्णा नदी के उद्गम स्थान से लगभग १०-१४ मील उत्तर में निश्चित कर चुके हैं और प्रशस्ति तथा शासन पत्र कथित मंगलपुरी को वर्तमान मंगलदेव नामक स्थान सिद्ध कर चुके हैं । अतः यहां पर पुनः विवेचन क्षेत्र में प्रवृत्त होना एवं युक्तिओं तथा प्रमाणों का अवतरण देना अनावश्यक मान अपने पाठकों का ध्यान उक्त शासन पत्र के विवेचन प्रति आकृष्ट करते हैं ।

मंगलपुरीके अनन्तर प्रशस्ति में दूसरे स्थान का नाम विजयपुर है । विजयपुर के संबंध में कुछ भी विवरण नहीं पाया जाता । श्लोक चार के पूर्वार्ध से प्रगट होता है कि विजयसिंह ने अपने राज्य में विजयपुर नामक नगर बसाया था । हम पूर्व में विजयसिंह के शासन पत्र का उल्लेख करके बता चुके हैं कि मंगलपुरी का अवस्थान निर्णायक विजयपुर है । अतः विजयपुर का अवस्थान ज्ञापक अन्य प्रमाण प्राप्त करने के स्थान में उक्त शासन पत्र के विवेचन प्रति पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं ।

प्रशस्ति में तीसरे स्थान का नाम वसन्तपुर है । इसका परिचय हमें प्रशस्ति के श्लोक ६ में मिलता है । उक्त श्लोक से प्रगट होता है कि रामदेव ने वसन्तपुर नामक सुन्दर नगर बसाया था । पुनः प्रशस्ति के श्लोक ६ के उत्तरार्ध से प्रगट होता है कि वीरसिंह ने शत्रुओं का नाश कर वसन्तपुर को अपनी राज्यधानी बनाया । इसके अतिरिक्त प्रशस्ति में वसन्तपुर का कुछ भी परिचय नहीं । मिलता हां वीरसिंह के विक्रम संवत १२३४ के शासन पत्र में बसंतपुर का ज्ञापक चिन्ह है । उक्त शासन पत्र के विवेचन में हम सिद्ध कर चुके हैं कि वसन्तपुर पूर्णा नदी के

समीप बसा था और संप्रति वसन्तपुर का अवशेष अन्तापुर के रूपमें पाया जाता है। पाठकों से आग्रह है कि विशेष विवरणके लिए वीरसिंह के कथित शासन पत्र का विवेचन अवलोकन करे।

प्रशस्ति में चौथे स्थान वासुदेवपुर का उल्लेख है। श्लोक २० से प्रगट होता है कि भीम ने अम्बीका और कुलसनी नदियों के मध्य वेणुवन के बीच विष्णु मन्दिर से युक्त वासुदेवपुर नामक भव्य नगर बसाया था। श्लोक ३० के उत्तरार्ध से प्रगट होता है कि रामदेव ने वासुदेवपुर को अपनी राज्यधानी बनाया। इसके अतिरिक्त वासुदेवपुर के संबध में कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता। अतः हमें विचारना है कि प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर कहां पर अवस्थित था और संप्रति उसका अस्तित्व है या नहीं।

प्रशस्ति के अतिरिक्त दुर्भाग्य से हमारे पास वासुदेवपुर का ज्ञापक अन्य साधन नहीं है। अतः हमें वासुदेवपुर के अवस्थान और वर्तमान अस्तित्व निर्णय करने में केवल अनुमान और बाह्यप्रमाणों से काम लेना होगा। अम्बीका नदी सह्याद्रि पर्वत के मूल से पश्चिम उत्तर भागी डांग नामक भूभाग के पहाड़ों से प्रारंभ होती और प्रथम कुछ दूर लगभग १४-२० मील तक सीधे पश्चिम बह कर कुछ दूर उत्तराभिमुख बहती है। अनन्तर पश्चिमाभिमुख मार्ग का अवलम्बन कर बड़ोदा राज्य के व्यारा नामक तालुका में प्रवेश करती और पश्चिमोत्तर गामी होती है। एवं व्यारा तालुका का अतिक्रमण कर ब्रिटीश इलाके के सूरत जिला के चिखली तालुका में प्रवेश कर उसका अतिक्रमण करती है। बाद को बड़ोदा के गणदेवी तालुका में पूर्णा और कावेरी का जल लेकर खाड़ी में गिरती है। अम्बीका डांगसे निकले पश्चात और व्यारा तालुका में प्रवेश करने के पूर्व बांसदा राज्य में बहती है।

अम्बीका और कुलसनी के उद्गम स्थान से लेकर समुद्र समागम पर्यन्त दोनों कूलों पर कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जिसे हम प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का अवशेष कह सकें। हां अम्बीका जल प्लावित कुछ भूभाग पर बांसदा नामक चौलुक्योंका राज्य है। बांसदा की राज्यधानी का नाम भी बांसदा है। बांसदा और वासुदेवमें नाम साम्य पाया जाता है। वासुदेवका रूपान्तर बांसदा हो सकता है। यदि हम यहांपर वासुदेवके रूपान्तर बांसदाके परिवर्तन पर कुछ प्रकाश डाले तो असंगत न होगा क्योंकि पूर्व में प्राक्कथन पृष्ठ ४६ में बांसदा राज्यवंश के परम्परानुसार उनके वासुदेवपुर वालों का वंशधर होनेकी संभावना प्रगट कर चुके हैं। एवं अपनी पुस्तक "लाटचे मराठी ऐतिहासिक लेख" के प्रस्तावना पृष्ठ में अपनी पूर्व कथित संभावना को स्थान दे चुके हैं।

कथित परिवर्तन नीति के अनुसार वासुदेव का बांसदा निम्न प्रकार से हो सकता है। वासुदेव से वासदेव। वासदेव से वासदे। वासदे से वासदो। और वासदो से वासदा। वासदो

और बामदाका उर्दू लिपि में लिखने पर इतनाकम अन्तर होगा कि बिना सूक्ष्म विचारके उक्त अन्तर परखा नहीं जा सकता। पुनश्च बामदाका बामदे नामसे अभिहित होनेका हमारे पास लगभग २०० वर्ष का प्रमाण। सन १६७० के मराठी पत्र में बांसदा का उल्लेख बामदे नाम से किया गया है। परंतु वर्तमान बांसदा नगर को प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का अवशेष होने के संबंध में अनेक बाधाए विकराल रूप धारण कर सामने खड़ी है। प्रथम बाधा बांसदा का अवस्थान है क्यों कि बांसदा कावेरी नामक नदी के कुलमें बसा है। दूसरी बाधा बांसदा की नवीनता। वर्तमान बांसदा नगर के निर्माण का सूत्रपात सन १७७४–७६ के मध्य महारावल वीरसिंह ने किया था। इसके विपरित प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का निर्माण आज से लगभग ४१६-१७ वर्ष पूर्व होना चाहिए क्यों कि इसके निर्माता सोमदेव का राज्यारोहण लगभग संवत १३९४ विक्रम में हुआ था।

वर्तमान बांसदा नगर को प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का अवशेष या रूपान्तर होने के प्रतिकुल उद्भावित शंकाद्वय के परिहार में हम प्रवृत्त होते हैं और प्रथम शंका अर्थात बांसदा की अर्वाचीनता संबंधी आपत्ति का समाधान करते हैं। यह बात ठीक है कि वर्तमान बांसदाका निर्माण बांसदा की परंपरा के अनुसार लगभग १७६ वर्ष पूर्व हुआ था। इसका समर्थन मराठी ऐतिहासिक लेखोंसे भी होता है। परन्तु साथही बांसदाकी परंपरासे यह भी प्रगट होता है कि बामदाका निर्माण वर्तमान बांसदा नरेश श्रीमान महाराजा श्रीइन्द्रसिंहजी से २७ वीं पुश्त पूर्व होने वाले वसन्त देव के पुत्र वीरमदेव ने किया था। एवं बांसदा वालों को दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी से मान प्राप्त हुआ था। पुनश्च बांसदा की परम्परा से प्रगट होता है कि वर्तमान बांसदा बसाये जाने के पूर्व बांसदा की राज्यधानी नवा नगर मे थी। उक्त स्थान बांसदा से दो मील की दूरी पर है। जहां पर पुरातन नगरका अवशेष आज भी पुरातन बांसदाका गौरव द्योतन करता है। एवं मराठी लेखों से बांसदा की राजधानी मे गोमुख और कर्दमेश्वर का होना सिद्ध है। ये दोनों स्थान वर्तमान बांसदा में नहीं नवानगर में आज भी टूटी फूटी अवस्था में दृष्टिगोचर होते हैं। अब यदि बांसदा नगर बसाने वाले, २७ वीं पुश्त में होने वाले, वीरमदेव का समय निकाला जाय तो वह कम से कम आज से ४२० वर्ष पूर्व होगा। वर्तमान महाराज इन्द्रसिंहजी का राज्यरोहण सन १९११ मे हुआ था। अतः हमें सन १९११ में से ४२० को घटाना न पड़ेगा। इस प्रकार बांसदा का अस्तित्व ई. स. १३९१ तदनुसार संवत १४४८ विक्रम में चला जाता है।

इसके अतिरिक्त पारसिओंके इतिहास से बांसदा या बांसदो नामक राज्यका अस्तित्व-४०० वर्षके पुराणे लिखित ग्रंथ के आधर पर विक्रम संवत १४८४ तदानुसार इस्वी १४२७ के पूर्व चला जाता है। इससे भी सिद्ध होता है कि वर्तमान बांसदा नगर कथित बांसदा राज्य की राज्यधानी

न था। यद्यपि बांसदा की परंपरा और पारसिओं के इतिहास कथित बांसदा की प्राचीनता के मध्य ३६ वर्ष का अन्तर है तथापि हम बांसदा की परंपरा को प्रमाणिक मानते हैं क्योंकि पारशिओं के इतिहास में बांसदा नगर के निर्माण का समय नहीं वरण अस्तित्व के समय का उल्लेख हैं। क्योंकि हम देखते हैं कि पारसिओं के इतिहास में उनको बांसदा के राजा से आश्रय मिलने का उल्लेख है।

बांसदा राज्य की परंपरा और पारसिओं के इतिहास के आधार पर बांसदा राज्य और बांसदा नगर का अस्तित्व को संवत १४४८ के लगभग सिद्ध करनेके पश्चात हम प्रशस्ति कथित बांसुदेवपुर और बांसदा के अस्तित्व के अन्तर का विचार करते है। प्रशस्ति के बांसुदेवपुर का निर्माण काल लगभग संवत १३६४ विक्रम है। इस प्रकार दोनों में ४४ वर्ष का अन्तर पड़ता है। यहां पर हम बांसदा के परंपरा कथित वंशावली के २० वर्ष औसत के अनुसार प्राप्त बांसदा के अस्तित्व काल १४४८ को पटतर करते हैं। इसको पटतर करने का कारण यह है कि वसन्तपुर-बांसदेवपुर के राजाओं का औसत काल २२ वर्ष ४ महिना है। यही औसत तत्कालीन वातापि कल्यण के चौलुक्य, दक्षिण कोकण (कर्हाट और कोल्हापुर) उत्तर कोकण (स्थानक) के शिल्हरा, लाट नंदिपुर के चौलुक्य और पाटण के सोलंकी आदि सभी राजवंशो का पाया जाता है। अतः वंशावली कथित २६ राजाओं के लिए यदि हम केवल २२ वर्ष का ही औसत देवे तो ५७२ वर्ष सामुहिक समय प्राप्त होगा। इस ५७२ वर्ष को वर्तमान बांसदा नरेश के राज्यारोहण समय १६११ में से घटाने पर इ. स. १३३६ तदनुसार संवत १३६६ विक्रम हैं। यह समय प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर के निर्माण कालसे पूर्णरूपेण मेल खाता है। अतः हम निःशंक हो कर कह सकते है कि बांसदा की अर्वाचीनता संबंधी आशंका का पूर्ण रूपेण समाधान हो चुका।

यद्यपि बांसदा की अर्वाचीनता संबंधी आशंका का समाधान हो चुका तथापि वर्तमान बांसदा नगर में जब पुरातन बांसदा के गौरव का द्योतन प्राचीन नगर के अवशेषावशेषका पूर्ण अभाव होने के कारण बांसदा की अर्वाचीनतात्मक आशंका का परिहार का होना या न होना दोनों बराबर है। हमारे पाठकों को अवगत है कि हम पूर्व में बता चुके है कि वर्तमान बांसदा से लगभग दो मील की दूरी पर नवानगर स्थान में पुरातन नगर का अवशेष है। वहां पर पुरातन नगर के गौरव को द्योतन करने वाले अनेक मन्दिरों और प्रासादों का ध्वंश पाया जाता है। मन्दिरकी निर्माणकी कला और उसमें लगी हुई ईंटोंसे स्पष्टतया प्रकट होता है कि उक्त नगर छ सात सौ वर्ष पूर्व अपने भव्य राज्य महलों और मन्दिरोंसे आगन्तुको को चकित करता होगा। नवानगर के चारो तरफ नगर का अवशेष पाया जाता है। इतनाही नहीं नदी को बन्ध द्वारा रोक कर नगर को जल देने के लिये किये गये प्रबन्ध का आज भी नदी में अवशेष पाया जाता है।

अतः उक्त नगर को पुरातन बांसदा नगर मान लेनेसे सारी आपत्तियां अपने आप टल जाती हैं। परन्तु उक्त स्थान के साथ नवानगर विशेषण और विष्णु मन्दिर का अभाव प्रकट करता है कि उक्त स्थान प्रशस्ति कथित वासुदेवका रूपान्तर नहीं हो सकता। क्योंकि नवानगर विशेषण किसी दूसरे पुराणे नगर का अस्तित्व द्योतन करता है। और साथ ही उक्त स्थानमें विष्णु मन्दिर न हो कर शिवमन्दिर आज भी उपस्थित पाया जाता है। किन्तु प्रशस्तिके वासुदेवपुरमें विष्णु मन्दिर का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसका समाधान यह है कि वासुदेव के समीप में किसी राजा ने उपनगर बसाया होगा जो नवानगर के नाम से विख्यात हुआ होगा। संभवतः उपनगर बसाने वाले राजा ने अपना निवास वहां पर बनाया हो। और उसके निवास के कारण नवानगर अधिक प्रसिद्धि प्राप्त किया हो। ऐसी दशा में नवा नगर के समीप ही किसी पुरातन नगर का अवशेष होना चाहिए। नवा नगर से कुछ दूरी पर कावेरी नदी के दूसरे तट पर आज भी मन्दिर और मकानों का अवशेष पाया जाता है। उक्त स्थान को १०० रानी की देहरी कहते हैं। उसके अति-रिक्त नवा नगर और वर्तमान बांसदा के मध्य में वांसीयातलाव नामक गांव है। इन सब बातो को लक्ष कर नवा नगर बांसदा को ही प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का अवशेष मानते हैं।

इतना होने पर भी हम न तो नवा नगर बांसदा अथवा उसके समीप वर्ती वांसीया-तलाव को प्रशस्ति कथित बांसदा मान सकते हैं। क्यों कि जिस प्रकार वर्तमान बांसदा कावेरी नदी के तटपर बसा है उसी प्रकार नवा नगर बांसदा भी है। प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का परि-चायक अम्बीका नदी वेणुकुन्ज है। जिसका बांसदा के साथ शब्दार्थसंगवन है। प्रशस्ति के श्लोक संख्या २० काओर पूर्वार्ध 'अम्बीका कुलसन्योस्सुवेणुकुन्जसमन्विते' है।इसवाक्यके उत्तरार्ध "सुवेणु कुन्ज समन्विते' के संबन्ध में कोई मतभेद नहीं है। परन्तु पूर्वार्ध 'अम्बीका कुल सन्यो' के संब-न्ध में कुछ संदेह को स्थान मिलता है। क्योंकि उसमें से जबतक "अम्बीका कुल" और 'सन्योः' दोनों को भिन्न पद नहीं मानते तबतक 'अम्बीका नदीके तटपर' ऐसा अर्थ नहीं हो सकता। और ऐसा अर्थ करनेके लिये 'अम्बीकाकुल'को 'सन्योः'से विभाजित करते ही 'सन्योः' निर्थक होजाता है। अतः हमें 'अम्बीकाकुलसन्यों' को समासांत द्विवचन पद मानना होगा। इसे द्विवचनान्त पद माननेसे इसका अर्थ 'अम्बीका कुलसनी' और इसको "सुवेण कुन्ज समान्विते," के साथ मिलानेसे अर्थ होगा 'अम्बीका कुलसनी के सुन्दर वेणु कुन्ज में' जिसका भावार्थ होगा कि अम्बीका और कुलसनी नदियों के मध्य सुन्दर वेणु कुन्ज में। अतः प्रशस्ति कथित वासु-देवपुर अम्बीका के तटदर नहीं वरण अम्बीका और कुलसणी के मध्य वेणु कुन्ज में बसा था। अतः हमें प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का यथार्थ परिचय पाने के लिये 'कुलसनी नदी का परिचय प्राप्त करना होगा। अम्बीकाके दोनों पार्श्वो पर बहने वाली नदियां झासरी कोस और औलाणा है इनमें झासरी और कोस अम्बीका के वाम पार्श्व और ओलाण दक्षिण पार्श्व में बहती है। इन तीनो नदियों में से कोई भी ऐसी नहीं जिसे हम' कुलसनी' का

का नाम वाचक कह सके" इन नदियों के बाद अम्बीका के दक्षिण पार्श्वमें पूर्णा और वाम पार्श्व में कावेरी हैं। न तो पूर्णा ही और न कावेरी ही 'कुलमनी' का रूपान्तर प्राप्त कर सकती है। ऐसी दशामें हमें कहना पड़ेगाकि 'कुलमनी' इन नदियों मेंसे किसीका भी नामांतर नहीं है। अतः हमें भौगोलिक अन्वेषण को छोड़ साहित्य समुद्र का द्वार खटखटाना होगा।

पाटण के चौलुक्यों के ऐतिहासिक जैनाचार्य मेरुतुंग अपनी पुस्तक प्रबंध चिंतामणि में लिखते हैं। कुमारपाल अपनी राज सभा में बैठा था। इतने में बहुतसे सिलुक उपस्थित हुए और कोंकणपति मल्लिकार्जुनका उल्लेख 'राज पितामह' के नामसे करके उसका गुणगान प्रारंभ किया। मल्लिकार्जुन का विरुद्ध 'राज पितामह' सुनकर कुमारपाल की भृकुटी तन गई और उसने अपने सैनिकों के प्रति दृष्टिपात किया। उदयन मन्त्रीका पुत्र आम्रभट्टने, कुमारपालका अभिप्राय जान हाथ जोड़ सामने आकर मल्लिकार्जुन का मान मर्दन करने की आज्ञा मांगी। कुमारपाल ने आम्रभट्ट को एक बड़ी सेना के साथ मल्लिकार्जुन पर आक्रमण करने लिये भेजा। वह सेना के साथ पाटण से चलकर कलावीर्णा नदी के पास उपस्थित हुआ और बड़े कष्ट के साथ उसे पारकर दूसरे तट पर छावनी डाला। परन्तु मल्लिकार्जुन ने उसे मार भगाया। आम्रभट्ट पुनः सेना लेकर कोंकण पर चढ़ा। इसबार उसने कलावेर्णा नदी में सेतु बनाकर समस्त सेना दूसरे तटपर उतारा और रणक्षेत्र में मल्लिकार्जुन को पराभूत किया।

उद्धृत अवतरण से प्रगट होता है कि मेरुतुगाचार्य की 'कलावीर्णा' कोंकण और लाट की सीमा पर बहने वाली नदी थी। मेरुतुगाचार्य के इस कथानक को बंबई गॅजेटियर वोल्यूम १–पार्ट १ के पृष्ठ १८५ में निम्न प्रकार से दिया गया है।

Another of Kumarpal's recorded victories is over Mallikarjun said to be the king of Kokan, who, we know from published list of the North Konkan Silharas, flourished about A. D. 1160. The author of Prabandhchintamani says this war arose from the Bard of the king Mallikarjun speaking of him before king Kumarpal as Rajpitamah or Grand-father of Kings. Kumarpal annoyed at so arrogant a title looked around. Ambada, one of the sons of Udayan, divining the king's meaning, raised his folded hands to his forehead and expre-ed his readiness to fight Mallikarjun. The king sent with him an army which marched to the Konkan without haulting. At the crossing of the Kalvini * it was met and defeated by Mallikarjan.

मेरुतुंगाचार्य के कथन का भावार्थ देने पश्चात गेझेटीअर कार इस पृष्ठ के पाद टीपनी में कालवेणी के संबंध में निम्न प्रकार से लिखते हैं।

Foot Note:-

This is the Kaveri River which flows through Chikhali and Bulsar. The name in the text is very like Karbena the name of the same river in Nasik cave inscriptions (Bom. Gaz. XVI. 571). Kalveni and Karbena being Sanskritised forms of the original Kaveri.

प्रस्तुत पाद टीपनी में कलवेणा का अभिन्नत्व सिद्ध करने के साथ ही एक दूसरा नाम करबेणा नासिक के लेखानुसार प्रगट करते हैं। यदि हम यहां पर नासिक शिला लेखका अवतरण देवें तो असंगत न होगा। अतः उक्त लेख के उपयुक्त अंश का अवतरण देते हैं।

१—"सिद्ध राज्ञ. क्षहरातस्य क्षत्रपस्य नहपानस्य जामाता दीनीकपुत्रेण उपवदत्तेन त्रीगो शत सहस्रदेन नद्या वर्णासायां सुवर्ण दान तीर्थकरेण देवताभ्य ब्राह्मणेभ्यश्च षोडशग्रामदेन अनुवर्षम् ब्राह्मण शत सह भोजायित्रा"

२—"प्रभासे पुण्यतीर्थे ब्राह्मणेभ्य अष्टभार्या प्रदेन भरूकच्छे दशपुरे गोवर्धने सोपारगे च चतुशाला वसध प्रतिश्रये प्रदेन आराम तडाग उदपान करेण इबा पारदा दमण तापी करवेण दहनुका नावापुन्य तरकरेण एतायां च नदिनाम उभय तो तीरं सभा

३—प्रपाकरेण पिंडित कावडे गोवर्धने सुवण मुखे शोपारगे च रामतीर्थे चरक पर्षभ्य ग्रामे नान गोले द्वात्रीशत नालीगेर मुल सहस्र प्रदेन गोवर्धने त्रिरश्मिसु पर्वतेषु धर्मात्मना इदं लेनं कारितं इदं इमा च पोढिओ।

इस लेख के पर्यालोचन से प्रकट होता है कि क्षहरातवंशी क्षत्रप नहपान के जामाता दिनिक पुत्र धर्मात्मा उपवदत्तने-जिसने वर्णासा नदी में घाट बनाकर सुवर्ण दान दिया था-प्रत्येक वर्ष एक लक्ष ब्राह्मणों को भोजन कराता था-प्रभास क्षेत्र में आठ ब्राह्मणों का विवाह कराया था-भृगुकच्छ में धर्मशाला बनवाया-दशपुर में बगीचा-गोवर्धन में तलाव-सुपार्ग में कुवा-इब-पारदा-दमण-तापी-करवेणा और दाहनुका नामक नदिओं के ऊपर नावका पुल बना यात्रिओं को निःशुल्क नदी उतरने का मार्ग प्रशस्त किया। एवं इन नदिओं के दोनों तटों पर धर्मशाला और

परव बनवाया और नालंगोला गांव में २५००० नारियल के वृक्ष दान में दिये तथा गोंवर्धन के त्रिरश्मी पर्वत में गुफा और पोढ़िश्रा बनवाया।

उषवदत्त की प्रस्तुत प्रशस्ति से स्पष्ट प्रकट होता है कि कोंकण से लेकर सीधे उत्तर में मालवा के दशपुर अर्थात वर्तमान मन्दसोर और मन्दसोर से सीधे पश्चिम में आबु पर्वतमाला के नीचे दक्षिणमें बहने वाली वर्णासा (वर्तमान बनास) नदी तथा आबुसे पश्चिमोत्तरमें अवस्थित सौराष्ट्र देशके प्रभास क्षेत्र पर्यन्त प्रसिद्ध २ स्थानों और नदिओं का इसमें उल्लेख किया गया है। प्रशस्ति में सर्व प्रथम वर्णासा नदी का उल्लेख है इसके बाद वर्णासा से दक्षिण पश्चिम अवस्थित प्रभास क्षेत्र–प्रभास के बाद उसके समय में खाडी के द्वितीय तट पर पूर्व दिशा में अवस्थित नर्मदा तटके प्रसिद्ध नगर भृगुकच्छ (वर्तमान भरोच) का उल्लेख है। भरोचके बाद इबा—पारदा–तापी—दमण—करवेणा—दहनुका का वर्णन है। इनमें तापी नदी का परिचय सूर्यप्रकाशवत सर्व विदित है। पारदा—दमण और दहनु का वर्तमान थाणा जिलामें बहने वाली नदियां हैं। वे वर्तमान समय पार—दमणगंगा और दाहणु नामसे प्रसिद्ध है। इनका थाणा जिला में निम्न प्रकार से अवस्थान है। दाहणु सबसे उत्तर में दमणगंगा और दमणगंगा से उत्तर में पार नदी है।

प्रशस्ति कथित पारदा नदी पारडी नामक पहाड़ के समीप बहती है। बी. बी. एन्ड सी, आइ. रेलवे के पारडी नामक स्टेशन से उत्तर में बलसाड है। बलसाड और बीलीमोरा के बीच कावेरी नदी रेलवे लाइन को पार कर कुछ दूर समुद्राभिमुख गमन करने के पश्चात अम्बीका नदी से मिलती है। अम्बीका को पार करने के पश्चात और उत्तर में जाने पर सूरत के पास तापी बहती है। दाहणु के दक्षिण में प्रशस्ति का सुरपारग वर्तमान सुपारा है। अतः हम निःशंक हो कर कह सकते हैं कि प्रशस्ति में सुपारा और भरूच के मध्यवर्ती नदिओं का उल्लेख है। कथित नदिओं में दमण और तापी का नाम आज भी ज्यों का त्यों है। दाहणुका और पारदाके नाम में कुछ परिवर्तन हुआ है। संप्रति दाहणुक का दाणुक और पारदा का पार बन गया है। यदि देखा जाय तो प्रशस्ति कथित इन दोनों नदिओं के नाम का अंताक्षर मात्र छुटकर वर्तमान नाम बना है वरना उनमें कुछ भी अन्तर नहीं है।

पार और तापी नदी के मध्य में बहने वाला कावेरी—अम्बीका—पूर्णा और मीढोल नामक चार नदियां हैं। इनमें से कावेरी को मेरुतुन्ग ने कलवेणा के नाम से उल्लेख किया है। प्रशस्ति कथित कुलरेनी और मेरुन्तुग के कलवेर्णा नाम में अधिक साम्यता पाई जाती है। वास्तव में कलवेसा और करवेर्णा में कुछ भी अन्तर नहीं है। क्योंकि संस्कृत साहित्य में रकार के स्थान में लकार और लकार के स्थान में रकार का प्रयोग किया जाता है। उसी प्रकार वेण

और वेणी में कुछ भी अन्तर नहीं है। क्योंकि दोनों पर्याय वाचक है। पारदा और अम्बीका के मध्य में बहने वाली वर्तमान कावेरी नदी है प्रशस्ति कथित करवेणा का अवस्थान निश्चित करने के पश्चात केवल प्रशस्ति कथित इवा नदी का अवस्थान निर्धारित करना शेष रह जाता है। बम्बई गर्झेटिअर वोल्युम १६ पृष्ट १८० के पाद टीपनी में इन नदियों का परिचय निम्न प्रकार से दिया गया है।

"And made Boat-Bridges accross the Eva (Ambica) Parda (Par) Daman (The Daman River) Tapi (Tapti) Karvena (Perhaps the Kaveri) a tributary of the Ambika, apparently the same as the Kalveni accross which the Anhilwada General Ambad had to make a bridge or causeway in leading his army against Mallikarjun the Shilhara King of Kokan"

उधृत वाक्यक अवतरणसे स्पष्टतया हमारे पूर्व कथित सिद्धान्त का समर्थन होता है-। अन्तर केवल इतना ही है कि हम प्रशस्तिकथित इवा नदी का अवस्थान निश्चित करनेमें असमर्थ है कि कावेरी और तापी के मध्य में बहनेवाली अम्बीका— पूर्णा और मीढोला नदियोंमें से किसी के साथ इवाकी नाम साम्यताका लवलेश मात्र भी नहीं पायाजाता। और न उनका परिवर्तित रुपही सुगमता के साथ इवा बन सकता है। हां यदि अम्बीका के स्थान में हम पूर्णाको थोडी देर के लिये इवा मान लेवे तो इसके इवा बनाने की कुछ संभावना है। परन्तु पूर्णाका रुपान्तर इवा खिचखाच तोड़ मरोड तथा परिवर्तन नीति की सर्वथा उपेक्षा करने के बाद ही सकता है।

पूर्णा
।
पुणा
।
उणा
।
इणा
।
इवा

चाहे हमारी यह कल्पना मानी जाय या न मानी जाय परन्तु हम प्रशस्ति कथित इवा को कदापि अम्बिका नहीं मान सकते। क्योंकि अम्बिका का इवा कदापि नहीं बन सकता।

खैर चाहे जो हो इवा कावेरी और ताप्ती के मध्य में बहने वाली कोई नदी होनी चाहिए।

सूरत गभेंटिअर के पर्यालोचन से प्रगट होता है कि तापी से दक्षिण में बहने वाली एक शिवा नामक नदी है। शिवा का रूपान्तर इवा अनायासही हो सकता है। इस रूपान्तर के लिए न तो परिवर्तन नीतिका आश्रय लेना पड़ता है और न खींच खाच तोड़ मरोड करना पडता है। संभव है कि प्रशस्ति लेखक के हस्त दोष से शिवा का सरकार छुट गया हो और उसके स्थान में इवा बन गया। इस कारण हम निःशंक हो कह सकते हैं कि वर्तमान शिवा ही प्रशस्ति कथित इवा है। अब चाहे हम शिवा को इवा माने या पूर्णा को इवा माने या गभेंटिअर के कथनानुसार अम्बिका को इवा माने हमारी न तो कोई हानी है और न हमें कुछ लाभ है। क्योंकि हमारा संबन्ध संप्रति शिवा और इवा से नहीं है। हमें तो करवेणी और कलवेणी—कलवेनी और करवेनी से अधिक प्रेम है और हम अपनी कलवेणी के मुस्ताक होने के कारण सारे झंझटोंको छोड कर आगे बढ़ते हैं।

प्रशस्ति की करवेण, मेरुतुगकी कलवेणी या करवेणी और गभेंटिअर की कालवेणी का नामान्तर हमें कावेरी मानने में कणिका मात्र भी संदेह नहीं है। क्योंकि उत्तर कोकण और लाट को विभाजित करने वाली वर्तमान कावेरी पुरातन करवेणी या कलवेणी से अभिन्न है। वसन्तपुर राज प्रशस्ति कथित कुलसनी या कलसनी और नाशिक गुफा प्रशस्ति कथित करवेणी और मेरुतुन्ग तथा गेझेटिअर कथित कलवेणी में बहुत ही नाम साम्यता है। संभव है कि मेरुतुंग की प्रपन्ध चितामणि की प्रतिलिपि करने वालों के हस्त दोष से कुलसनी वा कलसनी का कलवेणी अथवा कलवीणी बन गया हो। या राज प्रशस्ति की लिपि करने वाले के हस्त दोष से कलवेणी का कुलसनी बन गया हो। चाहे जो हो प्रशस्ति की कुलसनी और मेरुतुन्ग की कलवीणी और गझेटिअर की कलवेणी अभिन्न है।

प्रशस्ति कथित कलसनी को वर्तमान कावेरी का नामान्तर सिद्ध करनेके साथही प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का अवस्थान कावेरी और अम्बीका के मध्य वेणुकुन्ज के बीच अपने आप सिद्ध हो जाता है। वर्तमान वांसदा और नवानगर वांसदा से अम्बीका की दूरी लगभग ५ मील है। अब यदि नवानगर वांसदा से पुरातन वांसदा को लगभग मील देढ़ मील की दूरी पर मान लेवे और ऐसा मानना नदी के दोनों कुलों पर भग्न अवशेषों को दृष्टिकोण में रख का असंगत भी नहीं है तो कहना पडेगा कि नगर के अन्तिमछोर से कुलसनी और अम्बिक दोनों की दूरी समान होगी। अतः प्रशस्ति कार का वासुदेवपुर को कथित दोनों नदियों के मध्य में अवस्थित लिखना पूर्ण रूपेण युक्तियुक्त और तथ्यात्मक है। कथित विवरण को लक्षी-

कृत कर हम प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का रूपान्तर निःशंक हो कर नवानगर-वांसदा को घोषित करते है।

वांसदा को प्रशस्ति कथित वासुदेवपुर का रूपान्तर होने के संबन्ध में पूर्व उद्‌भावित आशंकाओं का आपाद्तः मूलोच्छेद करने और वासुदेवपुर का अवस्थान वर्तमान वांसदा नगर से दो मील पर अवस्थित नवानगर वांसदा के समीप पुरातन नगर का अवस्थान सिद्ध करने के पश्चात प्रशस्ति कथित अन्यान्य स्थानों के अवस्थान आदि का विचार करते है। प्रशस्ति के श्लोक ३१ और ३२ के पूर्वार्ध में कर्मणेय मधुपुर और पार्वत्य नामक स्थानों का उल्लेख है। प्रशस्ति से प्रगट होता है कि कथित तीनों स्थान विषय अर्थात प्रगणा थे। उनमें से रामदेव ने अपने दूसरे पुत्र महादेव को मधुपुर तीसरे पुत्र कृष्ण को कार्मणेय और चोथे पुत्र कीर्तिराज को पार्वत्य दिया था। एवं ज्येष्ठ पुत्र वसन्तपुत्र के पुत्र वीरपुत्र को राज्य दिया था। इस प्रकार अपने राज्य का प्रबन्ध करने पश्चात वह स्वर्गवासी हुआ। एवं उसका स्वर्गवास वासुदेवपुर में हुआ था।

कथित तीनों विषयों में से कार्मणेय को हम तापी तटवर्ती वर्तमान कामरेज जो बड़ोदा राज्यके नवसारी मण्डलका एक तालुका और सुरतसे ११ मीलकी दूरी पर है मानते हैं। इस कामरेज का कार्मणेय नाम से वर्तमान प्रशस्ति से लगभग सातसौ वर्ष पूर्व भावी लाट नवसारिका के चौलुक्य राज जयसिंह धाराश्रय के पुत्र शिलादित्य के शासन पत्र में किया है। एवं पार्वत्य विषय का विचार हम पूर्वोध्धृत विजयसिंह के शासन पत्र के विवेचन में कर चुके है। और पार्वत्य को बरोदा राज्य के सोनगढ़ तालुका के पारघट नामक स्थान सिद्ध कर चुके हैं। अब रहा मधुपुर इसके बारे में हम कह सकते हैं कि यह वर्तमान महुआ नामक नगर का नामान्तर है। वर्तमान महुआ नगर के बीच जैनिओं का विघ्नेश्वर नामक मन्दिर है। उक्त मन्दिर में चार प्रशस्तिया मन्दिर के वासर की लकड़िओं में खुदी हैं। इन लेखों में महुआ का नाम मधुकरपुर लिखा गया हैं। मधुकरपुर का प्रयाग वाचक मधुपुर है। संस्कृत साहित्य के महारथी कविता में स्थान के अनुसार मधुकरपुर या मधुपुर का प्रयोग करते हुए पाये जाते हैं। पुनश्च मधुकपुर और मधुपुर दोनों का अर्थ एक है। इनका प्रयोग भी साधारणतया एकके स्थान में दूसरे का अर्थ अववोधनार्थ किया जाता है।

प्रशस्ति कथित समस्त स्थान और नगरों का अवस्थानादि विवेचन करने के पश्चात हम वीरदेव के पुत्र कृष्ण देव कादेश निकाला पश्चात क्या हुआ और वसन्तपुर अपहरण करने वाला कौन था इन दो शेषभूत विषयोंके विवेचन मे प्रवृत्त होते है। और इनमें से कृष्ण देवका क्या हुआ के विवेचन को सर्व प्रथम हस्तगत करते हैं।

प्रशस्ति के श्लोक १२—१३ मे कृष्णदेव के दुर्गुणों का विस्तार के साथ वर्णन है। एवं श्लोक १४ के पूर्वार्ध मे उसके बसन्तपुर से निकाले जाने का वर्णन किया गया है। पूर्व कथित १२—१३ मे यद्यपि उसके दुर्गुणों का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है परन्तु वसन्तपुर से निकाले जाने बाद वह कहां गया और उसका क्या हुआ कुछ भी नही प्रकट होता। हां सुरत जिला के चिखली तालुका की धोलधारा नदी के तट पर वागोलिया नामक ग्राम मे पुराणी शिला कृतियां है। उनके लेखों से प्रकट होता है कि मंगलपुरी के चौलुक्य वंश में कृश्णराज नामक कोई राजा हुआ था। उसके वंशज कृष्णराज द्वितीय संवत १३६१ और १३७३ विक्रम के मध्य मंगलपुरी में राज्य करता था। और उसका छोटाभाई धवलनगरी का शासक था। इन लेखों में कृष्णराज प्रथम से लेकर कृष्णराज द्वितीय पर्यन्त पांच नाम पाये जाते हैं। इन लेखों को हम पूर्व में उधृत कर चुके हैं। और उनके विवेचन में कृष्णराज प्रथम के समय तथा वसन्तपुर के साथ उसका कुछ सम्बन्ध था या नहीं इस प्रश्नका भी उत्थान करके समाधान किये हैं। परन्तु बसन्तपुर के साथ उसके सम्बन्धका व्यापक प्रमाणाभावके कारण इस प्रश्नको ज्योंका त्यों छोड़ केवल समय निर्धारण करके ही संतोष करना पड़ा था। परन्तु प्रस्तुत प्रशस्ति में वीरदेव के पुत्रों की संख्या दो बताई गई है। जिनमें प्रथम का नाम मूलदेव और दूसरे का नाम कृष्णदेव बताया गया है। कृष्ण अपनी उद्दंडता और बंधु द्रोह के कारण पिताका अप्रिय भाजन बन वसन्तपुर से निकाला गया था। मंगलपुरी वाले कृष्ण प्रथम का समय कुम्भदेव के लेखों के विवेचन में संवत १२७१ सिद्ध कर चुके हैं। यह समय हमने अनुमान के सहारे किया था इधर प्रशस्ति कथित कृष्ण के पिता वीरदेव का समय विक्रम १२७६ सिद्ध होता है। ऐसी दशा मे मंगलपुरी वाले कृष्ण को वसन्तपुर के वीरदेव का पुत्र कृष्ण हम नहीं मान सकते। ऐसा यदि हम कहे तो असंगत न होगा। परन्तु ऐसा हम नहीं कह सकते; क्योंकि वीरदेव का समय १२३५ से १२७६ है। अतः संभव है कि वीरदेव ने अपने द्वितीय पुत्र कृष्ण को मंगलपुरी का शासक बनाया हो। और जब उसे बंधु द्रोह के कारण वीरदेव ने देशनिकाला का दण्ड दिया हो तो वह स्वयं अथवा उसका पुत्र मंगलपुरी को अधिकृत कर स्वतंत्र बन गये हो।

अब यदि कृष्ण के वंशज और उसके सामयिक मूलदेवके वंशजों की वंशश्रेणी में कुछ समता पाई जाय तो हमारी यह संभावना सिद्ध हो सकती है। अतः हम दोनो वंशावली को निम्न भाग में समानान्तर पर उधृत करते हैं।

बासन्त पुर वंशावली	मंगलपुर वंशावली
मूलदेव	कृष्णराज
|	|
कर्णदेव	उदयराज
|	|

वंशावली पर दृष्टिपात करने से साम्यता अपने आप प्रकट होती है। किन्तु समय में कुछ अन्तर पड़ता है। हमारी समज में समय का अन्तर का परिहार अनयास ही हो सकता है। क्योंकि वसन्तपुरीकी गद्दी पर मूलदेव नहीं बैठा था। अतः उसके पुत्र कर्ण और उसके भाई कृष्ण देवकी समकालीनता ठहरती है। एवं कर्ण के तीनों पुत्रों ने राज्य किया था। अतः उनको भी वंश श्रेणी में मानना होगा इस प्रकार मंगलपुर और वसन्तपुर के दोनों राजवंशों के राजाओं की समकालिनता निम्न प्रकार से होगी :—

समकालिनता

वासन्तपुर	मंगलपुरी
कर्णदेव १२७६-१२९८	कृष्णराज १२७१-१२९३
सिद्धेश्वर १२९८-१३२१	उदयराज १२९३-१३१६
विशाल १३२१-१३४३	रुद्रदेव १३१६-१३३८
धवल १३४३-१३६६	क्षेमराज १३३८-१३६०
वासुदेव १३६७	कृष्णराज १३६०

हमारी इस प्रशस्ति की समकालीनता में किसी को शंका नहीं हो सकती क्योंकि इसमें बहुत ही थोड़ा समय का अन्तर पड़ता है। अब यदि उक्त अन्तर को दूर करने के लिये हम कृष्णराज का ७ वर्ष समय पूर्व से हठाकर और पीछे ले जावे और दोनों अर्थात कृष्णदेव और कर्णदेव दोनोंको एक समय १२७६ में मान लेवे तो वह अन्तर अनायास ही मिट जाता है। इन बातों को लक्ष कर मंगलपुरीके कृष्णराज प्रथम को वसन्तपुर के वीरदेव का द्वितीय पुत्र और कर्णदेव का चाचा घोषित करते हैं। परन्तु इसके-कुम्भदेव के लेख में कृष्णराजकी वंशावली का प्रारंभ आड़े पड़ता है। इसका समाधान यह है कि अन्यान्य राज्यवंशो का इतिहास ऊंचे स्वरमें घोषित करता है कि भाई और पिता से विद्रोह करने वाले के वंशज पूर्व की वंशावली का उल्लेख नहीं करते। इसका प्रमाण आबू के परमारों के इतिहास में विशेष रूपसे पाया जाता है। और इसकी झलक अजमेर के चौहानों के इतिहास में भी पाई जाती हैं। मंगलपुरी के कृष्णराज को वसन्तपुर के वीरदेव का द्वितीय पुत्र सिद्ध करने पश्चात मंगलपुर—वसन्तपुरकी वंशावली निम्न प्रकार से होगी।

—:वंशावली:—

जयसिंह
- (१) विजयसिंह
  - (२) धवलदेव
    - (३) वसंतदेव
      - (४) रामदेव
      - लक्ष्मणदेव
        - (५) वीरदेव
          - मूलदेव
            - (६) कर्णदेव
              - (७) सिद्धेश्वर
              - (८) विशल
              - (९) धवल
                - (१०) वासुदेव
                  - (११) भीमदेव
                    - (१२) वीरदेव
                      - वसन्तदेव
                        - (१३) वीरदेव
                      - महादेव
                      - कृष्णदेव
                      - कीर्तिराज
          - (१) कृष्णदेव
            - (२) उदयराज
              - (३) रुद्रदेव
                - (४) सेमराज
                  - (५)
                    - कृष्ण
                    - कुम्भ
    - कृष्णदेव
    - महादेव
    - चाचिक
    - भीमदेव

हमारी समझ में प्रशस्ति का सांगोपांग विवेचन हो चुका। एवं इसमे कथित सभी घटना पर पूर्ण रूपेण प्रकाश डाला जा चुका। हां यदि कोई बात रह गई है तो वह यह है कि वसन्तपुर का स्वातंत्र्य अपहरण के साथ ही वसन्तदेव को मारने तथा वसन्त ुर को लूटने वाला कौन था। इस विषय पर प्रकाश डालने वाला कोई भी साधन हमारे पास उपलब्ध नहीं है। संभव है तत्कालिन मुसलमान इतिहास के विडोलन से कुछ प्रकाश पड़े।

चौलुक्य चंद्रिका के अन्यान्य खण्डों में क्या है

एजन्त वातापिः— इस खण्डमें चौलुक्य चक्रवर्ती पुलकेशी तथा उसके पूर्वज एवं वंशजोंके विक्रम संवत ६६ से लेकर ७३५ पर्यन्त शासनपत्रों का संग्रह है । इन शासनपत्रोंका अनुवाद और वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। विवेचन में तत्कालीन अन्यान्य राज्यवंशों के सामयिक लेखोंका आश्रय ले प्रत्येक लेख की यथार्थता प्रभृति सिद्ध की गई है। प्रसंगवाश पाश्चात्य विद्वानों और उनके अनुयायी भारतीयोंकी समीक्षा पूर्णरूपेण की गई है।

वातापी-कल्याणः— इस खण्ड में एजन्त वातापीके अन्तिम राजा कीर्तिवर्म्माके हाथसे राज्य लक्ष्मीका अपहरण राष्ट्रकूटों द्वारा होनेके पश्चात उसके भ्रातृपुत्रके वंशजोंने किस प्रकार लगभग १५० वर्ष पर्यन्त चौलुक्य राज्यचिन्ह की रक्षा करते हुए युद्ध किया था और अन्तमें विजयी हो वातापीको हस्तगत कर राज्यलक्ष्मीका उद्धार किया था। एवं वातापी छोड़ कल्याण को राजधानी बना वातापी कल्याणके चौलुक्य कहलाने वाले चौलुक्यों के वंशमें विक्रम ७३५ पश्चात १२०० पर्यन्त होनेवाले राजाओंके शासनपत्रोंका संग्रह, अनुवाद तथा विवेचन किया गया है।

वेंगी-चोलः— इस खण्ड में एजन्त-वातापीके भारत चक्रवर्ती चौलुक्य राज पुलकेशीके भ्रातृवंसज लगभग ३० पीढ़ी विक्रम् ५ से १४ पर्यन्त राज्य करनेवाले राजाओं के, शासनपत्रों का संग्रह, अनुवाद तथा विवेचन है। ये सब चोल को अधिकृत कर अपने राज्यमें मिला लिए तबसे वेंगीचोलके चौलुक्य नामसे प्रख्यात हुए। एवं पंच द्राविड इनके अधिकार में होने के कारण इनका चौलुक्यसे सोलुक पड़ा और संभवतः इनके वंशज जब गुजरात में गए तो अपने साथ चौलुक्यके स्थान में सोलुकको लेते गये, जो कलान्तर में सोलंकी बन गया।

आनर्त पाटण-धोलकाके चौलुक्यः— आनर्त (गुजरात) पाटनके चापोत्कट राजवंशका उत्पाटन कर मूलराजने चौलुक्य वंशके राज्यका सूत्रपात किया था। इस वंशने विक्रम संवत १०१८ से १२६८ पर्यन्त गुजरात वसुन्धराका भोग किया। इस अवधिमें इस वंशके दस राजाओंने शासन किया था। इस वंशमें सिद्धराज जयसिंह नामक राजा बड़ाही प्रसिद्ध हुआ है। उसका नाम गुजरात के आबाल वृद्ध की जिह्वा पर अंकित है उसका नाम प्रत्येक गुजराती साभिमान लेता है। इस वंश का अन्तिम राजा भीम द्वीतीय था। इसके हाथ से धोलकाके बघेलों ने राज्यलक्ष्मी का अपहरण किया। बघेलों का मूल पुरुष अर्णोराज का पाटण के चौलुक्यों के साथ स्रीपक्षीय कुछ सम्बन्ध था। अर्णोराजव्याघ्र पाली नामक स्थान में रहता था। क्रमशः इसके वंशज पाटण के चौलुक्यों के राज्य में सर्वोसर्वा बन गए थे। इस वंश का शासनकाल १२९९ से १३६० पर्यन्त ६१ साल है। इसी वंश के चार राजाओं ने इस अवधि में शासन किया था। प्रथम राजा वीरधवल और अन्तिम कर्णघेला हैं। इन्हीं दोनों वंश के विक्रम संवत् १०१७ से लेकर १३६० पर्यन्त ३५० वर्ष कालीन प्रायः प्रत्येक राजाओं के शासन पत्रों और प्रशस्तियों का संग्रह और विवेचन है।